Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai a

आत्म विज्ञापन • अभिम

Public Domain. Gurukul Kangri Collec

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्म विज्ञापन

अभिमन्यु अनत

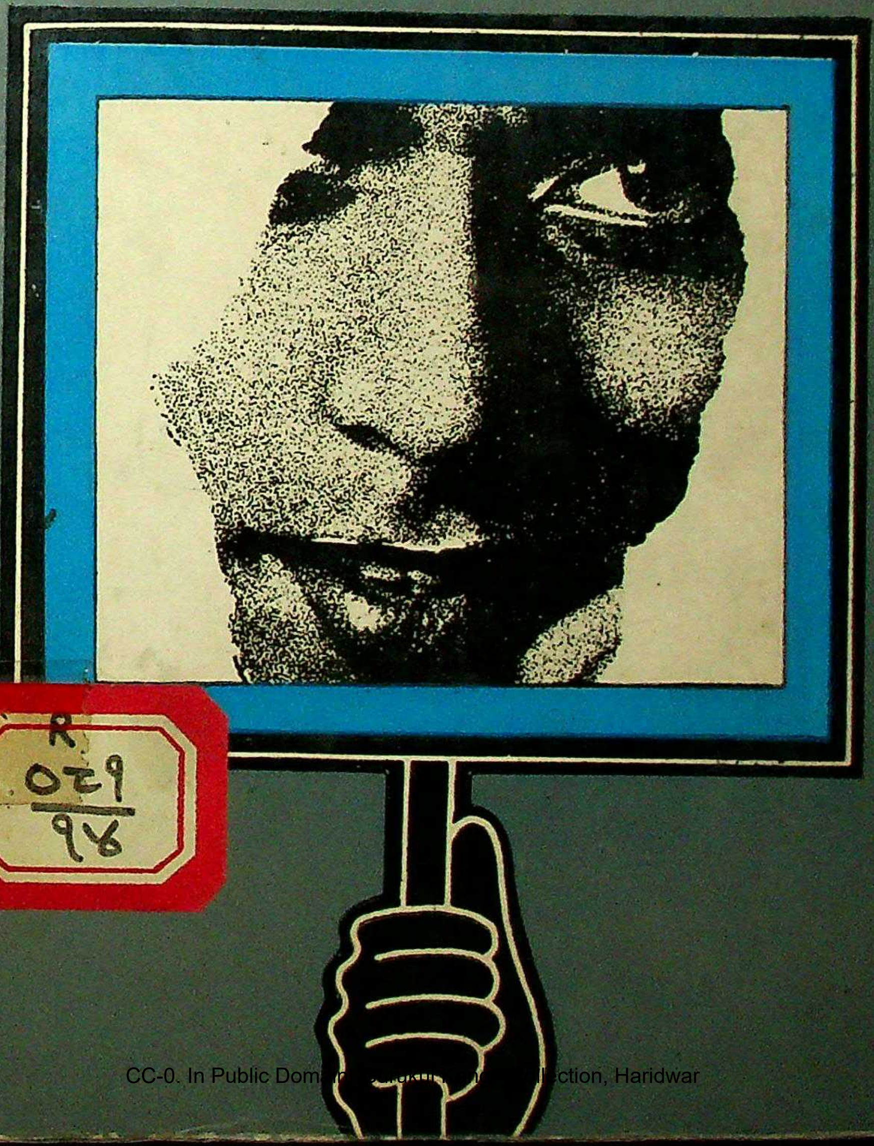

R
०८१
१४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

37503

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 97503

97503

R पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या 071/14 आगत संख्या 97503

पुस्तक—वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित २० वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा १० पैसे के हिसाब से विलम्ब—दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मविज्ञापन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

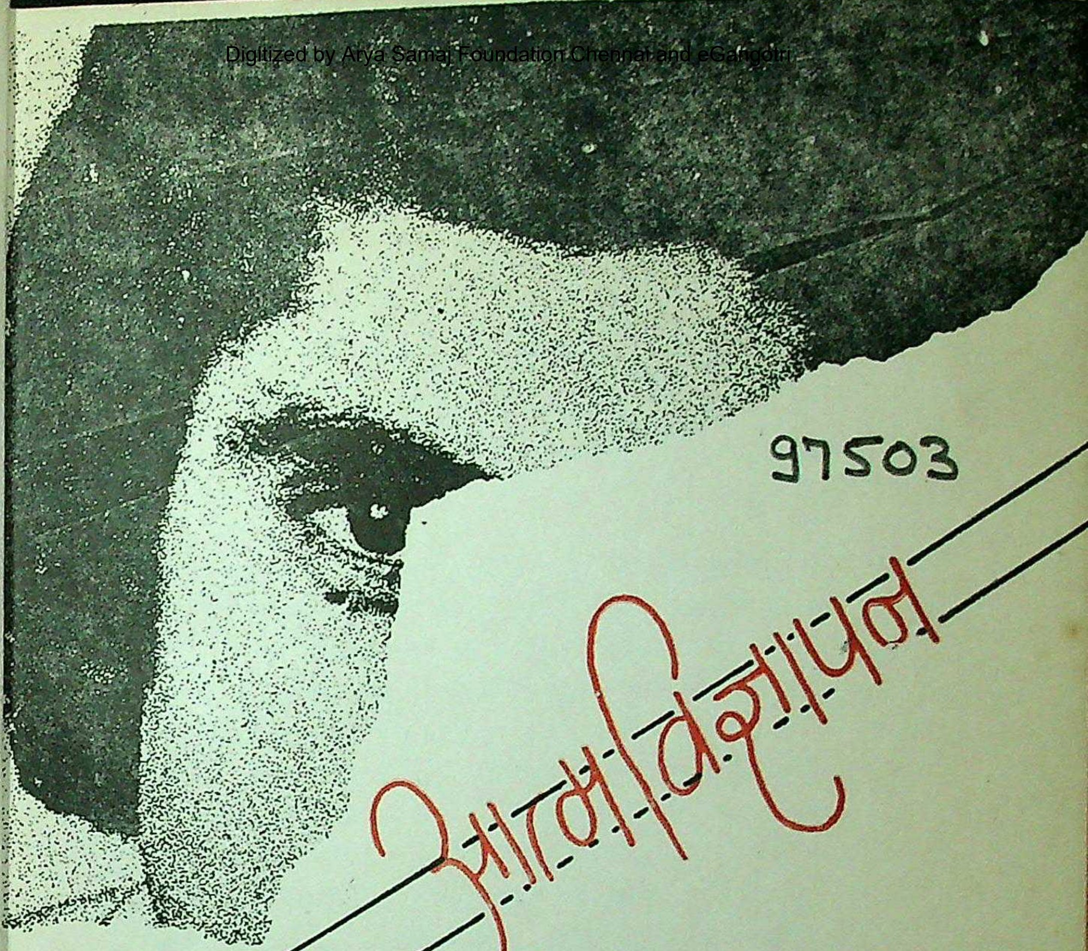

97503

आत्मविज्ञापन

अभिमन्यु अनत

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
०८९
२६

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६
मुद्रक : संजय प्रिंटर्स, मानसरोवर पार्क, शाहदरा, दिल्ली-११००३२
संस्करण : प्रथम, १९८४ / सर्वाधिकार सुरक्षित/मूल्य : अस्सी रुपये

AATMA VIGYAPAN by Abhimanyu Anat Rs. 80.00

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

अभिमन्यु अनत की कुछ चुनी हुई रचनाओं का यह संकलन 'आत्म-विज्ञापन' अब आपके हाथों में है। आप देख ही रहे हैं कि पुस्तक का शीर्षक हिन्दी के पाठकों के लिए, अर्थात् आपके लिए एकदम नया है। लेखक के 'आत्म' के साथ 'विज्ञापन' शब्द का प्रयोग कुछ रोचक, कुछ उत्तेजित तथा कुछ आकर्षित करने वाला है। यद्यपि अनत ने अन्दर के पृष्ठों में यह स्वीकार किया है कि उसने नोरमन मैलर की एक पुस्तक से इस शीर्षक को उड़ाया है, लेकिन पुस्तक से पहली बार टकराने पर पाठक लेखक की इस कल्पना से, इस शीर्षक से उत्तेजित अवश्य होता है। आज वैसे भी 'विज्ञापन' शब्द व्यापार, राजनीति, धर्म, संस्कृति आदि में इतना प्रचलित हो गया है कि साहित्य में इसके प्रवेश पर बहुत आश्चर्य नहीं होता। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में जब विज्ञापन की सत्ता जड़ जमा चुकी है, तब साहित्य का क्षेत्र ही इससे कैसे बच सकता है ? आज स्थिति यह है कि नेता, धर्मगुरु, व्यापारी, अभिनेता, शासक आदि दूसरों से अपना विज्ञापन करवाते हैं, लेकिन अनत ने यह सोचा कि औरों से अपना विज्ञापन करवाने से बेहतर होगा खुद अपना विज्ञापन करना। लेकिन यह 'विज्ञापन' दूसरे सभी विज्ञापनों से पूर्णतः भिन्न है। इसमें लेखक की तीव्रानुभूतियों से जन्म लेने वाली रचनाओं पर रचनाकार का 'आत्म-विज्ञापन' टिका हुआ है, दूसरों के द्वारा की गई झूठी एवं चाटुकारिता से भरी बातों पर नहीं। लेखक का यह आत्म-विज्ञापन उसके जीवन का इतिहास है, उसकी सुख-दुःखमयी अनुभूतियों का यथार्थ चित्र है।

अनत का यह 'आत्म-विज्ञापन' संकलन दूसरे विज्ञापनों से एक अन्य दृष्टि से भी भिन्न है। राजनीति, व्यापार, धर्म, संस्कृति आदि सभी क्षेत्रों में केवल गुणों का विज्ञापन किया जाता है, लेकिन अनत ने अपने गुणों के साथ दुर्गुणों को भी, अपनी विशेषताओं के साथ अपनी दुर्बलताओं का भी विज्ञापन करने में कोई संकोच नहीं किया है। निश्चय ही लेखक की जीवन-यात्रा और सृजन-प्रक्रिया को समझने के लिए श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ, प्रिय और अप्रिय दोनों ही प्रकार की रचनाओं को निकटता से देखना परमावश्यक है। अनत का वैसे भी यह दावा नहीं है कि 'आत्म-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञापन' में केवल श्रेष्ठ एवं प्रिय रचनाओं को ही संकलित किया गया है। उसे हिन्दी का पहला अक्षर 'अ' कई कारणों से प्रिय है। अभिमन्यु अनत नाम के दोनों शब्दों की बुनियाद 'अ' अक्षर ही है और साथ ही उसे 'प्रिय' के समान 'अ-प्रिय' एवं 'श्रेष्ठ' के साथ 'अ-श्रेष्ठ' समान रूप से प्रिय हैं। यही कारण है कि इस संकलन में पाठकों को 'श्रेष्ठ' एवं 'अश्रेष्ठ' दोनों प्रकार की रचनाएं मिलेंगी। जब जीवन असत्य, अधर्म, अप्रिय, अश्रेष्ठ आदि के बिना पूर्ण नहीं होता, तब रचनाकार कैसे हो सकता है? अतः इस संकलन को श्रेष्ठ रचनाओं का प्रतिनिधि संकलन कहना उचित न होगा। हां, इसे अनत के कुल साहित्य की श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ, प्रिय-अप्रिय रचनाओं में से कुछ चुनी रचनाओं का संकलन कहा जा सकता है जिससे लेखक की छवि पाठकों के सम्मुख स्पष्ट हो सके।

अभिमन्यु अनत मॉरिशस में जन्म लेने पर भी अब भारत के ही लेखक हैं। हमारे लिए निश्चय ही यह गौरव की बात है कि उन्होंने फ्रेंच एवं अंग्रेजी के मोह-जाल और आकर्षणों से स्वयं को मुक्त करके हिन्दी को अभिव्यक्ति का माध्यम चुना। इससे मॉरिशस में न केवल हिन्दी का माथा ऊंचा हुआ है, बल्कि विश्व में फैले हिन्दी भाषा-भाषियों को अपना सिर ऊंचा करने का अवसर मिला है। अभिमन्यु अनत हमारे लिए भारतीय लेखक ही हैं। वे अपनी रचनाओं में भारतीय मूल्यों एवं भारतीय अस्मिता की ही लड़ाई लड़ रहे हैं और जीवन एवं रचना दोनों में ही उसे जीते हुए उसकी विजय के लिए संघर्ष कर रहे हैं। वे वास्तव में मॉरिशस के प्रेमचंद हैं, जो एक ओर भारतीय मूल्यों से प्रतिबद्ध हैं, और दूसरी ओर दमन, शोषण एवं अमानवीय ताकतों को नंगा करने के साथ एक स्वस्थ मानवीय समाज के निर्माण का स्वप्न संजोये हुए हैं।

मुझे विश्वास है कि पाठकों को अभिमन्यु अनत की यह नवीनतम रचना पसन्द आयेगी और वे अनत की एक झाकी इसमें पा सकेंगे। 'आतम-विज्ञापन' का अभिधार्थ तो स्पष्ट है ही, लेकिन पाठकों ने यदि इसके व्यंग्यार्थ को ध्यान में रख-कर रचनाओं को पढ़ा तो उनका आस्वादन भिन्न प्रकार का होगा। शीर्षक का व्यंग्यार्थ ही उनका मूल-मंत्र है और वही अर्थ की विभिन्न पर्तों के रहस्य को निरा-वरण कर सकता है। पाठक का हित भी इसी में है कि वह व्यंग्यार्थ को ही आत्मसात् करे, अन्यथा उसे वेद-वाक्य या धर्म की तरह गम्भीर मान लेने पर कई रचनाएं 'बकवास' और अर्थहीन-सी लगेंगी। पाठकों की प्रबुद्धता एवं विवेक पर मुझे तथा अनत दोनों को पूर्ण विश्वास है।

डॉ० कमल किशोर गोयनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

कहानियां	९
सम्पादकीय	५१
भेंट-वार्ता	६७
नाटक	८१
कविताएं	१२३
संस्मरण	१५५
लेख	१८३
लघु कथाएं	२०३
यात्राएं	२२९
उपन्यास	२४७
व्यंग्य	३०७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरूरत है तीन कहानियों के लिए ग्राहकों की

साहित्यिक बाजार में जब लेखकों का हुजूम गिरोहबन्दी में अपना माल खपाने की बात को भूलकर साहित्यिक उठा-पटक में जुट गया है, तब मौका पाकर थोड़ा-सा अवसरवादी होकर मैं अपनी डेढ़ सौ के करीब कहानियों में से तीन कहानियों पर बोली लगाये देता हूं। मेरी रचनाओं में कुछ प्रबुद्ध पाठकों को लम्बा-चौड़ा दर्शन नजर आ जाता है। मुझसे मार्क्स, नीत्से, फ्रायड और न जाने कौन-कौन से दार्शनिकों पर प्रश्न किये जाने लग जाते हैं और मुंह में जो आता है उसे बोल-कर मैं पिंड छुड़ा लेता हूं। यह कहकर बेवकूफ क्यों साबित होता कि मैंने इन विद्वानों को पढ़ा ही नहीं या पढ़ने की चेष्टा भी की तो समझा नहीं!

यों तो मैं अपने को ज्ञानी प्रमाणित करने की कोशिश में कभी चूकता नहीं, पर मैं कितना अज्ञानी हूं—इसे भीतर से स्वीकार करता हूं। बातों के दौरान आइन्सटीन या रूसो के नाम तो मैं जरूर ले लूंगा, लेकिन ये कौन हैं और संसार को इनका योगदान क्या रहा है—अपने को मालूम नहीं।

मेरे ग्राहक—मेरा मतलब पाठकों से है; क्योंकि जो पुस्तक का ग्राहक होता है, वही अच्छा पाठक होता है; उधार लेकर पढ़ने वाले तो पाठक से ज्यादा कुछ और ही होते हैं—खैर, मेरे कहने का मकसद यह था कि मेरे ग्राहक मेरे कॉन्फेशन्स का गली-कूचों में ढिंढोरा पीटने न लग जाएं! हां, तो मैं अपनी कहानियों की बात कह रहा था। मेरा एक सहयात्री जो मुझे हर वक्त नकारने पर ही तुला रहता है, उस दिन चिल्ला-चिल्लाकर कहता रहा कि यह साला अभिमन्यु झूठ बोलता है, इसने डेढ़ सौ कहानियां लिखी ही नहीं! मेरे इस मनमाने बहनोई को कौन समझाए, एक सौ तैंतीस और एक सौ उन्चास को डेढ़ सौ के करीब ही कहा जा सकता है। उन डेढ़ सौ कहानियों में से केवल तीन बेहतरीन कहानियां चुनना तो बड़ा कठिन है, इसलिए बेहतरीन का दावा न करते हुए इन्हें अपनी अच्छी कहानियों के रूप में आपके सामने रखने जा रहा हूं। पहली कहानी अब तक के मेरे किसी भी कहानी-संग्रह में नहीं आयी है, पर भारत की एक बड़ी पत्रिका में आकर चर्चित कुछ ज्यादा ही रही है···चर्चित कहकर मैं उसकी श्रेष्ठता या सशक्तता का दावा नहीं कर रहा हूं, क्योंकि चर्चित तो कई घटिया रचनाएं भी हो जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यातना भी आनन्द देती है, और अगर विश्वास न हो तो इस कहानी को अवश्य पढ़िये ! शीर्षक है—'अंधेरे-उजाले के बीच'। जो सख्श अंधेरे में होता है, वह उजाले की ओर लपकता है और जो उजाले में होता है, वह अंधेरे के लिए छटपटाता है। लेकिन इस अंधेरे-उजाले के बीच भी एक लम्हा होता है···कभी युग-सा लम्बा ! यह कहानी उसी अंधेरे-उजाले के बीच की उस लम्बाई की है।

इस पुस्तक में कहीं-न-कहीं आपको मेरा पता मिल ही जायेगा। कहानी पढ़कर इतना अवश्य बताएं कि आपको किसकी यातना अधिक आनंद दे सकी···अंधे गायक की या लावण्य से लबालब पानी की ?

ग्राहक तो राजा होता है। और राजा कभी गलती नहीं कर सकता ! गलती की ठेकेदार तो हमेशा से प्रजा रही है। अगर आपको मेरी पहली कहानी पसन्द न आए तो उधर को मत लपकिये। उधर तो लाल साहित्य, आम साहित्य, जन-साहित्य और न जाने क्या-क्या लेकर उखाड़-पछाड़ मची हुई है। मैं आपके सामने अपनी दूसरी कहानी प्रस्तुत करने का साहस करूंगा। इसका शीर्षक है—'अस्वीकार'। अब देखिये, शीर्ष ही से कितनी आजादी दे दी मैंने आपको ! जबकि उधर तो आपको समीक्षकों के सहयोग से खोटे सिक्के भी स्वीकारने को विवश किया जाता रहा है। यह कहानी किसी व्यावसायिक या लघु पत्रिका में कभी नहीं आयी। इसे मैं अप्रकाशित रखना चाहता था, आप ही को भेंट करने के लिए; पर भूल से यह 'खामोशी के चीत्कार' संग्रह में आ गयी थी। जब मेरे एक मित्र ने इसे पढ़कर यह कह दिया था कि यह तो कहानी लगती ही नहीं, तब मुझे इसके श्रेष्ठ रचना होने का विश्वास हो गया और यही वजह है कि मैं इसे आपके निर्णय पर छोड़ रहा हूं।

आप महीप सिंह की 'संचेतना' के बहकावे में चन्द मिनटों के लिए आ ही जाइये कि अभिमन्यु की कहानियां यथार्थ का अन्वेषण और सादृश्य लेखन हैं—"जनता और सरकार के बीच की खाई को महसूस करते हुए लेखक ने 'अस्वीकार' कहानी में यथार्थपरक अनुभूतियों को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है और यह व्यवस्था के विरोध में है, जो तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर पेश करती है और जिसमें भ्रष्टाचार ही का बोलबाला है।"

अपनी दिलेरी का इससे बड़ा प्रमाण-पत्र कहां से लाऊं ! यह कहानी आपको घण्टा भर चाहे बोर ही क्यों न करे, यथार्थ-बोध करानेवाली कहानी के नाम पर इसे पढ़ ही डालिये।

आपको भी अगर मेरी दूसरी कहानी अकहानी लगे तो इस स्थिति में इजाजत दें कि मैं आपके सामने एक आखिरी पर बेहतर कहानी पेश करूं ! घबड़ाइएगा नहीं, शायद यह इन दोनों कहानियों से बेहतर हो ! मुझे यकीन है कि यह आपको पसन्द आ जायेगी। पसन्द न आने की बात ही नहीं, क्योंकि यह कहानी बम्बई से निकलने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली बहुत बड़ी हिन्दी पत्रिका में जगह पा चुकी है। इसका शीर्षक है 'टूटा-पहिया'। नहीं यह चक्रव्यूह वाली कहानी नहीं है; यह तो आधुनिकता के पहिये के नीचे दबे हुए एक व्यक्ति की कहानी है। इस कहानी को उसी क्षण से मैं लिखना चाह रहा था, जब शहर की गलियों में रंगबिरंगी कारों की सहूलियत के लिए घोड़े-गाड़ी के युग को इस्तीफा दे दिया गया था। खैर, कहानी देर से लिखी गयी, पर विश्वास कीजिए, बगीचे से अभी तोड़ लायी सब्जी की तरह ताजी है।···आप नाक क्यों सिकोड़ने लगे ? ···विज्ञापन पर विश्वास न करके पुराने विचार वाले क्यों घोषित किया जाना चाहते हैं ! आप जो जीन्स पहन रखे हैं, वह विज्ञापन ही की तो कृपा है ! विज्ञापन के बिना आपको यह चीविंग गम कहां मिलता ? विज्ञापन तो जितना विज्ञान का चलता है, उतना ही धर्म का भी। ईसाई कहता है, उसका धर्म सबसे बेहतर है। धर्म की उसी मण्डी में हिन्दू अपने धर्म को सबसे महान् बताता है तो इस्लाम भी अपने मजहब को सबसे पाक मानता है। लोग अपने भगवान को बेचने के लिए अगर एक से एक बेहतर विज्ञापन का सहारा लेते हैं तो फिर साहित्यकार क्यों चूके ?

हां, तो प्रस्तुत हैं मेरी बस तीन ही कहानियां !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१

अंधेरे-उजाले के बीच

चित्रा के मन में कई बार आया कि वह आश्विन से कहे—तुम्हारा यह दिन-रात गिटार लिये बैठे रहना··· पर आगे क्या कहती कि उसका उस तरह गिटार लिये गुनगुनाते रहना पलायन के सिवाय कुछ था ही नहीं और उसे इस तरह की एस्केपिज्म अच्छी नहीं लगी थी?

ऐसा तो वह नहीं कह सकती थी!

अलबत्ता इतना कह सकती थी कि अशु, ऐसा करने से तुम्हारा अपना स्वास्थ्य बिगड़ सकता है। इस तरह बैठे रहने से खून की गति में भी सुस्ती आ सकती है और···

मगर उसके ये मेडिकल फतवे भी तो बेकार जायेंगे!

आश्विन ने जब डॉक्टर की हिदायतों को नहीं माना तो फिर चित्रा की नसीहतों को, जिसे मेडिकल ज्ञान तनिक भी नहीं था, कैसे मान लेता वह!

और भी चित्रा का यह कह जाना कि "इस तरह बैठे रहने से"···का तो दूसरा अर्थ भी लिया जा सकता था। अगर आश्विन उसका दूसरा अर्थ ले लेता तो सबसे अधिक दुख तो चित्रा को ही होता। वही तो थी, जिसे आश्विन का ख्याल रखना था!

चित्रा खिड़की के पास पहुंचकर फिर से आश्विन के पास आ गयी। कॉलेज के वे दोनों जीन्स पहने लड़के अब भी बिजली-बत्ती के खम्भे के पास खड़े थे। कुछ ही मिनट के पहले मोटर-साइकिल की तेज़ और जोरदार घड़घड़ाहट सुनकर आश्विन ने गिटार के तारों पर से अंगुलियां हटाकर कहा था—

"मैकेनिक के गेराज से आजकल बहुत शोर होता है।"

चित्रा कुछ नहीं बोली थी। वह जानती थी कि मोटर-साइकिल के आक्स-लेरेशन का वह शोर रेमों के गेराज से नहीं आया था। वह तो चीविंग-गम चबाते उन्हीं दो लड़कों की हरकत थी।

इधर दो सप्ताह से चल रहा था अपनी ओर आकर्षित करने का यह तरीका, या गुस्ताखी पास-पड़ोस के घरों की शांति भंग कर जाने की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रा जब खिड़की बन्द करने लगी थी तो आश्विन ने कहा था, "बहुत गरमी है चित्रा, खिड़की खुली छोड़ दो।"

वही अनुरोध वाला लहजा ! चित्रा चाहती थी कि आश्विन कभी तो उसे आदेश दे। मगर वह आदेश भी देता तो उसी गिड़गिड़ाहट भरे स्वर में। चित्रा वजह जानना चाहती···अपने आप से पूछती···अपने अंधेपन की विवशता थी वह ? चित्रा ने तो कभी उससे अपने भीतर किसी लाघव भावना को पैदा करने का अवसर दिया ही नहीं था।

उस दिन इससे भी ज्यादा गरमी थी, दो सप्ताह पहले। सुबह-सुबह उतनी उमस कभी नहीं महसूस की गयी थी शायद !

आश्विन ने कहा था, "दिसम्बर में अगर इतनी गरमी है तो फिर जनवरी-फरवरी में क्या हाल होगा !"

चित्रा हंसकर बोली थी, "मॉरिसश अफ्रीका में है, क्यों भूल जाते हो !"

"और यहां तूफ़ान इसलिए आते रहते हैं, क्योंकि मॉरिशस हिन्द महासागर में भी है।"

दोनों हंस पड़े थे। तीन वर्ष के वैवाहिक जीवन में ऐसा अवसर बहुत कम आया था। आश्विन को तो उसके अपने दोस्तों ने भी शायद ही कभी हंसते देखा हो। चित्रा खिड़की के पास खड़ी कपड़े बदल रही थी। उसे काम पर जाने में देर हो गयी थी। पानी देर से चूना शुरू हुआ था, इसीलिए देरी हो गयी थी। खिड़की खुली हुई थी। परदे हटे हुए थे। इसका खयाल किये बिना ही चित्रा ने जल्दी से अपनी रोब-दे-शाम्ब्र को अपने ऊपर से उतारकर कोने में फेंक दिया था। गुलाबी ब्रा उतारकर ज्यों ही बगल की कुर्सी पर से नयी नीली ब्रा और ब्लाउज उठाने के लिए मुड़ी कि उसकी नज़र सड़क पर बिजली-बत्ती के खम्भे के पास खड़े उन दोनों कॉलेज के छात्रों पर पड़ गयी थी। दोनों लड़के उसे अपनी पूरी खुली हुई आंखों से खाये जा रहे थे। वह जल्दी से आड़ में चली गयी थी। उसका पूरा चेहरा लाल हो गया था। ये वही दोनों लड़के थे, जिन्हें दो दिन पहले उसने अपने रास्ते में खड़े पाया था; तब एक के हाथ में कॉलेज की पुस्तकें थीं, दूसरे के हाथ में प्ले-बॉय की एक प्रति थी। प्ले-बॉय वाले लड़के ने अपने साथी से कहा था—"क्या चीज़ है, यार ?"

'चीज़' शब्द का उच्चारण इस तरह हुआ था, गोया वह कोई अंग्रेजी शब्द था। उसे अनसुनी करके चित्रा आगे बढ़ गयी थी। दोनों उसके पीछे चल पड़े थे। मन में जो आता था, कहते गये थे। शाम को फिर उसी जगह से दोनों उसके पीछे हो गये थे। चित्रा उनकी उन बातों को नहीं रोक सकी थी।

"यार, इस साड़ी के भीतर तो कयामत होगी !"

"ऐसी बनी टाइप टीचर तो हमारे कॉलेज में होनी चाहिए थी !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इन कपड़ों के भीतर तो ब्रिजीता बार्दो ही छिपी होगी।"

उस रात सोने से पहले अपने कपड़े बदलते वक्त चित्रा ने अपने को आलमारी के आदमकद शीशे के सामने कुछ क्षणों के लिए रोक लिया था।

हाल ही में टेलीविजन पर उसने ब्रिजीता बार्दो की नयी फिल्म देखी थी। अपने बदन को देखती-निहारती वह ब्रिजीता के उस शारीरिक लावण्य को सोचती रही। आईने के सामने घूम गई, अपने को आगे-पीछे देखा।

आश्विन चारपाई पर लेटा हुआ सिगरेट के हल्के कश ले रहा था और उसकी आंखों का अंधेरा कमरे की रोशनी के कालेपन को अपने स्याही भरे आगोश में लपेटे हुए था।

चित्रा आश्विन के गिटार की उन सिसकियों और करुण क्रन्दन से ऊबती तो नहीं थी, पर वह चाहती थी कि आश्विन अपने में विविधता लाये। वह चाहती थी आश्विन की दिनचर्या में जीवंतता। वह तो और भी नेत्रहीनों को जानती थी। अपने जीवन को वे सभी हर आंखों वाले की तरह जीते थे।

चित्रा को इस बात से दुख होता कि आश्विन उन दूसरों की तरह अपने जीवन को जी भरकर नहीं जी पाता था। जी तो सकता था, पर जीना नहीं चाहता था। वह जब अकेली होती और आश्विन के बारे में सोचती रहती तो आश्विन और उन दूसरे नेत्रहीनों के बीच के अन्तर के बारे में भी देर तक सोचती रह जाती थी। वे लोग तो अन्धे जन्मे थे, शायद यही वजह रही हो कि उन्होंने संसार को अपने ही ढंग से स्वीकार लिया था और अंधेरे को ही अपना सत्य मान चुके थे। आश्विन के साथ तो बात दूसरी थी।

उसने तो उजाले देखे थे।...और शायद यही वजह थी कि वह अपने चारों ओर के अंधेरे को स्वीकार नहीं पा रहा था, उसे अपना सत्य मानने को तैयार नहीं था।

चित्रा जब आश्विन से पहली बार मिली थी तो उसकी आंखों पर काला चश्मा नहीं था। उसकी उन नंगी आंखों में आभा थी—एक गहराई थी—एक विस्तार था। चित्रा उसकी उन आंखों के लबालब उजाले को देखती रह गयी थी, अपलक!

आश्विन भी उसे अपलक देखता रह गया था। और जब वह दूसरी बार चित्रा से मिला था तो बोला था—

"तुम्हें भगवान ने छुट्टी के दिन बनाया होगा, तभी तो तुम्हारे चेहरे पर से मैगनीफाइंग ग्लास भी कोई खामी नहीं निकाल पा रहा है।" वह अपनी आंखों को हमेशा मैगनीफाइंग ग्लास ही कहता था। और चित्रा हमेशा कहती थी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अशु, तुम्हें अपनी आंखों का इलाज कराना होगा !"

"अपनी अच्छी-खासी आंखों का ?"

"हां ! तुम्हारी आंखों को बदसूरती भी खूबसूरत दीखती है।"

"तुम इतनी सुन्दर हो चित्रा, कि तुम्हें छूने से डर लगता है। कहीं तुम्हारी बांहों पर मेरी अंगुलियों के निशान न बन जाएं !"

···और उस दिन तक चित्रा अछूती रह गयी थी, जब···

वह सभी कुछ कैसे हो गया था, उसे चित्रा आज भी नहीं समझ पाई थी। सुबह उठते ही वह उस पुरानी घटना को अनायास ही याद कर बैठी। पांच ही महीने तो हुए थे दोनों के उस प्यार को, जब उस दिन चित्रा के भाई ने दफ्तर से फोन करके वह सूचना दी थी। फोन खुद चित्रा ने ही उठाया था और सुनकर उसका पूरा बदन मानो उसी अपने हाथ के चोंगेवाली धातु का हो गया था। उसके भाई ने केवल इतना ही तो बताया था कि किसी मुठभेड़ में घायल हो जाने पर आश्विन को अस्पताल ले जाया गया था। चित्रा उस क्षण जिन कपड़ों में थी उन्हीं में अपनी मां को साथ लिये ऑर्थोपेडिक सेंटर पहुंच गई थी।

कोई छः-सात घण्टे बाद ही उसे आश्विन को देख पाने का अवसर मिल सका था। वह पहला अवसर था जब आश्विन की अंगुलियों ने चित्रा की बांहों पर नीले निशान छोड़ ही डाले थे। चुभन तो उसे आश्विन के क्रन्दन ने दी थी—

"चित्रा, मेरी आंखें ?···"

प्रतिध्वनि अस्पताल की छत से टकराकर कई अनुध्वनियों में छितरा गई थी।

तीन सप्ताह बाद···

जब आंखों पर काली पट्टी लिये हुए आश्विन घर लौटा था, तब तक चित्रा के घरवाले अपना निर्णय ले चुके थे—"अब एक अन्धे को अपना जीवन-साथी बनाकर जीने की बात को छोड़ो !"

उस रात चित्रा कुछ नहीं बोली थी।

दूसरे दिन शाम को···

जब उसके घरवाले चाय पर एक साथ बैठे हुए थे तो चित्रा ने अपना निर्णय सबके सामने रखा था—

"मैं उसी से शादी करूंगी !"

अपनी चाय की प्याली खाली करके पाइप सुलगाते हुए चित्रा के बाप ने धीरे से कहा था—"चित्रा ! प्रश्न केवल उसकी आंखों का ही तो नहीं, अब तो उसकी नौकरी भी जाती रही। स्ट्राइक में इल्लीगल पार्टीसिपेशन की वजह से उसे कोई कॉम्पेनसेशन भी नहीं मिलेगा, इसे मैं जानता हूं !"

"तुम तो यह भी जानते हो पापा, कि मेरी नौकरी अभी सही-सलामत है।"

चित्रा को अपने भाई और भाभी का सहयोग नहीं मिला होता तो शादी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो पाती। विवाह उसी धूमधाम से हुआ, जिस धूमधाम से उसे होना था।

चित्रा से जब आश्विन की वह पहली भेंट उस डिस्कोटेक में हुई थी, उस समय तो उसने यह नहीं सोचा था कि वह उसे इस कदर अपना समझ बैठेगा। चित्रा ने भी तो उसे उसी तरह प्यार किया था। विवाह के कोई महीने भर बाद एक दिन अपने सिर को चित्रा के वक्ष पर रखते हुए आश्विन ने उससे कहा था—

"तुम्हें देखने की बहुत इच्छा होती है।…"

चित्रा की खामोशी के बने रहने पर वह आगे बोला था—

"लगता है, मैंने नाहक ही अपनी आंखें गंवा दीं!…"

अपने बालों से खेलते हुए चित्रा के हाथ को उसने चूम लिया था।

"मैं पछता तो नहीं रहा हूं, पर उस दिन उस हड़ताल में भाग लेकर मैंने खुद तो नादानी की, पर तुम्हारे साथ बहुत बड़ी क्रूरता की।"

"तुमने अपनी आंखें नाहक नहीं गंवाई।…"

"आश्वासन दे रही हो?"

"नहीं अशु, मैं सच्चाई कह रही हूं। अखबारों की वे सभी कतरनें, छात्रों के वे तमाम पत्र और रॉयल कॉलेज के रेक्टर के भाषण की वह रेकार्डिंग मेरी बात की गवाही देगी।"

"छात्रों को वह हड़ताल नहीं करनी चाहिए थी।"

"छात्रों को वह हड़ताल करनी चाहिए थी और उसमें तुम्हारा सक्रिय भाग लेना भी उतना ही आवश्यक था!"

"सो क्या मैंने अपनी आंखें नाहक ही नहीं गंवाई?"

"तुमने आंखें गंवायी नहीं हैं, अशु! व्यवस्था के कई अंधों को आंखें दे दी हैं तुमने!" चित्रा के सामने वह दृश्य झिलमिला उठा, जिसे उसने देखा तो नहीं था, पर जो उसके जेहन के समूचे क्षेत्रफल में किसी देखे हुए दृश्य से भी अधिक गहरा अंकित था।

…छात्रों की वह हड़ताल…अपने कॉलेज के एक अध्यापक को नौकरी से हटा दिये जाने के विरुद्ध उन लोगों का वह प्रदर्शन…उत्तेजित छात्रों की पुलिस के साथ मुठभेड़ और उसके दौरान अश्रुगैस के कुहासे में आश्विन का फंसकर पुलिस की लाठियों का शिकार हो जाना…यह सभी कुछ जैसे चित्रा की आंखों के सामने ही गुजरा था।

चित्रा ने कभी आश्विन से कहा था—"मैं जब तुम्हारे सामने नहीं होती हूं, तो तुम न तो गिटार बजाते हो और न ही मिशेल सार्दू के ये गाने गुनगुनाते हो!"

"मैं तो तुम्हें सुनाने के लिए गाता-बजाता हूं। तुम सामने नहीं होती हो तो गाने का फायदा ही क्या? गायक किसी के द्वारा सुने जाने की इच्छा से ही गाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ! खुद को सुनाने के लिए गानेवाला तो पागल होता होगा।" उस दिन चित्रा को पता चला था कि आश्विन अपनी किसी पीड़ा को भुलाने के लिए नहीं गाता था, बल्कि चित्रा को खुश करने के लिए गिटार के तारों को उस तरह छेड़ता हुआ गुनगुनाता रहता था।

उसके मन में तो आया था कि वह कह दे—उसे गिटार की उन सिसकियों से खुशी नहीं हासिल होती।

वह कह ही डालती, पर फिर खयाल आ गया था—"मुझे खुश जानकर आश्विन को जो खुशी होती है, उसकी हत्या हो जाएगी; मैं ऐसा क्यों करूं!"

एक बार जब आश्विन ने उससे पूछ ही लिया था कि मिशेल सार्दू के वे गाने उसे कैसे लगते थे, तो वह बोल गयी थी—झूठ बोली थी—"मुझे बहुत अच्छे लगते हैं, अशु!"

"पर तुम्हारी प्रिय गानेवाली तो मिरेई माचिये है न?"

"सार्दू के गानों को तुम गाते हो, इसलिए वे मुझे मिरेई के गानों से भी अधिक अच्छे लगते हैं।"

चित्रा एक बार फिर झूठ बोली थी और आश्विन एक बार फिर सच बोला था—

"यही वजह है कि मैं उन्हें गाते कभी थकता नहीं!"

चित्रा थक चुकी थी।

पर थककर करती क्या? जाती कहां?···

बस उसी सोफे पर लुढ़क जाती थी, जिस पर आश्विन होता था, उसकी गुनगुनाहटें होती थीं, उसका गिटार होता था। बहुत देर बाद आश्विन की अंगुलियां गिटार से छूटकर चित्रा के बालों में उलझने लगतीं—"मेरा मन पब्लिक में गाने को कहता है।"

"क्यों?"

"तुम कहती हो, मेरी आवाज बहुत मधुर है, मेरे गिटार में जादू है!···"

"इसीलिए पब्लिक के बीच जाना चाहते हो?"

"पब्लिक शो से पैसे भी तो आते हैं।···"

"तुम्हें पैसे चाहिए?"

"कब तक इस तरह···"

"कब तक इस तरह, क्या?"

"तुम नहीं होती हो तो अकेले में मन-ही-मन गाने बनाता रहता हूं—सार्दू के गानों से एकदम अलग! उन गीतों को एक बहुत बड़े ऑडियंस में सुनाने को जी करता है; पर फिर सोचता हूं कि···कभी तो एक बहुत बड़े ऑडियंस के बीच सुनानेवाले को शायद एक भी अच्छा सुननेवाला नहीं मिलता होगा और कभी एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही सुननेवाले में गायक को पूरा ऑडियंस मिल जाता है।···मुझे तो यह सौभाग्य प्राप्त है चित्रा, फिर भी न जाने क्यों···"

चित्रा कुछ नहीं बोली थी।

आश्विन ने उसकी बांहें पकड़कर उसे अपने एकदम पास कर लिया था, उसके होंठों के उन स्पर्शों को चित्रा ने अपनी बांह, गरदन और कान के पास होते हुए कंधे पर महसूस तो किया; पर उसे लगा कि वे उसकी अपनी ही अंगुलियां थीं, उसके अपने ही अंगों पर रेंगती हुई। उन स्पर्शों में न ठंडक की गुदगुदी थी, न गरमी की।

फिर भी जब आश्विन ने अपनी बांहों को जकड़ा तो चित्रा उस बन्धन में सिमट गयी। वह तृप्त नहीं थी, पर उसमें आनन्द तो था—चाहे अपने आगे दशमलव लिये हुए। गणित की अध्यापिका चित्रा इसे अस्वीकार नहीं सकती थी।

"चित्रा !"

"क्या है, अशु ?"

"तुम बहुत सुन्दर हो !"

चित्रा को ऐसा लगता जैसे किसीने किसी उपन्यास को बिन पढ़े ही कह दिया हो—बड़ी ही रोचक है इसकी कहानी !

आश्विन की अंगुलियां उसे पढ़ने की कोशिश जरूर करतीं, पर चित्रा के लिए वह एक बहुत बड़े धुंधलके में शब्दों को टटोल-टटोलकर पढ़ने की-सी प्रक्रिया थी।

वह अपने शयन-कक्ष की अलमारी के आदमकद आईने के सामने खड़ी होकर जब कपड़े बदल रही होती तो उसकी दग्ध नज़र आईने पर चिपक जाती थी।

वह अपने बदन को आश्विन की आंखों से देखने का प्रयास करती हुई कुण्ठा की तरंगों में फंसी रह जाती। उसके कानों में आश्विन का स्वर बज उठता—

"गानेवाला गाता इसलिए है, ताकि उसे कोई सुने !···"

जिस कॉलेज में चित्रा अध्यापिका थी, वहां के उसके सभी साथियों ने उससे बार-बार कहा था कि वह मिस मॉरिशस की सौन्दर्य-प्रतियोगिता में भाग ले। वह उस अनुरोध को टाल जाती। एक शाम कॉलेज से लौटकर उसने आश्विन से कहा था—"लोग चाहते हैं कि मैं इस साल मिस मॉरिशस ब्यूटी कॉन्टेस्ट में भाग ले ही लूं !···"

आश्विन कुछ नहीं बोला था।

उसकी अंगुलियां बोली थीं और गिटार के तार घनघनाकर गूंज गए थे—वह मिशेल सार्दू के किसी गाने की धुन नहीं थी। क्या था, चित्रा नहीं समझ पाई थी। मगर उसने हमेशा के लिए प्रतियोगिता की बात को बिसार दिया था।

उन दोनों लड़कों में वह जो मोटर-साइकिल ड्राइव करता था, चेहरे से बड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R 027 2b 97503

दीखता था, पर बोलता वही ज्यादा था। चित्रा के मन में आया था कि वह दोनों के आगे एकाएक खड़ी होकर उनकी हरकतों का एक ही बार में जवाब दे जाए; पर वह हंगामा नहीं चाहती थी।

यामाहा 90 की पिछली सीट पर बैठे रहनेवाला लड़का उम्र में पहले लड़के से छोटा था, पर उसकी सूरत गुंडों-जैसी थी। चित्रा को लगता कि ड्राइव करने-वाला लड़का किसी अच्छे परिवार का था। उसके कपड़े और कट आधुनिक थे। हमेशा ब्लेजर पहने होता। जिस दिन बिना कुछ कहे वह चित्रा को देखकर मुस्कराता रह गया था, उस दिन चित्रा की भौंह तन नहीं पायी थी। उसकी आंखों में उस दिन रोष भी नहीं आया था। उसका अपना मन भी मुस्करा देने को हुआ था, पर वह मुस्कराई नहीं थी।

पुस्तकालय ... विश्वविद्यालय

शाम को आश्विन ने चित्रा को अपना लिखा हुआ नया गीत सुनाया—

ज़ीरे ओ बू जी लार्क-आँ-स्येल
पूर रामासे ले मीयेत दे ते देज़ीर
ज़ीरे ओ बू·········

चित्रा को लगा कि आश्विन का वह गीत उसकी समझ में आया ही नहीं। उन शब्दों से आश्विन ने क्या कहना चाहा था—

मैं जाऊंगा इन्द्रधनुष के उस छोर तक
तुम्हारी इच्छाओं के टुकड़ों को बटोर लाने······

वह गीत आश्विन का व्यंग्य था, उसकी कुण्ठा थी या बेबसी ? गिटार की धुन में थिरकती उमंगें थीं और आश्विन के स्वर में दर्द था। चित्रा समझ नहीं पायी कि उसकी किन इच्छाओं का जिक्र था उस गीत में ?

उसकी सबसे बड़ी इच्छा तो यह थी कि आश्विन उसके भीतर की ब्रिजिता बार्दो को देखे। वह जब स्नानागार से निकलकर अपने कमरे में पहुंची थी तो आश्विन उस गीत को बनाने में लगा हुआ था। वह शब्दों को जोड़ रहा था गिटार की धुन के साथ। तब चित्रा अपने को देख रही थी।

वह जिस अपने को निहार रही थी, उसे आश्विन ने कभी नहीं देखा था। अपने स्कूल के दिनों में चित्रा ने एक बार अपने हैंडीक्राफ्ट के टीचर की मांग पर कपड़ों की एक अत्यन्त सुन्दर गुड़िया बनायी थी। उसने चाहा था कि उसका अध्यापक उस गुड़िया को देखकर चित्रा के हुनर पर हैरान रह जाए।

उस अध्यापक की दूसरे ही दिन तबदीली हो गयी थी। अपनी वह बहुत ही सुन्दर चीज अध्यापक को दिखा सकने की उसकी वह चाह हमेशा बनी ही रह गयी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अशु तुम बहुत अच्छा गाते हो। बहुत अच्छा बजाते हो!"

उसने तो कई बार ऐसा कहा था। झूठ या सच, पर कई बार कहा था। और कई बार चाहा था कि वह भी अपने कानों से सुने—"चित्रा! तुम्हारे बदन से तो सुन्दरता ही सुन्दरता छलक रही है।"

मगर कोई कहता तब तो वह सुनती!

आश्विन जो कहता, वह तो औपचारिकता होती। बहुत पहले देखी हुई दो प्यारी आंखें, दो सुन्दर होंठों की छवि—बस इसी सीमा को तो वह अपने जेहन में लिये हुए था। चित्रा तो असीमित थी। उसकी तो अपनी एक सम्पूर्णता थी। उस सम्पूर्णता की अकेली दर्शक वह स्वयं क्यों थी?···

फूल अपने आप को देखता रहे, इससे क्या होता है! उससे उसके सृजन का, उसके अस्तित्व का कोई महत्त्व ही नहीं रहता; क्योंकि उसके सृजन का विशिष्ट उद्देश्य तो यही रहा होगा कि उसे देखनेवाले मुग्ध हो जाएं!

फूल की सार्थकता तो उसके देखे-सराहे जाने में थी।

"चित्रा! तुम मेरे ही लिए नहीं बनी होती तो इस बदतर हालत में भी मुझे नसीब नही होती!"

अगर सचमुच ही वह उसी के लिए बनी होती तो फिर चित्रा जो कुछ भी सोचती, उसमें मानसिक यातना ही यातना होती!

"गाने की सार्थकता उसके सुनने में होती है, चित्रा!"

"और सौंदर्य की सार्थकता?"

इस नंगे सवाल को वह आश्विन के आगे रख सकती थी क्या?···

छुट्टी थी। आजाद मॉरिशस के वफादार नागरिकों को इंग्लैंड के राजकुमार की शादी के अवसर पर मिली थी वह आम छुट्टी। चित्रा आश्विन को इरविंग के नये उपन्यास के तेरह पृष्ठ सुना चुकी थी। अब चित्रा सिमोन दे बोव्वार, डोरिस लेसिंग, नाताली सारोत और जेकलीन सूजान को नहीं पढ़ पाती। इस तरह की पुस्तकें आश्विन को पसन्द नहीं थीं। वह सनसनीखेज कहानियां पसन्द करता था। चित्रा ने भी उन्हीं चीज़ों को अपनी पसन्द बना लिया था। उसके थक जाने पर आश्विन ने अपने गिटार को बगल से उठा लिया।

शाम का सिकुड़ा हुआ सूरज खिड़की के बीचोंबीच था। गरमी घटी नहीं थी।

आश्विन अपने गिटार पर, सार्दू के एक गीत की धुन पर अपने बनाए हुए नये गीत को पूरी तन्मयता के साथ गाने लगा।

उसके नंगे पांवों के पास बैठी चित्रा उसी लगन के साथ उस गीत को सुनने लगी।

···और उसी तन्मयता के साथ एक ही लगे चित्रा अपने भीतर की जख्मी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छाओं के उस गूंगे चीत्कार को भी सुनती रही···

उसके भाई ने उसकी पिछली सालगिरह पर उसे जो टेलीविजन सेट भेंट में दिया था, उसे आश्विन के अनजाने में चित्रा अपनी सास को दे आयी थी···गली के दूसरे मोड़ पर। क्षितिज का थका-मांदा सूरज अपनी धधकती गरमी तो गंवा चुका था, पर उमस वही थी—सामान्य से दोगुनी।

आश्विन अपनी पत्नी की उस मग्नता को महसूसता हुआ अपने अब तक के सबसे सुन्दर गीत को गा उठा।

उसे खुशी थी कि उसके गीत को चित्रा हजारों श्रोताओं की एकाग्रचित्तता के साथ सुन रही थी। चित्रा अपने भीतर की उमस को पीती हुई, अपने बदन के पसीने की ठंडक को महसूसती हुई अपनी आंखें बन्द किए सुनती रही।

एकाएक—

आश्विन के उस गीत को बीच से चीरती हुई एक जानी-पहचानी आवाज को चित्रा ने सुना। उसकी आंखें अपने आप खुल गयीं। वह धीरे से अपनी जगह से उठी। धीरे ही धीरे चलकर खुली हुई खिड़की के पास पहुंची, सड़क की ओर देखा।

सुनसान सड़क पर मोटर-साइकिल ड्राइव करनेवाला लड़का अकेला खड़ा था। अपने दोनों हाथों को ब्लेजर की जेब में रखे वह एकटक चित्रा को देख रहा था। उसके चेहरे पर मुस्कान थी। उधर आश्विन गाये जा रहा था।

चित्रा खिड़की के बीचोंबीच खड़ी हो गई। कमरे के संगीत को उसने अपने मस्तिष्क में मादारें नाइट-क्लब के संगीत में अनूदित किया।

···अपने गुलाबी ब्लाउज के बटनों को एक-एक करके खोला, फिर धीरे-धीरे अपने बदन पर से एक-एक करके सारे कपड़ों को उतारती गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

अस्वीकार

हर रात अपने कमरे में बन्द आप अपनी जीवन की बातों को लिखते हुए कई बार ऊब भी सकते हैं। कई बार कागजों को फाड़कर फिर लिखने को जी न करेगा। आपके भीतर यह प्रश्न भी पैदा हो जाए कि ये सब कुछ लिखने से क्या लाभ! आप आत्मशांति जैसे किसी बड़े शब्द का अर्थ ढूंढ़ते-ढूंढ़ते एकाएक अपने को अशांत पाने लगें। उस अशांति को खण्डित करने के लिए कमरे के भीतर चहलकदमी शुरू हो जाए। बाहर की वर्षा जारी रहे और उससे भागकर आपका कोई मित्र आपके घर के भीतर आ जाए। उसके आ जाने से आप के भीतर की खलबली मिटती हो और उसे ठण्ड से कांपते पाकर आपको भी मौसम का आभास हो। ठण्ड लगते ही अपनी सिकुड़ती अंगुलियों से खेलने लग जाएं। स्कूल में कभी विज्ञान के आपके अध्यापक ने एनर्जी की व्याख्या करते हुए आपको अपने ही हाथों की रगड़ से शान्ति उत्पन्न करने का उपाय बताया होगा। भीतर की छिपी हुई गरमी के ऊपर आ जाने पर उस अध्यापक की याद आ जाना स्वाभाविक ही रहेगा। उस अध्यापक की याद के साथ बंधी और कुछ यादें सामने आ जाएं, जिससे आप को एक क्षणिक टीस-सी महसूस हो। मित्र की उपस्थिति का यह लाभ रहेगा कि उन बातों के बारे में देर तक सोच न पाएं, क्योंकि वह गरम कॉफ़ी की मांग कर बैठे।

कॉफी की चुस्कियां लेते हुए आप दोनों अखबारों की ख़बरों पर टिप्पणियां आरम्भ कर दें और फिर पिछले दिनों का वह सर्वेक्षण याद आ जाए। जब अपने सम्पादक की झिड़कियां सुनने के बाद सर्वेक्षण को रद्दी की टोकरी में फेंक देने को विवश हो जाना पड़ा था। सम्पादक के मुंह से यह सुनकर मैं भीतर हंसकर रह गया कि मुझे सही सर्वेक्षण करना नहीं आता। तीन दिन के देहतोड़ परिश्रम पर पानी फिर जाने के दुख को छिपाकर मैं उस स्नैक-बार में आ जाता हूं जो अखबार के दफ्तर के ठीक सामने है। बीयर के ऊपर आ गये फेनिल भाग पर नजर टिकाए रहने से सर्वेक्षण के वे क्षण अपने आप सामने आने लगे।

पहले प्रश्न, फिर उत्तर···प्रश्न, उत्तर···प्रश्न, उत्तर!

"आप क्या करते हैं?"

"मैं कुछ भी नहीं करता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरा मतलब, कहां नौकरी करते हैं ?"

"मैं बेकार हूं।"

दूसरी गली में भीड़ की आपाधापी से अलग वह बुढ़िया मूंगफली की टोकरी के सामने बैठी हुई, मेरे प्रश्न सुनकर मुझे घूरने लग जाए।

"जब हर चीज का दाम बढ़ गया तो फिर मूंगफली का भी महंगा होना स्वाभाविक क्यों नहीं ?"

उसके इस प्रश्न से मेरे भीतर के बाकी प्रश्न बाहर न आ सके।

बाज़ार के सामने मछली खरीदने के लिए लोगों की लम्बी कतार में पाकर एक व्यक्ति से मेरा यह पूछ बैठना—

"समुद्र से घिरे इस देश में मछली का यह अभाव क्यों ?"

"यह सवाल सैलानियों से क्यों नहीं पूछते ?"

"सैलानियों से क्यों ?"

"तो फिर सम्बन्धित मन्त्रालय में जाकर पूछो।"

अपनी नोटबुक में मैं यह लिख गया था कि तीन गुनी कीमत पर भी लोगों को मछलियां नहीं मिल रहीं। पर्यटक इस देश से खुश होकर जाते हैं। यहां की मछलियां उन्हें बहुत भाती हैं।

वह मेरी ही तरह कोई लेखक रहा होगा, जिससे मैंने पूछा था।

"इस समय क्या लिख रहे हैं ?"

"एक उपन्यास।"

"शीर्षक क्या है ?"

"अपने देश में अजनबी।"

उपन्यास की कहानी सुनने की इच्छा न पाकर मैं आगे जाता हूं। पीछे से कोई मेरे कन्धे पर हाथ रख देता है। पीछे मुड़कर पागलों की-सी मुस्कान लिये एक युवक को सामने पाया। मेरे सर्वेक्षण में उसका नाम आ जाता कि इससे पहले वही पूछ बैठा था—

"आप पत्रकार हैं···मैं आप को जानता हूं···आप मेरे एक प्रश्न को अपने पत्र में छाप सकते हैं ?"

"कैसा प्रश्न ?"

"हमारे समुद्र-तटों पर अभी और कितने होटल बनने हैं ?"

"मुझे क्या पता !"

"आपको ऐसा नहीं लगता कि कुछ दिनों में एक-दो बचे हुए तट भी कंटीले तारों से घेर लिये जाएंगे ?"

गांव में सब्जियां लेकर पहुंचे हुए एक बूढ़े को नमस्ते करने के बाद—

"आपको भी सरकार से शिकायत है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुझे उन रंग-बिरंगे कीटाणुओं से शिकायत है जो फसल को तहस-नहस करते जा रहे हैं।"

"बढ़ती हुई महंगाई के बारे में आपका क्या ख्याल है?"

"शायद इससे भी परिवार-नियोजन हो जाए।"

मैं भी 'शायद' कहकर उस युवक को रोक लेता हूं, जिसके चेहरे पर बारह बज रहा था—

"क्यों दोस्त, इस तरह उदास क्यों हो? नौकरी नहीं मिली?"

"तुम दे रहे हो?"

"मिल जाएगी। धीरज के साथ प्रयत्न जारी रखो!"

"आप कोई नेता हैं क्या?"

इस प्रश्न से घबरा जाना स्वाभाविक है। रास्ते में चलते हुए एक आवारा ख्याल दिमाग में आया—आक्रोश से भरी यह युवा पीढ़ी कुछ राजनेताओं को चाचा, मामा और बहनोई कहकर अपनी किश्ती को किनारे क्यों नहीं लगा लेती? इसी ख्याल के साथ मुझे वह व्यक्ति याद आ गया, जिसने अपने बेटे को अच्छी-खासी कुर्सी पर बैठाने के लिए जरा भी कंजूसी नहीं की थी। उस लड़के को भी तो मैं जानता हूं, जिसके पास बेहतर लियाकत थी, पर दो हजार रुपये नहीं थे। सर्वेक्षण के पहले ही दिन वह मुझे दालपूरी बेचते हुए मिल गया था। उससे अगर मैं प्रश्न नहीं कर पाया तो केवल इसलिए कि उसके उत्तर को अखबार में छापने का मतलब मेरे लिए वही होता जो 'न्याय' के सम्पादक के साथ हुआ। वह मुराद तो मुझे अपने ही काले कमरे में बन्द होकर मिल जाती है। मेरे भीतर यह इच्छा तो आज भी है कि 'न्याय' के सम्पादक की रिहाई पर मैं उसके गले में हार पहनाने वाला व्यक्ति पहला होऊंगा।

बाहर पानी बरसता रहता है। ठण्डक शीशे को पार करके भीतर पहुंचती रहती है। राजेन कॉफी की प्याली में सिगरेट के टुकड़े को कुचल देता है। मुझे न भाने वाली सिगरेट की वह गंध मेरी नाक में चिपक रहती है। मेरे दिमाग में कुछ ख्याल आते हैं। राजेन की उपस्थिति में उन्हें लिख नहीं पाता, इसलिए उन्हें बन्द कमरे में अकुलाते हुए छोड़कर मैं राजेन की बातों को बीच-बीच में सुनता रहता हूं।

सरकार मुनाफ़ाखोरों के खिलाफ़ जेहाद शुरू कर चुकी है।—तेल और साबुन के बाद अब चावल के लिए भी कतारें लगने लगी हैं···सेड्वीक रिपोर्ट स्वीकृत हो चुकी है···ओकाम से एक और अफ्रीकी देश बाहर आ गया है—कॉन्फ्रेंस में भाग लेने वाले हमारे दोनों मंत्री वहां से आगे जा चुके हैं।···"

राजेन हमेशा इसी तरह बोलता है, गोया वह अखबार से खबरों के शीर्षक और अनुशीर्षक पढ़ रहा हो! मेरी राय में, इसे स्थानीय रेडियो और टेलीविजन का स्पीकर हो जाना चाहिए था। पर नहीं, जहां पहले से ऊब हो, वहां स्थिति और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी बिगाड़ने से क्या लाभ ! और फिर वहां से उसकी चे गुवेवारा, काहेन वेण्डित, तारिक अली और इयान पालाक की दुहाई को कोई सुनना चाहे तब तो। फीडेल कास्ट्रो टाइप की उसकी दाढ़ी एकदम नकली-सी लगती थी, लेकिन उससे उसके चेहरे का वह दाग अवश्य छिप गया था जो चुनाव के दौरान उसे मिला था। उसे ठण्ड से अपने आप में सिकुड़े पाकर मुझे भी गरमी की चाह पैदा हुई। दूसरे कमरे की पुरानी अलमारी में आधी बोतल ओ-दे-वी अब भी बाकी होगी। पता नहीं, होगी या नहीं ! हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती है। मस्तिष्क पर जोर देकर क्षणभर को सोचता रहा—पिछली रात तो मैंने बिल्कुल नहीं पी थी···उससे पहले की रात? उसी रात तो बोतल मंगवाई थी···अनवर भी मेरी ही तरह बहुत कम पीता है, इसीलिए आधी ही बोतल में वह कुछ ज़्यादा बोलने लगा था। इसके बाद तो मैंने अलमारी खोली ही नहीं। जब पूरा यकीन हो गया कि अब भी बोतल में कुछ होगा, तो मैंने धीरे-से राजेन से पूछा—

"आज तुम्हारे परहेज का दिन तो नहीं ?"

यह अनवर का वाक्य है, जिसका यही मतलब होता है कि कुछ तो शुरू हो जाए। स्वाभाविक था कि मेरे इस प्रश्न से राजेन का चेहरा खिल उठे। बस प्रस्ताव के ताप से ही उसका सिकुड़ा हुआ शरीर एकाएक विकसित-सा हो गया। मैं दूसरे कमरे में पहुंचा। अलमारी से बोतल निकाला। उसमें आधे से कुछ अधिक ही थी। घर के पांचों गिलास कहीं जूठे पड़े थे। मेज की सुराही के पानी से कॉफी के दोनों प्यालों को खंगालकर उन्हीं से काम निकाल लिया। प्यालों में शराब पीने का यह तरीका भी अनवर का ही था। वह यही कहता कि दुनिया इसे चाय या कॉफी ही समझती रहे। प्याले को पकड़कर होंठों तक ले जाने की राजेन की अधीरता पर मुझे हंसी आ गयी। वह शौक से नहीं बल्कि ठण्ड से इतना अधिक आतुर हो चला था। यह ठण्ड भी गजब की थी ! राजनीतिक कार्यवाहियों की तरह इसका भी कुछ पता नहीं चलता था कि कब इसका तनिक भी अहसास न हो और कब यह हड्डियों तक जम जाने के संकल्प के साथ आ जाए। इधर तीन दिन से बहुत अधिक ठण्ड थी, क्यूआर्पिप से भी ज्यादा।

ओ-दे-वी की कड़वाहट राजेन को बहुत अच्छी लगी, तभी तो आंख मूदकर वह उसे महसूसता रहा। एक ही घूंट में उसके भीतर की ठण्ड कांप गयी थी। वह कुर्सी पर अकड़कर बैठ गया। मुझे लगा कि बहुत पहले ही वह भाषण आरम्भ कर जायेगा। मैंने चाहा कि दूसरे कमरे में पहुंचकर रेडियो को ऑन कर दूं, पर फिर ख्याल आया कि ओ-दे-वी के दूसरे दौर में राजेन का स्वर रेडियो के ऊपर हो ही जाएगा।

हुआ भी वही। दूसरे प्याले के खतम होने से पहले ही राजेन चिल्ला उठा—

"आई से दी सिस्टम इज रांग ! ये ढंग और तरीके इस जन्नत को जहन्नुम में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदल देंगे !"

"कुछ हस्तियां इस सच्चाई को समझकर भी चुप हैं। यह खुदगर्जी इतनी अंधी क्यों है कि उस तबाही को नहीं देख पा रही, जिसमें खुद फना हो जाएगी।"

वह बोलता गया।

काफी देर बाद वर्षा कुछ थम पायी थी। अंधेरे की गहनता बराबर थी। बहुत ही हलकी लड़खड़ाहट के साथ राजेन अपनी जगह से उठा। उसके साथ मैं भी बाहर आ गया। कोई पांच मिनट के रास्ते पर था उसका घर। बाहर की ठण्ड ने मेरे समूचे शरीर को झकझोर दिया, फिर भी न जाने क्यों वह ठण्ड मुझे अच्छी लगी। उसे अपने अंग-अंग में महसूसता हुआ मैं राजेन को उसके घर तक छोड़ने चल गया। रास्ते में भी वह चिल्लाता ही रहा। पर उसका वह चिल्लाना एक नशे में चूर आदमी का चिल्लाना नहीं था। वह साहस और प्रोत्साहन पा चुकने वाले व्यक्ति का स्वर था। वह अपने क्षणभर के प्राप्त साहस और प्रोत्साहन का पूरा लाभ उठाना चाहता था।

मैंने उसे रोकने का प्रयत्न नहीं किया। वह बोलता रहा। गहन अंधेरे की खामोशी उसे सुनती रही।

आधे मील से कम के फासले के दो मित्रों के बीच आपका घर हो। शहर की रौनक और सुविधाओं के कारण यह फासला और भी कम दीखे। दोनों मित्रों में से एक हर शाम को आपके पास पहुंचकर यहीं जताता रहे कि वह अपनी अनुभूतियों को सहते-सहते थक गया है। दूसरी रात को पहुंचे और उसके भीतर आ जाने पर भी पटरी के कुत्ते भौंकते रह जाएं। वह सहानुभूति के लिए पहुंचे, जब आप खुद उसके मोहताज हों। अपने भीतर के आक्रोश को वह अनाप-शनाप में व्यक्त करता जाए और आप सुनते रहें। दोनों के चले जाने के बाद भी आपका छोटा-सा कमरा उन आवाज़ों से गूंजता रहे। प्रतिध्वनियों की अनुध्वनियां होती रहें और आपको नींद आना मुश्किल हो जाए तो इसी बीच आपकी चारपाई के वे नन्हें-नन्हें जीव भी वह करने लग जाएं जो आपके देश के कई बड़े-बड़े लोग करते आ रहे हों। खटमलों द्वारा आपके खून का पिया जाना इस सावधानी से होता रहे कि आप उसके आदी होकर उसको महसूस भी न कर सकें।

काफी रात बीते मैंने अपनी चारपाई पर बारहवीं करवट ली। ठण्ड से ठिठुरे एक खटमल को मेरे गरम खून की आवश्यकता आ पड़ी। मैं चिहुंककर चारपाई के नीचे आ गया। अन्धेरे में टटोलकर मेज़ पर के उस पुलिन्दे को ढूंढ़ने लगा, जिसमें वह अजीब गन्धवाला पाउडर था। फिर जब याद आया कि खटमल मारने वाली दवा के बदले किसी ने मुझे कुछ और ही बेच दिया था, तो मैं फिर से चारपाई पर लौट आया। खटमलों के मरने का समय अभी नहीं आया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे लेटने के दूसरे ही क्षण बाद जब दूसरे खटमल ने बड़ी बेरहमी से मेरी खबर ली तो खीझ के साथ उठकर मैंने बत्ती जलायी। अपने तकिये के पास की चादर को धीरे से हटाया। काफी मोटा खटमल मेरी आंखों के सामने था। चुटकी से उसे पकड़ा। उसके गुलगुलेपन से मज़ा आ गया। क्षण भर के लिए उसे चुटकी में घुमाता रहा। खून से डब-डब और काला था वह। उससे कुछ देर तक खेलने के बाद मैंने उसे नीचे फर्श पर रखा और अंगूठे से उसे दबा दिया। मेरे शरीर का खून पचाक् से उस खटमल से बाहर निकला और बिखर गया, गोया पिचकारी से निकला हो। आत्म-शान्ति की लम्बी सांस लेकर मैं इस तरह निश्चिंत होकर चारपाई पर पड़ गया, मानो, मैंने चारपाई के सभी दुश्मनों को मार डाला हो। कुछ देर बाद इस सच्चाई को समझकर मुझे अपने आप पर हंसी आ गयी। एकदम ऐसा ही होता है, मेरे पूरे देश में भी ! यहां भी तो अनाचार जड़ें कुछ इस तरह भीतर को समायी हुई हैं कि कौन कहां तक उनका पार पाए !

अनवर जाते-जाते कह गया—

"भूत-प्रेत को बीमार मस्तिष्क की कल्पना माना जा सकता है, पर चुड़ैल कल्पना कैसे हो सकती है ? अनेमिया से पीड़ित औरतों का ख़ून कहां गया ? खून के बैंक से बार-बार खून की मांग क्यों हो रही है ? ये रक्तहीन मजदूर···किसने इन्हें इस तरह चूस लिया ?"···

तरह-तरह के प्रश्न मेरे कमरे में छोड़ दिये जाते हैं। ये प्रश्न अवसर पाकर मेरी चारदीवारी के भीतर ज्वार-भाटे की तरह उमड़ते रहते हैं। कभी लगता है, आदमी उनमें डूबकर फिर ऊपर नहीं आ सकता। कभी तो उन तमाम प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने में भूख-प्यास के साथ नींद भी जाती रहती है।

यह केवल कोरे कागजों पर आधी रात तक लिखते रहने से क्या होता है ? इससे भी तो आदमी ऊब सकता है ! मैं लिखना बन्द कर देना चाहता हूं, पर ऐसा लगता कि लिखना छोड़कर फिर तो जीना ही कठिन हो जायेगा। तो फिर क्या लिखने की विवशता भी खुदगर्जी से भरपूर है ? बहुजन हिताय का भी क्या-अर्थ हो सकता है, जब लेखक खुद भूखा हो ! अपने कमरे के प्रतिध्वनित प्रश्नों के साथ दिमागी कसरत करते हुए मैं सो जाता हूं। सपने कई तरह के आते हैं। धूप में अपनी परछाई को अपना पीछा करते पाना। कभी बहुत बड़ी ऊंचाई से नीचे को गिर जाना, कभी वहुत बड़ी ऊंचाई को चढ़ना। अंधेरे की आंखों से देखते हुए अपने आपसे कह जाता हूं कि जीवन के स्पन्दन का आभास तो मिल जाता है इन चीजों से।

कभी दिन-दहाड़े किसी अच्छे रिपोर्ताज के साथ लौटते हुए ऐसा भी लगता है कि समय बूंद-बूंद टपककर मेरे अतीत के सभी सपनों को डुबाता जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या यही मेरा सपना था कि मैं मीटिंगों के खोखले नारों को छापा करूं? कुछ बातों पर टिप्पणी करने की चाह लेकर भी मैं केवल इसलिए कुछ कर नहीं पाता कि कैंची की खनक हर वक्त मेरे कानों में होती थी। सरकारी नौकरी से तो मैं हटाया जा ही चुका था, क्या पत्रकारिता से भी हटाये जाने का डर था मेरे अपने भीतर?···

पता नहीं क्या था, पर स्वतन्त्र वातावरण में इस तरह की आशंका के साथ जीना कि बरसात की बूंदों से दर्पण चकनाचूर हो जाएगा, कहां तक स्वाभाविक है! कभी कुछ ऐसी बातें सामने आ जातीं, जिन्हें समझने के लिए पच्चीस वर्ष की उम्र से अधिक सहज एक सेकेण्ड की मृत्यु जंचती।

अनवर का विचार कभी एकदम भिन्न होता। अपनी पीठ पर सैलाब का भारी बोझ-सा लिये वह मेरे घर से अपने घर को आते-जाते कई बार कहता रहता कि उसके तो तीनों ही चित्र फूल आये थे। अतीत और वर्तमान से भी ज्यादा धुंधला था उसका भविष्य। उसे इस बात का कम दुख था तो केवल इसीलिए कि वह कॉलेज में इतिहास का अच्छा छात्र था। वह मानने लगा था कि मुद्दतों से आदमी एक ही तरह के प्रश्नों को सुलझाने में लगा हुआ है। वही प्रश्न कल थे, आज हैं और कल भी वही रहेंगे। उलझना-सुलझना तो होता रहेगा। इसके लिए कोई माथा-पच्ची क्यों करे। अनवर कभी इस घर में युद्ध का संकल्प लिये आता, कभी उस युद्ध को हारी हुई लड़ाई कहकर ठहाके लगा बैठता। उसके लिए एटम-बॉम्ब और वायतनाम का युद्ध जितना बड़ा इतिहास था, उतना ही बड़ा इतिहास थी कल की कल्पना भी।

अनवर अस्पष्ट बातें करके चला जाता है। मैं अपनी अधटूटी मेज के सामने बैठा लिखने लग जाता हूं।

साहित्य की नवसाम्राज्यवादी हस्तियों को आज चुप पाकर मैं भी चुप रह जाने को सोच बैठता हूं, पर चुप रह जाने की उतनी शक्ति मुझमे नहीं है। मैं लेखनी से धन नहीं कमा पाया। सुपर विटामिन्स की गोलियां भी नहीं लेता, इसीलिए अभी तो मेरा बोलना जारी रहेगा। लेखनी के कुछ बुर्जुवा आज मन्त्रियों के भाषण तैयार करने में लगे हुए हैं, इसलिए मैं समय का लाभ उठाकर अपना बेसुरा राग अलाप रहा हूं। सुना है, ये बुर्जुवा लेखक भाषण की दो भिन्न प्रतियां तैयार करते हैं—एक जनता के बीच पढ़ने के लिए, दूसरी एक्जीक्यूटिव रूम के लिए।

मेरे जिस लेख के कारण मुझे सरकारी नौकरी से बरखास्त किया गया था, उसका उत्तर लिखने वाला वह पुराना लेखक आज एअर-कन्डीशन रूम में व्हिस्की की बोतल सामने रखकर भाषण तैयार करता है। रात में हार्मोन का इंजेक्शन और फोली बेर्जेर उसके कमरे में होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव की ईर्ष्या भी कितनी स्वाभाविक होती है ! अब तो लिखने की रौ भी जाती रही। अपने भीतर के अपनेपन को परखता रहा। मैं दौड़ में इतना अधिक पीछे क्यों रह गया था ? क्या इसलिए कि मैंने ठण्ड से कांपती हुई सच्चाई के ऊपर झूठ की चादर नहीं फेंकी ? सच्चाई को बीच बाजार में नंगी छोड़ देने की यह सजा थी ? जिन्दगी को जीते हुए उन लोगों के सामने लाघव भावना का अनुभव करके क्यों मैं अपने महत्त्वहीन जीवन का अन्त कर दूं ? तो फिर जिस तरह पंचतन्त्र के कछुवे को अपनी धीमी चाल के बावजूद दौड़ में भाग लेने का अधिकार था, उसी तरह मैं भी अपने मान्यताहीन जीवन को अपना हक मानकर चलूं। कागज की स्वतन्त्रता न सही, अपनी निजी स्वतन्त्रता का आभास तो पा सकूं। मेरे भीतर की आवाज बाहर आने का प्रयत्न करती रहे। अनवर के लिए इतिहास हर वक्त वही इतिहास रहता होगा, लेकिन मैं तो मानता हूं कि समय करवट लेता है।

मेरे उस लेख पर भी उस दिन कैंची चलायी गयी, जिसमें मैंने यह कहा था कि एक दिन घड़ी रुक जायेगी, सूरज जम जायेगा, आकाश डोलने लगेगा, पैसा मूल्यहीन हो जाएगा।

सुबह कुछ जल्दी उठा।

एक तरह से उठा नहीं, उठाया गया था। बाहर के टीन के दरवाजे पर मुक्कों की मार से अनवर ने मेरी नींद हराम की थी। इससे पहले कि मुझे इतने सवेरे उठाने के लिए मैं उसे कुछ खरी-खोटी सुनाता, वह अपना सुनाना शुरू कर चुका था—

"कल तुम्हारे यहां से जाते ही घर पर रेमो को इन्तजार करते पाया। वह कहता है कि सात सौ रुपये में काम बन जाएगा। आज दस बजे वह फिर आ रहा है।"…

"इसका मतलब है कि तुम सौदा कर ही बैठे !"

"क्या करता, तुम्हीं बताओ !"

"मेरे पास इसलिए आये हो ताकि मैं तुम्हें दो सौ दे दूं, ताकि तुम अपने यहां के पांच सौ को जोड़कर सात सौ कर सको ?"

"अपने यहां के पांच सौ में से एक सौ तो इधर खर्च हो गया है।"

"तो फिर मुझसे तीन सौ की उम्मीद रखते हो ?"

"मैं तो जानता हूं कि तुम्हारे पास दो सौ से अधिक नहीं होगा। एक सौ का प्रबन्ध तो कहीं और से करना होगा।"

"नहीं !"

"तुम मिला रहे हो कहीं से ?"

"नहीं।"

"तो फिर…?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं फिर से वही कहता हूं जो अब तक कहता रहा हूं।"

"मैं रेमो के दो ग़वाहों के सामने दूंगा यह रकम।"

"क्या फर्क पड़ता है !"

"वह धोखा नहीं दे सकता।"

"मान लिया जाय कि सात सौ रुपये देकर आप नौकरी में ले लिये जाते हैं··· आप अपने जीवन की एक बहुत बड़ी समस्या का हल कर लेते हैं। ठीक है ! पर इसके साथ ही यह सवाल भी तो उठता है कि क्या आपका ऐसा करना ठीक होगा?"

"मेरे जिन्दगी भर बेकार रहने की बात को तुम ठीक समझते हो ?"

"नहीं, मैं तुम्हारा जिन्दगी भर बेकार रहना ठीक नहीं समझता; पर तुम भी तो मेरे सवाल का जवाब दो !"

"बेबसी आदमी से क्या नहीं कराती !"

"बेबसी आदमी से बहुत कुछ कराती हो, पर इस बेबसी में अनर्थ कर चुकने के बाद आपकी क्या स्थिति होगी ? एक तो आप खरीदी हुई नौकरी के बल पर अपना जीवन गुजारेंगे, जिससे किसी दूसरे का—जोकि आपसे भी ज्यादा योग्य हो—हक मारा जायेगा। दूसरी बात यह है कि आप इन अनर्थों के खिलाफ बोलनेवाले होकर आज उसको बढ़ावा देने जा रहे हो !"

उसे दो सौ रुपये देने को मैं तैयार था। आलमारी की दराज के दो सौ पच्चीस रुपयों में से पच्चीस वहीं छोड़कर मैंने दो सौ रुपये अनवर को थमा दिये। यह मेरी कमाई नहीं थी, घुड़दौड़ में जीती राशि थी।

"तुम्हें पैसा चाहिए। मेरे पास जो था, तुम्हें दे रहा हूं। मगर तुम इससे जहर खरीद लोगे तो मैं अपने को कभी माफ नहीं कर सकूंगा। इससे महीने भर का खर्च चला सको तो मुझे सचमुच खुशी होगी। खैर, तुम जानो··· !"

अनवर पैसा लिये चला गया।

मुझे ऐसा लगा कि जैसे मैंने खुद जहर खरीदकर उसको थमाते हुए कह दिया हो कि जाओ, एकान्त में इसे पी लो, ताकि तुम्हारे भीतर का संघर्ष समाप्त हो जाए और तुम लड़ाई की हार पर दुखी न हो सको !

तनख्वाह मिलने में अभी सत्रह दिन थे।

दराज में थे पच्चीस रुपये।

आपकी लिखने वाली मेज़ के ऊपर से आता हुआ सूरज का प्रकाश। आपके दिमाग के हिचकिचाते विचार, कांपती अंगुलियां। इस भय से लेख का पूरा न हो सकना कि कहीं परिश्रम नाहक न चला जाए। आपकी कलम रुकी रहे। पंक्चर हो गये टायर की तरह आपका पेट, गैस का चुभता हुआ दर्द। रसोई घर के भूखे चूहों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आवाजें। घण्टों से अपनी कुर्सी में चिपके, अपने-आप में सिकुड़े हुए आप, धड़कते हुए शहर, कांपती हुई गोलियों की याद करके भीतर-ही-भीतर कांप जाएं। आपकी खिड़की से दीखता हुआ आकाश कभी लुढ़कता-सा प्रतीत होकर आपको अपनी स्थिति की याद दिला जाए। कभी ऐसा लगे कि आकाश धरती की जगह आ जाएगा और धरती आकाश की जगह। आप अपने को किसी अन्तरिक्ष-यान में कुण्डल क्रीड़ा करते हुए पाने लगें। सूरज का प्रकाश कभी मिथ्या-सा प्रतीत हो आपको, अपने ही अस्तित्व की तरह।

मैं बहुत सारे कपड़ों की कल्पना करता रहा, जिनसे मैं सूरज के प्रकाश को अपने कमरे में आने से सचमुच ही रोक सकता। कुछ लोगों के पास रात्रि में प्रकाश की सुविधा नहीं होती। मेरे यहां दिन में अंधेरे से अपने को ढांपकर असुविधाओं से अपने को वंचित कर जाने की सुविधा नहीं थी। खिड़की से बाहर के दृश्यों में मेरी गली के बच्चों का वह दृश्य ही एकमात्र ऐसी चीज था, जिस पर से आंखें हटाने को जी नहीं करता। मैं वहां की मुक्त हंसी की नकल कई दिनों से करना चाहकर भी नहीं कर पा रहा था।

घण्टों से बैठा मैं महसूसता रहा, अपने भीतर के बौद्धिक दिवालियेपन को। अपने आपसे प्रश्न करता रहा—क्या मुझसे कुछ भी नहीं लिखा जाएगा? मेरे भीतर के वे सारे विचार, जो मैं सोच लिया करता था—क्या वे भी मुझसे व्यक्त नहीं होंगे? मैं उस क्षितिज को देखने का प्रयास करता, जो मेरी गली के उस पार की बड़ी-ऊंची इमारतों से ओझल था।

जहां बच्चे खेल रहे थे, वहां से कोई दस-बारह कदमों पर वह छोटी-सी चीनी दूकान थी, जिसके भीतर जाने से पहले लोग एक बार अपने हाथ की गठरी को देखते, फिर अगल-बगल में देखकर जल्दी से भीतर चले जाते थे। इस वक्त मेरी कलाई पर वह घड़ी थी जो मुझे पच्चास रुपयों में मिल गयी थी। सौदा बराबर का था, क्योंकि कुछ महीने पहले वहीं पर मैं ढाई सौ का रेडियो सौ रुपये में छोड़ आया था।

चार घण्टों के भीतर कई लोगों को भीतर जाते-आते देखता रहा। दूकान की दायीं ओर की वह अधेड़ मुसलमान औरत खीरे को गोल-गोल टुकड़ों में काटती हुई कांच के बरतन में रखे जा रही थी। कुछ ही समय में स्कूल के बच्चे टूट पड़ेंगे। तब तक तो उसकी वह दुबली-सी बेटी भी उसका हाथ बंटाने को आ जाएगी। वही समय होगा जब आसपास के कुछ मनचले लड़के भी मूंगफली और खीरा खरीदने के बहाने जुबेदा को घेर लेंगे। वह स्कूल के छोटे बच्चों के साथ अपने को व्यस्त रखना चाहेगी, इस पर वे मनचले लड़के कई तरह के व्यंग्य कसने लग जायेंगे।

स्कूल की घण्टी बजने में अभी कुछ समय और बाकी था, जुबेदा कल नहीं दीखी थी। हो सकता है आज भी न दीखे! वही आदमी दीखा जो कई दिनों से इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गली में इसी नियत समय पर दिखाई पड़ने लगा था, उसी तरह मैले-अधफटे कपड़ों में, उसी सूखी हुई ईख को सहारा बनाये, वह आगे बढ़ा। ठीक अपने हाथ की लाठी की ही तरह वह समय द्वारा चूसा हुआ व्यक्ति था। उसी बिजली की बत्ती के खम्भे के पास पहुंचकर वह पटरी पर बैठ गया, जहां कुछ क्षण पहले जुबेदा की मां खीरे के छिलके फेंक चुकी थी। अपनी लाठी को नीचे रखकर आस्तीन से मुंह पोंछा, फिर खीरे के छिलकों को उठा-उठाकर चूसने लगा। पहले दिन मैं इस दृश्य को नहीं देख सका था, पर आज अपने को इसका आदी पा रहा था। बस हर स्थिति में आदी हो जाने की देर होती है!

स्कूल की घण्टी बजते ही उस आदमी ने अपनी लाठी उठायी और अपने दूसरे हाथ के छिलके को चूसता हुआ आगे बढ़ गया। ऐसा करके भी वह पूर्णतया अपने को लड़कों से नहीं बचा पाता। कुछ तेज़ लड़के तो घण्टी की आवाज़ के साथ ही गली में आ जाते और उसे तरह-तरह के नामों से चिढ़ाने लग जाते।

देखते-ही-देखते गली की दोनों पटरियां बच्चों से भर गयीं। जुबेदा भी आ गयी और उसके साथ ही वे मनचले लड़के भी टपक पड़े। मेरे घर के सामने इमली का पेड़ था। उस पर लड़कों द्वारा पत्थरों की बौछार शुरू हो गयी थी। पथराव के कारण मुझे खिड़की बन्द कर लेनी पड़ी। मुझे लगता, स्कूल के छात्रों का यह स्व-प्रशिक्षण था हड़ताल के लिए। बसों और दूकानों के शीशों को तोड़ने से पहले ये लोग दो बार मेरी खिड़की के शीशे फोड़ चुके थे।

मोड़ पर की उस दूसरी चीनी दूकान में आज भी मैंने किसी को जाते नहीं देखा। उसकी दूकान की दीवार पर वह इश्तहार अब भी लगा हुआ था, जिसमें उसने अपने ग्राहकों के सामने अपनी निर्दोषिता के प्रमाण रखे थे। पर ऐसा लग रहा था कि लोगों को इतनी जल्दी मान लेना आसान नहीं था। इश्तहार के साथ पुलिस की वह रिपोर्ट भी थी, जिसमें उसका बेगुनाही का सबूत था। बड़े लोगों ने अपने बच्चों को भी उसके बहिष्कार का आदेश दे रखा था। दो-तीन अच्छे अवसरों पर मैंने भी उस दूकानदार से बकरे का गोश्त खरीदा था। यह तो बाद की अफवाह थी कि वह दूकानदार बकरे और भेंड़ की जगह कुत्ते का मांस बेचता है। बिना किसी खास प्रमाण के, कुछ लोग तो बात को सिर्फ इसीलिए सच मान गये थे कि जब मांस का दाम एकाएक ढाई रुपये से छह रुपये पाउन्ड हो गया था, तो भी वह दूकानदार उसे ढाई रुपये में बेचता आ रहा था।

खैर कुछ भी हो—अपने पास अब वह अच्छा अवसर भी तो नहीं, जिसके कारण गोश्त खरीदने की नौबत आए!

कोई आधे घंटा बाद मैं घर से बाहर हुआ। कुछ ही कदम चलने पर मैंने जुबेदा को टीन का पुराना फाटक पकड़े खड़े पाया। मुझे ठिठकते पाकर वह हौले से मुस्करायी और भीतर चली गयी। पीछे से कार का हार्न सुनकर मैं पटरी पर चढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। जुबेदा की मां के सामने से होते हुए आगे बढ़ा। अपनी गली को छोड़कर दूसरी गली में आ गया। जमीन-आसमान का फर्क था दोनों गलियों में। यहां रौनक थी आदमियों की। कपड़ों की दूकानें, बर्तनों की दूकानें, विविध चीजों की विविध दूकानें। इन सारी दूकानों को देखते हुए मैं चीनी संगठन का अन्दाजा लगाने लग जाता। इनकी भी उतनी ही दूकानें थीं, जितनी हिन्दुओं और मुसलमानों की थीं, फिर भी चीनियों की हर दूकान के नाम लाल चीनी अक्षरों में थे। प्रश्न …ये किसके लिए थे? किसे इस देश में चीनी आती है? हिन्दुओं की दूकानों पर हिन्दी क्यों नहीं लिखी होती, जबकि इस देश का हर दूसरा आदमी हिन्दी जानने वाला है!

मुझे भूख लगी हुई थी। भूखे आदमी को इन बातों से क्या वास्ता! चीनियों के पीछे कोई बहुत बड़ा संगठन भी हो तो हुआ करे! बहुसंख्यक हिन्दू अपने को इन छोटी-मोटी बातों में क्यों फंसाएं! प्रतीक की लड़ाई उसके लिए थोड़े ही थी। दूसरे कदम पर आधुनिक टूरिस्ट होटल था। उसके ठीक सामने रामानन्द साव का बेटा अपनी साइकिल पर तिरंगा फहराये दाल-पूरी बेचने में लगा हुआ था; ट्राइसिकल के अगले शीशे पर मोटे अक्षरों में 'जयहिन्द' लिखा हुआ था। ओजपूर्ण शब्दों में "दाल-पूरी लो" चिल्लाकर रामानन्द साव का बेटा चीनियों और क्रिओलों के बीच संस्कृति बेचता-सा प्रतीत हो रहा था। मुझे भी इस भारतीय संस्कृति की सख्त जरूरत थी, इसीलिए जेब से चवन्नी निकालकर मैंने कहा—

"पांच!"

"पांच नहीं मिलेंगी साहब! आटा, दाल, तेल सभी महंगे हो गये हैं। चार आने की चार मिलेंगी।

कीमत बढ़ी थी, दालपूरियां पतली और छोटी हुई थीं। दो ही कौर में खतम। मैं आगे बढ़ गया। पुस्तकों की दूकान के सामने रुक गया। मेन ओनली, प्ले बॉय और पेरिस बाइ नाइट के बीच न्यूज वीक और टाइम का वाटरगेट अंक और उनके नीचे अलेक्जेन्डर सोलजेनित्सीन के 'कैन्सर वार्ड' का फ्रांसीसी संस्करण। मुझे 'फर्स्ट सर्कल' की आवश्यकता थी। पूछने पर दूकानदार मुझे देखता रहा और दूसरे ही क्षण तख्ते से हेरॉल्ड रॉबिन्स की एक पुस्तक उठाकर मेरी ओर बढ़ा दी। यह जानकर कि वह पुस्तक अभी नहीं पहुंची थी, मैं बाहर आ गया।

वही भिखारी उसी छोटे-से होटल के सामने उसी तरह हाथ फैलाये, के० सी० डे के उसी पुराने गीत को अपने उसी ढंग से गाये जा रहा था। मोड़ पर दाल-आटे की जो दूकान थी, उसके पास दो औरतें अपनी पुरानी टोकरियों में फुटपाथ पर बिखरे चावल-दाल के दानों को बटोर रही थीं। लॉरी लादने वाले एक मजदूर के सिर के बोरे से टकराकर एक औरत नीचे को लुढ़क गयी; उसके साथ ही उसकी टोकरी के कोई पन्द्रह-बीस तरह के दाने नाले की गन्दगी से जा मिले। लम्बी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाढ़ी वाला दूकानदार बाहर आकर उसी पर बरस पड़ा। इनुस साथ होता तो प्रथम पृष्ठ के लिए मसाला मिल जाता। मैंने औरत के कन्धे थामकर उसे उठाया, फिर उसकी टोकरी उठायी, जिसका आधे से अधिक बोझ कम हो गया था। उसे टोकरी थमाते हुए इतना आश्वासन तो अपने को दे ही सका कि उसके कमजोर कंधे के लिए बोझ ज्यादा नहीं था।

मैं ठीक समय पर उस दूकान के सामने पहुंच गया था, जहां पुलिस के साथ फूड कंट्रोल बोर्ड का धावा होने वाला था। गुप्तचर विभाग के मित्र ने मुझे यह स्कूप दिया था। उसने यह भी बताया था कि इस दूकान से कोई दो सौ चावल के बोरे निकलने वाले हैं।

बहुत देर बाद दूकान के मामने ठेलागाड़ी पर सरबत बेचने वाले व्यक्ति ने जो खबर दी, उसे अपने अखबार में लाना—अखबार के दफ्तर में हमेशा के लिए ताला लगवा देना था।

वह अप्रकाश स्कूप यों था—

इलाके का पुलिस-इन्सपेक्टर सुबह दूकान खुलते ही दूकान के भीतर पहुंचा था और हाथ में वजनदार बण्डल के साथ मुस्कराता हुआ अपनी कार में जा बैठा था।

अखबार के दफ्तर पहुंचने पर, मेरी मेज पर सम्पादक का संदेश था। आदेश था वह। समुद्री इलाके के एक होटल में अफ्रीकी देशों के होने वाले सम्मेलन के प्रतिनिधियों को दिये गये विशाल भोज का विशाल रिपोर्ताज चित्रों सहित। यह वही होटल था, जहां से अनवर को मित्रों के बीच भोजपुरी में बातें करने पर नौकरी से अलग कर दिया गया था।

एक पत्रकार की धुन में एक कदम के पीछे दूसरा कदम रखते हुए आप पटरी से आगे बढ़ रहे हों। एकदम घिस जाने वीली एड़ी के जूतों की असुविधा से मुक्त होकर आप खबरों और स्कूप की तलाश में चलते रहें। लोगों की निगाहें आप पर पड़ें और फिसल जाएं। वे चिपक जाएं पर्यटकों की उभरी हुई मांसल सुन्दरता पर। आप में उन्हें सीधे देखने की हिम्मत न हो, इसलिए दूकान के शीशे के सामने खड़े होकर उसी के माध्यम से आप उस शारीरिक लावण्य को देखने में लीन हो जाएं। मिनी ब्लाउज़ के भीतर से पारदर्शित सौन्दर्य आपको हल्की-सी खुमारी दे जाए। फिर आपको अपने देश के समुद्र-तट याद आ जाएं, जहां की तनहाई का फायदा उठाकर ये सैलानी उसे नग्नता का शिविर बना बैठे हों।

मैंने पूरे तीन कॉलम का लेख तैयार किया था—चित्रों सहित। सम्पादक खुश हो गया था। लेकिन सेन्सर-बोर्ड ने उसे अश्लील बताकर लेख और तस्वीरें पुलिस से जब्त करवा ली थीं। उस दिन 'ला बेरीते' का प्रथम पृष्ठ तीन कॉलम की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफेदी लिये हुए निकला था।

हेनरी मिलर को गलियों का जीवन अत्यन्त प्रिय है। अगर मैं भी यही कहूं तो यह न समझ लिया जाए कि मैं किसी हस्ती की नकल कर रहा हूं। मुझे गलियों का जीवन अगर प्रिय है तो केवल इसलिए कि यहां दीवारें नहीं होती हैं। यहां का उजाला और अंधेरा दोनों सामने स्पष्ट होते हैं। गलियों में ही मुझे अपने पत्र के लिए सबसे अधिक खबरें मिलती हैं। क्यों न मिलें, जबकि सक्रियता तो गलियों में होती है! गलियों में भिखारी भी होते हैं, धनी भी, मन्त्री भी, बेकार भी। यहां आवारा कुत्ते भी होते हैं और मोटरों की पिछली सीट पर बैठे अल्सेशन भी।

उस अखबार की एक प्रति खरीदकर मैं आगे बढ़ जाता हूं, जिससे हमारा झगड़ा कभी इसलिए नहीं मिटता, क्योंकि वह हमें बुर्जुआ बताता है और हम उसे। एक मिनट ठिठककर मैं उसके शीर्षकों को देख लेता हूं, फिर सब्जीमण्डी के भीतर उस स्थान को पहुंचता हूं, जिसकी दीवार पर मर्दों के लिए—'जेण्ट्स' लिखा होता है। वहां से निकलकर राहत की सांस लेते हुए मैं फिर से गली में आ जाता हूं। इस बार उस गली में पहुंच जाता हूं, जहां की पैसों की गन्ध नाक को सर्दी का दर्द देती-सी लगती है।

फिर से अखबार के शीर्षकों को देखते हुए मैं उस भीख मांगती औरत के पैरों से टकरा जाता हूं जो अपने चार बच्चों के साथ पूरी पटरी को घेरे बैठी होती है। सामने से एक टूरिस्ट उसके बच्चों के साथ-साथ मेरी तस्वीर भी ले बैठता है। मुझे क्रोध आ जाता है। पहले तो मन में आता है कि पर्यटक से उसका कैमरा छीनकर उसे दो थप्पड़ लगा दूं, पर तभी खयाल आता है कि यह तो दूसरे अखबारों के लिए सनसनीखेज खबर बन जाएगी। मैं ऐसा क्यों करने लगा! यह सोचता हुआ आगे बढ़ गया कि अगर मॉरीशस मां की तस्वीर दूर देशों तक जा रही हो तो उसमें बेटे के भी साथ आ जाने में क्या हर्ज है!

कुछ दूरी पर दीवार के फिल्मी इश्तहारों को देखने लगता हूं। एक ओर मार्लोन ब्रान्डो की आदमकद तसवीर होती है, दूसरी ओर शशि कपूर की। दोनों के बीच लाल अक्षरों में लिखे राजनीतिक नारे का पोस्टर था।

जिसने पीछे से मेरी पीठ पर हाथ रखा, वह अनवर था। उसे नौकरी मिल गयी थी, अब वह क्लर्क था। उसकी चढ़ी हुई भौंहें अब नीचे आ गयी थीं। उसकी आंखों में वह विद्रोह भी नहीं था। उसकी मुस्कान यह कहती-सी प्रतीत हुई कि अब वह वामपन्थी नहीं रहा। वह सन्तुष्ट था, इससे मुझे न जाने क्यों सन्तोष नहीं हुआ। उसके हाथ में नीले रंग की फाइल थी। वह जल्दी में था। बस यह कहकर कि शाम को वह मेरे घर आ रहा है, वह आगे को झपट गया। मुझे यह कहने तक का अवसर नहीं मिला कि शाम को मैं घर पर नहीं होऊंगा। हमारा प्रधान मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन की सफल यात्रा से लौट रहा था। मुझे हवाई अड्डे पहुंचना था। कभी-कभार तो अपने इस द्वीप के सौभाग्य पर खुश हो जाना पड़ता है। जहां भी हाथ फैलाता है, कुछ पा ही लेता है। कम-से-कम मेरे देश के फैले हाथों को तो कोई अविकसित नहीं कह सकता !

मुझे रास्ता पार करके दूसरी पटरी पर पहुंचना था। कारें चली आ रही थीं। मैं उस पार जाने के लिए इस पार रुका रहा। मेरे साथ कई लोग रुके रहे। कोई तीन मिनट बाद वह एक पुरानी कार थी जो रफ्तार न बनाये रख सकने के कारण कुछ पीछे रह गयी थी। उसी से पैदा फ़ासले का फायदा उठाकर मैं दूसरी पटरी को झपट गया। अपनी कमर पर बांह के सहारे एक अधमरे बच्चे को थामे एक अधमरी औरत ने मेरे सामने हाथ फैला दिया। मैंने जेब में हाथ डाला। पांच सेण्ट के सिक्के को उसके हाथ पर रखते हुए मैंने अपने-आप को एक छोटा-सा चीन समझा और औरत को एक लघु मॉरीशस।

आगे बढ़ते हुए मैंने सोचा—हर जगह मूल्य-वृद्धि के कारण अब भीख देनेवालों को भी ख्याल रखना चाहिए कि भीख में पांच सेण्ट देने की यह परम्परा अब काफी पुरानी हो चुकी है। अब तो पांच सेण्ट में कुछ भी मिलने को नहीं ! सेड्वीक रिपोर्ट में ये भिखारी हकदार क्यों नहीं ? अपनी रिपोर्ट में भिखारियों की आवश्यकताओं की तनिक भी चर्चा न करके सेड्वीक ने कहां तक न्याय किया था, यह वही जाने ! इन भिखारियों को जो मिलता है, उसे उनका वेतन न मानकर सेड्वीक ने पूरे देश का अपमान किया था। उसे किसी ने यह नहीं बताया होगा कि आदमी को और देश को भी हाथ इसलिए मिले होते हैं कि उन्हें दूसरों के सामने फैला सकें। हाथ पसारना 'काम' कैसे नहीं हुआ, जबकि हर देश पूरी ताकत के साथ ऐसा कर रहा है ? फर्क तो बस स्तर का था !

ऑफिस देर से पहुंचा। अखबार निकल चुका था। अपने रिपोर्ताज पर सरसरी नजर दौड़ाकर मैंने पत्र को रख दिया। मेज पर की चिट्ठियों को देख ही रहा था कि सम्पादक का बुलावा आ गया।

पिछले सोमवार को मेरे लेख पर पाठकों की जो प्रतिक्रियाएं थीं, उन्हें मेरे आगे बढ़ाते हुए मुझसे सफाई मांगी गयी। मैं सम्पादक को समझाता रहा कि उस अनुच्छेद का अर्थ इसलिए गलत आ गया था, क्योंकि उससे पहले की दो पंक्तियों और अन्त की एक पंक्ति पर उसीने नीली कलम चला दी थी। इतने पर भी जिम्मेदार मुझे ही बताया गया।

प्रेस से बाहर भी इस तरह की कई जिम्मेदारियां मेरे ऊपर थोपी जाती रही हैं। जो मैंने किया न हो, उस अभियोग को अपने ऊपर लेने की अपनी इस आदत को मैं कभी भी कोई शब्द नहीं दे सका। अकेलेपन में कभी इसे कायरता भी मानता रहा हूं, कभी कुछ और। तर्क करके अपने को अभियोग से मुक्त करना मुझे कभी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया, तभी तो अपने बाप की नजरों में भी मैं वही रहा जो मैं नहीं हूं। मेरी मां बार-बार कायर, डरपोक कहा करती थी, जोकि मैं नहीं था। मेरे कुछ साथी मुझे साम्यवादी बताते हैं जबकि मैं साम्यवाद क्या है, जानता भी नहीं ! अनवर भी मुझे नास्तिक कहता रहता है, इस नाम की कोई फिल्म देखने के बाद। भला मैं नास्तिक कैसे हो सकता हूं ! मैं तो अपने आप पर विश्वास करता हूं। अभी तो कल ही एक लड़के को एक पर्यटक के फेंके सिगरेट के टुकड़े उठाते देख मेरे मुंह से निकल गया था—"आ ! वोंज्ये।" वोंज्ये का मतलब तो भगवान होता है। भला जो आदमी 'ओह भगवान' कहे, वह नास्तिक कैसे हो सकता है ! पर तर्क तो मैं अपने-आपसे करता हूं। उनके सामने कौन करे !

मुझे इन सारी बातों का भी किसी तरह का दुख नहीं हुआ। हां, अलबत्ता मां के यह कह देने से कि मेरे शरीर में खून की जगह पानी है और मैं डरपोक हूं, मुझे बहुत अधिक दुख हुआ था। अगर मैं सचमुच डरपोक होता तो चुनाव के दौरान की एक मीटिंग में मैंने उस राजनेता से प्रश्न करने का साहस कैसे किया था ! उस सरकारी नौकरी को कैसे अस्वीकार किया गया था, जिसके लिए मेरे बाप ने मंत्री की सिफारिश दिलवाई थी। इस जिन्दगी को मैं कैसे जीये जा रहा हूं ? क्या इसके लिए अदम्य साहस की आवश्यकता नहीं होती ! कई दिनों तक अपने खाली पेट को दबाये, उसी के सहारे सोते रहना क्या किसी कायर व्यक्ति से हो सकता है ?··· और भी कई बातें हैं, जिनसे मैं अपने साहसी होने का सबूत दे सकता हूं···पर यह भी तो अकेले में ही करता रहता हूं। किसी दूसरे के सामने सबूत पेश करने की हिम्मत क्यों अपने को नहीं होती ? क्या इसी बात के लिए मैं डरपोक समझा जाता हूं ?···

मुख्य सम्पादक के यहां से लौटे अभी आधा घण्टा भी नहीं हुआ था कि डायरेक्टर के कमरे में पहुंचने की आज्ञा मिली। वहां पहुंचकर मुख्य सम्पादक तथा अन्य चार साथियों को भी कमरे में मौजूद पाया। बात मेरे पहुंचने से पहले शुरू हो गई थी। मेरे बैठ जाने पर डायरेक्टर ने अपने पाइप को भरते हुए बात को फिर से शुरू किया। एकदम से मुझे ही देखते हुए उसने बात को आगे बढ़ाया—

"लिन्दजे के यहां से चले जाने पर हमने इसे मामूली बात माना था, लेकिन आज दूसरे ही सप्ताह बाद हमें मालूम होने लगा कि वह बात साधारण नहीं थी। एक रिपोर्टर के हटते ही हमारा सरकुलेशन दो हजार से कम हो गया है, इस बात को तुम सभी जान चुके होंगे ! लिन्दजे हमारे यहां से कैसे गया, क्यों गया—अब इन प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने से कुछ नहीं होता। हम आगे की सोचें। कहीं ऐसा नहीं हो कि हमारे पत्र को इससे भी कठिन स्थिति को झेलना पड़ जाए। मुझे पत्र की प्रसार संख्या कम हो जाने का दुख अवश्य है, लेकिन इससे भी ज्यादा दुख मुझे इस बात का है कि विपक्षी पत्र में वह अपनी पूरी ताकत के साथ काम कर रहा है। यहां पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं यह जानना चाहूंगा कि इसका क्या कारण है ?"···

"पैसा !" डायरेक्टर के चुप होते ही इनुस ने धीरे से हम लोगों के लिए कहा जोकि डायरेक्टर ने भी सुन लिया।

"यहां वह मुफ्त में थोड़े ही काम करता था !"

"वहां उसे दोगुना मिलता है।"

"खैर, यही जानने के लिए मैंने तुम सभी को बुलवाया है। तुम पांचों मुझे साफ-साफ बता सकते हो कि क्या तुम भी दो पैसे ज्यादा के लिए अपने पत्रकारिता के उसूल को छोड़ देना चाहते हो ? क्या सरकार के खिलाफ सनसनी खेज ढंग से लिखना ही पत्रकारिता है ?"···

एक क्षण चुप रहकर वह आगे कहता है—

"सभी कुछ तुम पांचों पर निर्भर है। अगर तुम अधिक की कामना करते हो तो फिर हमें अपनी नीति को बदल देना होगा। क्योंकि इस नीति के साथ तो ऐसा होने को नहीं ! हमें अपनी राष्ट्रीय भावना का कम ख्याल रखकर व्यवसाय को अधिक महत्त्व देना होगा। मैं सोचता हूं, बात तुम सभी की समझ में आ गई होगी, इसलिए अब मैं यह जानना चाहूंगा कि तुम क्या सोचते हो ?"

सम्पादक ने कहा—

"हर हालत में हमें पत्र के स्तर को बनाये रखना है।"

"एक मुंह से एक ही साथ रोना और हंसना, यह तो···" इनुस की बात को बीच ही में काटते हुए मार्सेल ने कहा—

"सबसे पहले हम दो हजार के घाटे को पूरा कर लेने की सोचें।"

सम्पादक की ओर देखते हुए डायरेक्टर ने पूछा—"तुम क्या कहते हो ?"

"खपत के प्रश्न के साथ तो मार्सेल जूझ लेगा। हमें तो पत्र को कुछ अधिक सशक्त करके ही आगे के लिए सोचना पड़ेगा।"

"मैं सोचता हूं, सीदने की बात सही है ! क्या मैं तुम पांचों से कुछ अधिक जागरूकता और परिश्रम की आशा रख सकता हूं, इस राष्ट्र के हित में ?"

"और जनता के हित में ?"

—यह प्रश्न मेरे भीतर ही रह गया। अपने बाकी साथियों के साथ मैंने भी सिर हिलाकर हामी भर दी।

दो घण्टे बाद मैं प्लेजांस के रास्ते पर था, प्रधान मन्त्री से पूछने के लिए सवालों को सोचता हुआ, इस राष्ट्र के हित में···।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३

टूटा पहिया

देश की आजादी की दसवीं सालगिरह थी। कुछ लोगों के लिए दस साल बहुत जल्द ही बीत गये थे। देखते-देखते ही आजादी की उम्र दस साल की हो गयी थी। कुछ लोगों के लिए वक्त ने सिर्फ झपकी ली थी और दस वर्ष बीत गये थे। भयवा यूसुफ के लिए ऐसा नहीं हुआ था। उसके लिए तो इधर के ये दस साल, उसकी अपनी जिंदगी के उन पहले साठ सालों की अवधि से भी लम्बे थे।

दसवीं सालगिरह की तैयारियां एकदम उसी तरह हुई थीं, जिस तरह पहली बार आजादी का जश्न मनाया गया था। भयवा यूसुफ की आंखें कुछ कमजोर जरूर थीं, पर उसके कान अब भी तेज थे। वह जहां भी होता, लोगों को उसकी उपस्थिति का खयाल चाहे होता या न होता, पर वह लोगों की हर बात को बड़े ध्यान से सुनता। हर ठौर पर वह यही सुनता कि इस दसवीं सालगिरह की खुशी में सरकार सौ कैदियों को रिहा कर रही थी। पचास से ऊपर के हर वृद्ध को भत्ते के साथ बीस रुपये अधिक दिये जाने की भी बातें हो रही थीं। पंद्रह साल पहले भयवा यूसुफ बुढ़ापे के सरकारी भत्ते का हकदार हुआ था। सरकारी अफसर उसको सभी पतों पर ढूंढ़कर हार गये थे। भयवा यूसुफ के नजदीक के कुछ लोगों से यह सुना गया था कि वह भत्ते का पैसा नहीं चाहता था, इसीलिए भागा-भागा फिर रहा था। और फिर तभी से उसका कोई निर्धारित स्थान नहीं था। उसके बहुत दोस्त थे। गांवों के हजारों लोगों को उसने अपने तांगे पर ढोया था। हजारों लोग उसे जानते थे। वह कभी यहां, कभी वहां टिक जाता। तीन दिन से अधिक वह कभी किसी स्थान विशेष पर नहीं रहा।

सरकार की ओर से उसके पुराने पते पर चार चिट्ठियां पहुंची थीं और चारों लौट गयी थीं। एक बार जब जैतुनियां के पास पाचवां पत्र पहुंचा था, उस समय भयवा यूसुफ वहीं था। जैतुनियां के बेटे ने उसके लिए चिट्ठी पढ़ी थी। गूंगे और बहरों के अस्पताल के निदेशक ने वह पत्र लिखा था। उसमें यह कहा गया था कि अगर सचमुच ही भयवा यूसुफ को भत्ता नहीं चाहिए, तो वह सरकार के पास जमा अब तक की राशि को अस्पताल के नाम दान कर दे। साथ में जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कागज था, उस पर भयवा यूसुफ ने उसी क्षण हस्ताक्षर कर दिया था।

वह जहां से भी गुजरता, यही सुनता कि इस बार के स्वतन्त्रता-समारोह में देश-देश से हस्तियां भाग लेने आ रही हैं। कहीं से राजकुमार, कहीं से मंत्री, कहीं से लेखक, कहीं से गाने वाला तो कहीं से नाचने वाली।

जवानी में उसकी एक ही तो बड़ी कमजोरी थी। शादियों और जलसों में कव्वाली और नाच देखने के लिए वह दूर-दूर तक चला जाता था। जब उसने सुना कि इस आजादी की सालगिरह के जश्न पर शां-दे-मार्स के मैदान में नाच-गाने का भी आयोजन था, तो उसमें एक बार फिर जवानी की उमंगें खलबला-सी उठी थीं। फिर जब उसने यह सुना कि हिन्दुस्तान की शकीला बानू भोपाली आ रही है, तो यह खबर उसके इस ढले हुए जीवन का सबसे बड़ा प्रलोभन बन गयी। वह फिल्मों का कोई बहुत बड़ा आशिक तो नहीं था, लेकिन शकीला बानू भोपाली की शायद ही कोई ऐसी फिल्म रही हो, जिसे उसने न देखा हो। यहां तक कि जैतुनियां इस संबोधन से भीतर-ही-भीतर खुश होकर भी ऊपर से आगबबूला होती रहती थी। उसे लगा कि शां-दे-मार्स के उस विस्तृत मैदान में तोरण-झंडियां आदमियों से अधिक थीं। कड़कती धूप से अपने को बचाने के लिए वह छांव का एक टुकड़ा ढूंढ़ता रह गया था। जहां-तहां छांव के जो टुकड़े थे, वहां पहले ही से लोग इकट्ठे थे। बस टर्मिनस से सीधे चलकर वह पहुंचा था। बहुत दिनों के बाद उसकी परेशानी पर पसीना उतना बारीक झलका था। उस पसीने में परिश्रमवाले पसीने की ठंडक नहीं थी।

वह मंच के एकदम नजदीक आ गया था। शकीला बानू भोपाली को वह नजदीक से देखना चाहता था। इधर वह अखबार नहीं पढ़ता था। अखबारों में ताजा खबर आयी थी कि शकीला बानू भोपाली आजादी के जश्न में भाग नहीं ले सकेंगी। भयवा यूसुफ के यहां पहुंचने का एक मकसद था। वह इसी प्रतीक्षा में धूप को अपने सिर पर थामे खड़ा रहा। कॉलेज के छात्रों के बाद सेगा का कार्यक्रम हुआ। पुलिस की टुकड़ी के बाद बालचरों ने अपनी करामात दिखायी। चीनी छात्रों की ओर से ड्रैगन के नृत्य पर तालियां देर तक बजती रहीं। अपनी अधीरता को न संभाल पाकर भयवा यूसुफ ने अपनी बगल के लंबे वाले युवक से पूछा—

"शकीला बानू भोपाली कब आयेगी ?"

"वह नहीं आयी है। उसकी जगह पर हेलेन आ रही है।"

कुछ आगे बढ़कर उसने यह बात दूसरे लोगों से भी पूछी। हर बार उसे एक ही उत्तर मिला। उसे थकावट महसूस होने लगी। अपने मुरझाये हुए, झुर्रियां भरे चेहरे के साथ वह मैदान से बाहर होने लगा। सड़क के पास भीड़ अधिक थी। लोग मंच के पास से हटकर औद्योगिक विज्ञापन--जुलूस देखने के लिए इधर आ गये थे। फूलों और सजावटों से लदी हुई ट्रकें और लारियां। हर ट्रक और लॉरी पर अलग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग उद्योग की प्रतीक झांकियां थीं। मछली उद्योग के ट्रक को जहाज का रूप दिया गया था। मछुओं के लिबास में चार व्यक्ति गा-बजा रहे थे। शक्कर उद्योग का चलता हुआ गन्नों का खेत और चीनी कारखाना, होटलों का अपना ट्रक, पर्यटन विभाग की अपनी सजी हुई लॉरी। नुमाइशी जुलूस की पचास से ऊपर लॉरियां और उन सबके पीछे एक एयर लाइंस की हवाई जहाज के रूप में सजी झांकी की अगवानी करता हुआ एक तांगा। भयवा यूसुफ इस दृश्य से कांप उठा। उसे लगा, वह उसका अपना ही तांगा था, उसका अपना ही गेहुंआ घोड़ा, दस वर्ष का······।"

अपनी बगल के व्यक्ति से उसने पूछा—"यह तांगा क्यों?"

"यह बताने के लिए कि यात्रा कहां से शुरू होकर हवाई जहाज तक पहुंच गयी है।"

दस वर्ष पहले···

शहर की नगरपालिका से उसे चिट्ठी मिली थी। वहां पहुंचने पर उससे कहा गया था कि शहर में आधुनिक यातायात बढ़ जाने के कारण अब सड़कों पर गाड़ी और तांगे नहीं चल सकते। नगरपालिका के इस निर्णय पर भयवा यूसुफ तीन दिन से अधिक चिंतित नहीं रहा। उसे तीन दिन लगे थे, अपने आप को आश्वस्त करने के लिए। कुछ महीने पहले ही एक बार उसे खयाल आया था कि वीर कुणाल बूढ़ा हो चला था। नगरपालिका के निर्णय के बाद उसने यही ठीक समझा कि अब वीर कुणाल की हालत का खयाल रखते हुए उससे तांगा न खिंचवाया जाए। घुड़दौड़ के बाड़े के उस ऊंचे अहाते से वह वीर कुणाल को बाहर लाया था। उस समय घोड़े का नाम कुछ और ही था। तांगे में जोतते हुए उसकी आंखों पर जब उसने चमड़े की पट्टी लगायी थी···तो अकारण उसे 'वीर कुणाल' फिल्म की याद आ गयी थी। उसने घोड़े का नाम वीर कुणाल तो रखा ही था, तांगे पर भी उसने यही नाम लिखवा लिया था। तांगे के रुकने का वह शायद सातवां दिन था कि वीर कुणाल को बेकारी की वह जिन्दगी दबोच गयी थी। उसकी अचानक मौत पर भयवा यूसुफ ने मौत को अपने सीने से टुकड़ा होकर निकल जाते हुए महसूस किया था। वीर कुणाल को दफना चुकने के बाद उसके मुंह से पहला वाक्य बाहर आया था—"वीर कुणाल! मेरे साथ-साथ जितना तू रहा है, उतना तो मेरी परछाईं भी नहीं रही।"

और सचमुच ही वीर कुणाल उसका इतना घनिष्ट था कि जैतुनियां कई बार फुफकार उठती थी—

"यह मरियल घोड़ा क्या हुआ, तुम्हारी तो रखैल लगता है।"

उसका वीर कुणाल अगर मरियल होता—तो वह हर आदमी को समय पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दफ्तर, समय पर घर थोड़े ही पहुंचा पाता। बस एक वही था, जो कभी भूल से भी समय पर घर नहीं पहुंचा। घर से जरूर समय पर ही निकल जाता था, लेकिन घर लौटने का उसका कभी भी कोई निर्धारित वक्त था ही नहीं। जिस दिन निश्चय करके जल्दी लौटने की सोचता, तो कोई न कोई घर लौटने में देरी के कारण बेसब्री लिये उसके सामने आ ही जाता था। वह स्कूल के बच्चों से लेकर बाबुओं तक को दफ्तर तथा रसिकों को सिनेमा तक समय पर या समय से पहले ही पहुंचाता, देर से कभी नहीं। मोटर-गाड़ियों की रोजाना की दुर्घटनाओं के बारे में सुनकर उसे इस बात का बड़ा संतोष होता कि उसने लोगों को इसी दुनिया के ठौर-ठिकाने पर तो समय से पहले अवश्य पहुंचाया था, पर उस दूसरी दुनिया के लिए नहीं। उसके अपने उस लंबे काल में एक ही दुर्घटना हुई थी, वह भी बहुत छोटी-सी। एक नीले रंग की मोटरकार उसके पीछे-पीछे चली आ रही थी। उसे कोई चीनी महिला ड्राइव कर रही थी। शायद ड्राइविंग सीख रही थी। बाजार के सामने जब भयवा यूसुफ ने तांगा रोका—तो गाड़ी पीछे से आकर टकरा गयी थी। चीनी महिला की बगल में बैठे हुए व्यक्ति ने चिल्लाकर उससे कहा था—"खड़े होने से पहले सिगनल नहीं दे सकते थे क्या?"

इस पर भयवा यूसुफ को जोरों की हंसी आ गयी थी। उस व्यक्ति को गाली बकते छोड़ वह आगे बढ़ गया था।

उसके तांगे में जब महिला सवारियां नहीं हुआ करती थीं, तो वह मस्त होकर अपना प्रिय गीत गुनगुनाता रहता, वह कुछ इस तरह था—

भर शहरवा घूम आवे के चार आना दाम बा,
चल सैयां घुमा दे जिनगनियां में का बा।...

पर जब तांगे में महिलाएं होतीं तो भयवा यूसुफ गूंगा बना हुआ लगाम को थामे रहता। मस्जिद के पास गुजरते हुए वह मन-ही-मन खुदा का नाम ले लिया करता था। मन्दिर और गिरजाघर की बगल से गुजरते हुए भी वह ऐसा करता। पर उसका वीर कुणाल कभी खुदा के इन घरों पर इज्जत से पेश नहीं आता था, मानो धरम-करम उसके लिए बना ही नहीं था। हां, एक बात जरूर थी, विधान सभा के सामने से गुजरते वक्त महारानी विक्टोरिया की सफेद मूर्ति के सामने वह अपना सिर नीचे से ऊपर करने लग जाता था। भयवा यूसुफ के लिए यह तय करना भी कठिन ही था कि वह इज्जत से सलामी देता था, या अपनी नापसंदगी दिखाता था। स्वतन्त्रता की दसवीं सालगिरह पर जुलूस के तांगे ने भयवा यूसुफ की सुस्त पड़ गयी यादों के साथ छेड़खानी कर दी थी। वह इस देश का आखिरी तांगेवाला था। उसके जिस तांगे को सभ्यता की सड़कों पर अचड़न कहकर वर्जित कर दिया गया था, आज वही तांगा इतिहास का गौरव बना हुआ था। एक बहुत बड़े खोखले-पन से डरकर वह वहां से भागने लगा। उसके पांवों में दौड़ने की शक्ति नहीं थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर वह भाग रहा था। उसकी उस शिथिल चाल में मीलों घंटे की रफ्तार थी।

उसके पसीने से तर चेहरे के भाव से लगता था, गोया वह बहुत भयंकर सपना देखकर डर गया हो। उसकी सूखी हुई आंखों से झांकता हुआ वह डर आंखों के ऊपर आ गया था। रास्ते में लोग नयी उम्मीदें लिये, आजादी की खुशियों में शामिल होने जा रहे थे। लोग लौट रहे थे—उस ओर से, थके-मांदे, घुड़दौड़ में हारे हुए खिलाड़ियों की तरह।

अपने को वीर कुणाल की याद से मुक्त करने के प्रयास में वह जेहन पर जोर देकर इधर-उधर की बातें सोचने लगा। अखबारवाला खबरों के शीर्षकों को चिल्लाता हुआ सामने से गुजर गया। भयवा यूसुफ के जेहन को खाली-खाली सा पाकर अखबार की सुर्खियों की आवाजें उसमें कूदने-फांदने लगीं—चीन और अमेरिका में दोस्ती, परखनली का पहला बच्चा, ईरान में खलबली, भारत में बाढ़, इसराइल और अरब देशों के बीच तनातनी, केन्याता की मौत, अगला पोप कौन?

भयवा यूसुफ ने बहुत दिन हुए अखबार पढ़ना छोड़ दिया था। जब अखबार पढ़ते वक्त उसे एकाएक ऐसा आभास हुआ था कि अखबार भ्रष्ट हो चला था, उसी दिन से उसने उसे पढ़ना भी छोड़ दिया था। राजनीति के अलावा जैसे कोई दूसरी चीज थी ही नहीं इस दुनिया में, उन्हीं लोगों की तस्वीरें, उन्हीं लोगों के भाषण और विज्ञापन।

जैतुनियां ने तो कह ही डाला था—"अब तुममें कड़वाहट आ गयी है।"

वह हंसकर रह गया था। जैतुनियां तो चारदीवारी के भीतर से दुनिया को झांकती है। वह सड़कों पर आकर उसे पास से नहीं देखती, न ही उसे कभी छूने की ही कोशिश करती है। भयवा यूसुफ तो उसे इतने पास से देखता था कि आंखें चुभने लग जातीं। वह तो रोज एक ही तरह की चीजें देखता चला आ रहा था। वे ही सनसनी पैदा करने वाले अखबार, वे ही नंगी बेशर्म फिल्में, वे ही हड़तालें, डिस्को मे निकलते हुए नौजवान, शोर मचाता हुआ संगीत, हर जगह से उसी जबान की गूंज—जिसमें डूबकर रह जाती थी अपनी निजी जबान की आत्मीयता, सड़कों और दुकानों में नंगी तस्वीरों और बेहूदा पुस्तकों की नुमाइशें, लाउड-स्पीकरों से आते हुए वे ही घिसे-पिटे भाषण, लड़के-लड़कियां एक ही लिबास में, उनके जींस, बेहूदी तस्वीर वाली कमीजें···नारे-प्रतिनारे!

भयवा यूसुफ की नज़रें उस व्यक्ति पर पड़ गयीं, जो सड़क की दूसरी पटरी पर छाते के नीचे चला जा रहा था। यही वह आदमी था, जिसने यूसुफ के तांगे में सबसे अधिक यात्रा की थी। भयवा यूसुफ भला उसे कैसे नहीं पहचानता! वह भी पहचान जाता, अगर वह छाते के नीचे न होता तो! इस आदमी ने भयवा यूसुफ को दोगुना दिया था। रोज़ पांच बजे सुबह वह उसे लेने शहर के दूसरे छोर पर पहुंच जाता था। वह उसका रोज का पहला यात्री होता था। तड़के ही भयवा यूसुफ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके घर के सामने पहुंच जाता था। उस समय शहर की सड़कों पर कोई कार नहीं होती थी, शायद ठंड के डर से। दिन की खचाखच भरी रहनेवाली गलियां सुनसान होती थीं। जहां-तहां एक-दो आवारा कुत्तों के अलावा कोई नज़र नहीं आता था। वह आदमी भयवा यूसुफ से कहता—"रामजीत, मेरी सुबह तुम लाते हो!"

भयवा यूसुफ का कुल-नाम रामजीत था। उसे अपने परिवार के इस नाम पर कई बार हैरानी हुई थी। रामजीत तो किसी हिन्दू का नाम होना चाहिए था, वह तो मुसलमान था! वह उन सभी मुसलमानों के बारे में सोचने लग जाता, जिनके हिन्दू नाम थे। इसके साथ ही उसे अपना बचपन याद आ जाता···पड़ोस के घर में उसका दिन बीत जाता था। वह हिन्दू का घर था, इस बात का पता तो उसे बहुत देर से चला था, जब उसकी बहन की शादी की बात चली थी; पर यह जानने के बाद भी उसके और पड़ोस के रणजीत के बीच कोई फर्क नहीं आया था, कोई फासला नहीं बना था। होली-दीवाली की मिठाइयां उसके घर आती थीं और ईद की सेवई वह रणजीत के घर पहुंचा आता था। और फिर एक दिन चुनाव की सरगर्मी के बीच उसने पहली बार सुना कि हिन्दू हिन्दू हुआ करता है और मुसलमान मुसलमान होता है। मकतब में जुटाव के बीच, चुनाव में खड़े हुए उम्मीदवार ने तो उस फर्क की व्याख्या में पूरे दो घंटे बिता दिए थे। और अब तो स्थिति यह थी कि हिन्दू-मुसलमान सिर्फ दो अलग धर्म ही न थे, बल्कि एक-दूसरे से कभी न मिलनेवाले दो छोर थे। भयवा यूसुफ ने इन्हीं बातों के कारण न तो अपने को इस छोर पर रखा था और न ही उस छोर पर, वह बीच में था। उसे जहां दोस्ती मिली थी, जहां मुहब्बत मिली थी, वहीं मजहब था उसका। और ये दो चीजें उसे दोनों छोरों पर मिली थीं। उसके लिए सत्य एक था, वही 'जहजिया भाई' वाला सत्य! उसकी मां और बाप दोनों हिन्दुस्तान से आए थे। मां कहती थी—हिन्दू और मुसलमान एक जहाज से यहां आए थे, एक ही छावनी में रहे। एक ही सूरज के नीचे, एक ही कोड़े की बौछारों को पीठ पर झेला···उसकी मां पढ़ी-लिखी बिलकुल नहीं थी।

एक बार कुछ नौजवानों के बीच भयवा यूसुफ ने तो कह ही डाला था—"अरे, तुम लोगों की लिखाई-पढ़ाई किस काम की! तुम लोगों से अच्छी तो मेरी मां ही थी। जाहिल थी, पर अपनी चीज़ों को टुकड़े-टुकड़े करके तालीम की दुहाई नहीं देती थी।···"

चलते-चलते वह थक गया था। एक चीनी क्लब के पास की पटरी से जुड़ी हुई पत्थर की सीढ़ी पर वह बैठ गया। आम छुट्टी होने के कारण जगह सुनसान थी।

भयवा यूसुफ ने अपने हाथ को कोट की जेब में पहुंचाया। कोट की दो जेबें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो खाली थीं और दो में उसका अपना खजाना था जो कभी कोट की जेब से जुदा नहीं हुआ था—कागज़ में लिपटा हुआ एक पुराना ब्लेड, जिसे कांच के ग्लास पर रगड़-रगड़कर वह चोखा करता और उससे मूंछें साफ कर लेता था। कभी-कभार वही ब्लेड दाढ़ी सुधारने के काम में भी आ जाता। महारानी की शाही मुहर लगा वह पत्र भी था जो सीधे इंग्लैंड से उसके पास पहुंचा था। रानी जब मॉरिशस के दौरे पर आयी थी तो राजकीय कार्यक्रम के अन्तर्गत तांगे से एक छोटे-से सफर का भी आयोजन था। उसने रानी को अपने तांगे में बैठाकर शां-दे-मार्स का चक्कर काटा था। उस दिन वीर कुणाल ने जिन्दगी में पहली बार कुछ गलत हरकतें की थीं। मरियल गधे की तरह उसने तांगे को खींचा था। भयवा यूसुफ ने सोचा, शायद वह रानी की हैसियत और हस्ती से सहम गया था!

दूसरे दिन जब अपने सुबहवाले यात्री के सामने उसने बात रखी थी, तो वह आदमी हंसकर बोला था—"नहीं रामजीत, तुम्हारा घोड़ा रानी के सिर पर के तमाम साम्राज्य के बोझ से दबा गया था!"···

उस बात को अपने ढंग से समझकर भयवा यूसुफ ने जोरों का ठहाका लगाया था।

उसकी जेब की तीसरी चीज़ थी, वीर कुणाल के गले की एक छोटी-सी घंटी, और भी दो-तीन चीजें थीं। सभी को अंगुलियों से टटोलता हुआ वह क्षण भर को अतीत के अंधेरे में भटकता रहा। उसमें आनन्द निहित था।

दूसरी जेब में मिस्र से लौटे हुए एक फौजी दोस्त का दिया हुआ काला बटुआ था, जिसमें दो-तीन नोट और सिक्के थे—उसकी अपनी कमाई के आखिरी सिक्के, उसका खजाना। एक बार दुआ के साथ उसके मुंह से निकला था—"खुदा···मेरा अपना सफर इन सिक्कों के खत्म होने से पहले ही पूरा हो जाए, इतनी ही ख्वाहिश रखता हूं!···"

दो दिन पहले उसने बटुए की पूरी रकम को गिना था। बहुत नहीं थी वह रकम। फिर भी उसे लगा था कि अभी सफर बाकी है। फिर ख्याल आया था कि शायद उसे जिन्दगी से इस आखिरी वक्त में मोह-सा हो गया था। तभी तो वह कंजूसी पर उतर आया था! खर्च बहुत कम हो रहा था उससे, क्यों? क्या सिर्फ इसलिए कि कहीं रकम के साथ-साथ उसका सफर भी समाप्त न हो जाए? वीर कुणाल की मौत के बाद जिस मौत को उसने ललकारा था, क्या अब उसी से डरने की नौबत आ गयी थी?···पर फिज़ूलखर्ची भी क्यों करे? जकात तो वह दे चुका था। ये बाकी सिक्के उसकी कमाई की पाक निशानी थे, उसके पसीने की ठोस बूंदें थीं वे!···

उसकी शादी के तीन ही महीने बाद उसकी बीवी की मौत हो गयी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खतिजा को तपेदिक की बीमारी थी। भयवा यूसुफ के साथ खतिजा के परिवार-वालों ने धोखा किया था। बीवी की मौत के बाद खतिजा के परिवार के साथ-साथ उसके अपने परिवारवालों ने भी यही चाहा था कि वह जैतुनियां से दूसरी शादी कर ले। जैतुनियां खतिजा की छोटी बहन थी। खतिजा के परिवार से मुंह मोड़कर आज तक उसने जैतुनियां को छोड़कर किसी से बात तक नहीं की थी। अगर उसी परिवार का सवाल न होता तो वह जैतुनियां से दूसरी शादी कर लेता। पर उससे शादी न करके भी वह उसे कभी अपने से दूर नहीं कर पाया। ज़मीन का टुकड़ा और घर उसके नाम करके ही उसने घर छोड़ा था। अपनी बहन की मौत के कोई बीस वर्ष बाद ही जैतुनियां ने शादी की थी, वह भी जमात के सरदार के मजबूर करने पर। सभी लोग यूसुफ को 'भयवा' यूसुफ कहकर पुकारते थे। एक जैतुनियां ही थी, जिसने कभी भी उसे इस नाम से नहीं पुकारा। एक दिन भयवा यूसुफ ने पूछा था—

"तुम मुझे यूस क्यों कहती हो?"

"मैं तुम्हें उस नाम से नहीं पुकारना चाहती, जिससे हर एक आदमी तुम्हें पुकारता हो। और फिर तुम मेरे भाई थोड़े ही हो!"

"तुम्हारा बहनोई हूं···"

"बहनोई हो, भाई तो नहीं हो!"

"बहनोई तो बड़े भाई की तरह होता है।"

इससे जैतुनियां एक ही साथ नाराज और उदास होकर टल गयी थी।···

कुछ सुस्ता चुकने के बाद भयवा यूसुफ फिर चलने लगा। एक अधखुले फाटक के आगे छोटे-छोटे घुंघराले बालवाले एक काले बच्चे को उदास बैठे पाया। उसके निकट पहुंचकर वह ठिठक गया। क्रिओली में पूछा—"क्या नाम है तेरा?"

बच्चे ने सिर झुका लिया। भयवा यूसुफ ने दोबारा वही सवाल किया। मुंह नीचे किए हुए बच्चे ने सिर्फ आंखें ऊपर करके उसे देखा। भयवा यूसुफ ने जेब में हाथ डालकर वीर कुणाल की छोटी-सी घंटी को बाहर किया। धीरे से उसे हिला-कर घनघनाहट पैदा की। बच्चे की आंखों में प्रलोभन-सा आ गया। घंटी उसके काले हाथ में थमाकर वह आगे बढ़ गया।

वह उस गली में आ गया था, जो आगे चलकर बाजार की ऊंची दीवार के कारण बन्द हो गयी थी। यह वही गली थी, जिसमें भयवा यूसुफ अपना तांगा लिये यात्रियों की बाट जोहता। जब शहर भर में दस से ऊपर तांगे थे, तो वहां तांगों को एक-दो मिनट से अधिक रुकने का अवसर ही नहीं मिलता था। लोग धड़ाधड़ चले आते थे। लेकिन जब भयवा यूसुफ का अकेला तांगा रह गया था तो कभी घंटों प्रतीक्षा करनी पड़ जाती थी। लोग तो टैक्सियों की ओर लपकने लगे थे।···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आम छुट्टी के कारण शहर की वह सबसे रमणीक गली भी सुनसान थी। भयवा यूसुफ ठीक उसी ठौर पर आकर खड़ा हो गया, जहां वीर कुणाल खड़ा रहता था। भीड़ के कोलाहल के बीच वह अपने मुंह को वीर कुणाल के कान तक ले जाकर कहता—"आज तुम्हारे आराम करने की बारी है···"

वीर कुणाल को यह व्यंग्य अच्छा नहीं लगता, अगली टांगों को उठाकर हिनहिनाने लग जाता। भयवा यूसुफ को हंसी आ जाती और वह उसके सिर पर हाथ फेरने लगता—"देखें कोई सैलानी ही निकल आए!"···

ऐसा बहुत कम होता था कि भयवा यूसुफ के तांगे पर सैलानी सवार होते; पर जिस दिन ऐसा होता था, भयवा यूसुफ की तो बांछें खिल जाती थीं। किराया सिक्कों से नहीं, नोटों से चुकाया जाता था। शुरू में उसे यह बात अच्छी नहीं लगी थी, वह मुफ्त का पैसा नहीं चाहता। पर उसके उस सुबह वाले ग्राहक ने कहा था—"रामजीत, ये पैसे मुफ्त के नहीं होते। तुम क्या जानो कि तुम्हारे तांगे में इन सैलानियों को कितना आनंद नसीब होता है!"

उसे बात जंच गयी थी। फिर भी उस तरह की कमाई से वह आधा हिस्सा जकात के लिए अलग रख देता था। सैलानी उसकी और वीर कुणाल की तस्वीरें लेते और उनके बदले में भी उसे पैसा थमा जाते। वह उन पैसों को बच्चों में बांट देता था। रविवार के दिन जब संयोग से वह सूरज डूबने से पहले घर पहुंचता तो बच्चे उसके तांगे को घेर लेते। घर के सामने के ऊंचे-से पत्थर पर वह अपने हाथ में पोटली लिये खड़ा हो जाता। उन मिठाइयों को पहले लड़कियों में बांटता, फिर लड़कों में। जिसको मिठाई नहीं मिलती उसकी हथेली पर दो सेंट का सिक्का थमा देता।···

भयवा यूसुफ के सामने चाय रखती हुई जैतुनियां बुदबुदाने लग जाती··· 'हातिमताई ही बनना था तो रईस घर में जनम लेते? कोचवान क्यों जन्मे? यहां आदमी पाई-पाई को दांत से दबाये जिंदगी को बेहतर बनाये चले जा रहे हैं; एक तुम हो कि खैरात में लगे हो!···'

बैठे-बैठे भयवा यूसुफ को झपकी-सी आ गयी। उसे लगा कि जैसे क्षण भर की उस झपकी में उसने वीर कुणाल को देख लिया हो! आंखों में अनायास आंसू छलक आये। उसके मुंह से निकल पड़ा—"वीर कुणाल!"···

वह अपनी जगह से उठने को हुआ कि तभी जीन्स पहने दो लड़के उसके सामने आकर खड़े हो गये। दोनों के बाल कंधे तक थे। एक ने अजीब ढंग की दाढ़ी बढ़ा रखी थी। एक का बुश्शर्ट लाल था, दूसरे का काला; एक के बुश्शर्ट पर नंगी औरत की तस्वीर थी, दूसरे के बुश्शर्ट पर अस्त-व्यस्त अक्षरों में न जाने क्या लिखा हुआ था। दोनों भयवा यूसुफ के एकदम निकट आ गये। एक के हाथ में अब भी गांजे की सिगरेट थी। दोनों में जो सांवला था, उसने भयवा यूसुफ की दाढ़ी पर हाथ फेरते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए कहा—"कितनी प्यारी दाढ़ी है !"

दूसरे ने उसके मुंह तक गांजे की सिगरेट पहुंचाते हुए पूछा—"लोगे एक दम?"

कुछ पीछे हटकर भयवा यूसुफ ने कहा—

"क्या चाहते हो तुम दोनों ?"

"जो हम चाहते हैं, दोगे हमें ?',

"मेरे पास कुछ नहीं है !"

"सरकार भी ऐसे ही बोलती है !"

"कौन हो तुम लोग ? मुझे तंग मत करो !"···

"अरे, कमाल है ! तुम तो हूबहू मंत्रियों की तरह बोलने लगे।"

"हटो, मेरा रास्ता छोड़ो !"

"तुम्हारा भी जुलूस निकलेगा क्या ?"

एक ने गांजे का कश लेकर धुआं उसके चेहरे पर छोड़ दिया। दूसरे ने उसके कोट की जेब में हाथ डालकर चीजें बाहर निकालीं, उन्हें देखा और फेंक दिया। दूसरी जेब में हाथ डालना चाहा कि तभी भयवा यूसुफ हट गया—"क्या चाहिए तुम्हें ?"

"महारानी एलिजाबेथ की तस्वीर।"

"मेरे पास महारानी की तस्वीर क्या करने लगी !"

"देते हो या नहीं ?"

"पर भाई, मेरे पास तस्वीर हो तब तो दूं ?"

"बकते हो, साले ! आजादी के दस साल बाद भी रानी की तस्वीर ही सभी कुछ है ?"

यह कहकर लड़का उसकी जेब से बटुआ निकाल लेता है। उसमें से एक नोट निकालकर भयवा यूसुफ की आंखों के पास ले जाते हुए पूछता है—"यह तस्वीर तुम्हारी मां की है क्या ?"

उसने अपने मित्र को बटुए के भीतर की चीज़ें दिखायीं। दोनों ने मिलकर भयवा यूसुफ को पटरी पर बैठा दिया। नीचे से कागज़ के कुछ टुकड़े उठाकर उन्हें टुकड़े-टुकड़े किया और फूलों की तरह भयवा यूसुफ के सिर पर गिराकर दोनों दूसरी गली की ओर दौड़ गये।

भयवा यूसुफ बैठा रहा, उससे उठा नहीं गया। कोई दस-पन्द्रह मिनट बाद हा दो व्यक्ति सामने से गुजरे। एक ने जेब से एक सिक्का निकालकर भयवा यूसुफ की गोद में गिरा दिया। भयवा यूसुफ उसी तरह बैठा रहा। काफी देर बाद आजादी का जश्न खत्म होने पर इस गली में भी थोड़ी-बहुत चहल-पहल हुई। भयवा यूसुफ दीवार से टिका हुआ बैठा रहा, बैठा ही रहा···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इश्तहार : चन्द छपे-अनछपे सम्पादकीय का

इधर सात वर्षों से मैं महात्मा गांधी संस्थान की पत्रिका 'वसंत' का सम्पादन कर रहा हूं। इन सात वर्षों में कोई भी ऐसा वर्ष नहीं रहा, जब मेरे सामने दम-घोंटू स्थिति न आयी हो। हर दूसरे-तीसरे महीने एक-एक सांस के लिए अकुलाना पड़ा है। संस्थान के कुछ दिमागी जकड़न वाले विद्वानों और साहित्यिक प्रतिमानों के महारथियों के कारण बार-बार मेरी रचनाओं को शूली पर चढ़ाया और उतारा गया है। आडम्बरों की लीपापोती और संड़ाध वाले साहित्यिक प्रतिमानों के सामने लिजलिजेपन और निहत्थेपन की स्थिति में पहुंचना पड़ा है। कभी एक रचना की जवाबदेही हिन्दी और साहित्य के तथाकथित महारथियों के सामने देनी पड़ी है तो कभी दूसरे के लिए बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज का मुजरिम होने तक की नौबत आयी है। कभी निदेशक के क्रोध का शिकार हुआ, कभी प्रधान मन्त्री की नाराज़गी का। कभी इस्तीफा तक देने को विवश हुआ और कभी समझौते के लिए मजबूर। समझौते को अंगीकार अपने लिए नहीं किया···हो सकता है कि उस प्रक्रिया में वह अपने लिए भी हुआ हो, क्योंकि छह-सात हज़ार के बीच की मासिक तनख्वाह के प्रति भी तो मोह रहता है! कुछ भी रहा हो, मेरी अपने आपसे दलील यह थी कि इस व्यवस्था से बाहर जाकर फिर लड़ पाना मुश्किल होगा। लड़ना है तो थोड़ा-बहुत आत्मघाती स्थिति को कबूल करना ही होगा और व्यवस्था के भीतर रहकर ही अभियान को आगे बढ़ाना होगा। बस फिर तो एक पंथ दो काज! सात हजार की तनख्वाह भी बच गयी और लड़ाई जारी रखने के अवसर भी बने रहे!

महात्मा गांधी संस्थान की नींव डाली गयी थी, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए। लेकिन जब उसी संस्थान की पत्रिका में हिन्दी के साथ हो रहे व्यभिचार पर मेरा सम्पादकीय आया तो उसे जला दिया गया। फिर तो सिलसिला ही शुरू हो गया—कभी किसी कविता को जब्त किया गया तो कभी किसी नाटक को, कभी अंक से सम्पादकीय ही उड़ा दिया गया। बार-बार यह आदेश मिलता रहा कि 'वसंत' व्यवस्था के पैसों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से निकलने वाली पत्रिका है, इसलिए उसे व्यवस्था की हर नीति का अनुमोदन करना चाहिए, न कि उसकी निंदा ! मैं बार-बार यही कहता रहा कि मुझसे प्रशस्ति की अपेक्षा संस्थान न करे। धमकियों की परवाह के बिना मैं लिखता रहा, इस विश्वास के साथ कि अगर मैं अपने बाप के पैसों पर जी रहा हूं तो इसका मतलब यह नहीं हो जाता कि घर पर ढाये जाने वाले उसके सभी जुल्मों पर मैं सवाल तक न करूं।

मैं सवाल करता रहा और उन्हीं सवालों को, जो 'वसंत' के सम्पादकीय के रूप में चक्रव्यूह नाम से कभी प्रकाशित और कभी अस्वीकृत होते रहे, आपके सामने मुआइने के लिए रख रहा हूं; क्योंकि इसे खरीदने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता ! ये चीज़ें रोटी के बदले में संस्थान से बेची जा चुकी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१

चक्रव्यूह

एक बोली विशेष को हमारी भाषा का जामा पहनाकर, एक संस्कृति विशेष को हमारी संस्कृति कहकर यह कह दिया कि यह देश की भाषा है, देश की संस्कृति है। देश-प्रेम की भावना से हमने भी उस भाषा औरउस संस्कृति को अपनाया। हमारे अपने लोगों में एक वर्ग ऐसा भी हुआ, जिसने इन लादी-थोपी चीज़ों को 'अपना' कहकर आत्म-गौरव भी अनुभव किया। आज जब हम ऐतिहासिक यात्रा के एक पड़ाव पर नवसर्जन, नवचिन्तन की दुहाई दे रहें हैं तो एक प्रश्न अपने आप पैदा हो जाता है। और यह प्रश्न है उसी आत्म-गौरव अनुभव करने वाले वर्ग से।

क्या इस देश के संघर्ष और विकास से जुड़ी हुई एक ही बोली रही है? खेतों में पसीने की बूंदों के साथ खून के कतरे भी बोने वालों के संघर्ष और राष्ट्र-निर्माण से जुड़ी हुई कोई दूसरी संस्कृति भी थी? थी कोई ऐसी भाषा, जिसमें इस देश की सबसे दारुण यन्त्रणा झेलने वालों और सबसे अधिक पसीना बहाने वालों ने अपनी अभिव्यक्ति की है? जिसमें इस मॉरिशस की धरती की सोंधी गंध है, ऐसी कोई भाषा है?

इस प्रश्न का उत्तर 'नहीं' में देने का साहस किसी में नहीं है। और जब इतिहास के दस्तावेज के रूप में इस प्रश्न का उत्तर 'हां' होता है, तब तो इतना पूछने की इजाजत भी तो इस स्वतंत्र देश में हमें मिलती है कि क्या कारण है, फिर उस संस्कृति और उस भाषा को भी वह महत्त्व क्यों नहीं मिलता जो तथाकथित राष्ट्र-भाषा को मिल रहा है? स्वतत्रंता के बाद यह मनोवृत्ति कहीं नवसाम्राज्यवाद की तो नहीं?

हमारा यह दावा तनिक भी नहीं कि खेतों-गांवों और स्वतत्रंता की विजेता बैठकों की, इस संघर्ष और निर्माण की भाषा को राष्ट्र-भाषा करार दिया जाए। पर क्या बहुसंख्यकों की इस भाषा को भी वही दर्जा नहीं मिल सकता जो एक बोली विशेष को मिल सका है? हमें यह नहीं लगता कि इसके उत्तर के लिए हम बाहरी और बेबस व्यवस्था का मुंह ताकें!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा मात्र अभिव्यक्ति का साधन कभी नहीं रही, और न ही संस्कृति कभी किसी जाति के मात्र प्रतीक के रूप में रही है। ये दोनों जाति को अंदरूनी ढंग से जोड़कर उसे शक्ति प्रदान करती हैं।

जिस तरह हमने औरों की चीज़ों को सिर्फ इसलिए स्वीकार लिया क्योंकि उन्हें इसी मिट्टी पर पनपने का अवसर मिला है, उसी तरह हम अपनी भाषा और संस्कृति को भी आधुनिकता के नाम पर नकारे तो नहीं ! इतना ही नहीं, हमारी इस सम्पत्ति और इतिहास की इस धरोहर को वे भी अपनाएं जो राष्ट्रीयता के नारे बुलन्द कर रहे हैं। पर वे तो सम्भवतः तभी इसे स्वीकारेंगे, जब हम अपने को विसंस्कृतीकरण की चकाचौंध में अंधा बन जाने से रोक सकें। और कितनी बड़ी विडम्बना है यह कि इस देश के कुछ बुद्धिजीवी और क्रान्तिकारी जिस व्यक्ति को तीसरी दुनिया का मसीहा मानते हैं, उसी का यह कहना है कि राजनीतिक साम्राज्य से भी अधिक हीनता पैदा करने वाला सांस्कृतिक साम्राज्य होता है। राजनीतिक साम्राज्य तो हमारे ख्यालों को संकुचित करके हमें गुलाम बनाता है, जबकि सांस्कृतिक साम्राज्य हमारी आत्मा तक को आतंकित, भयग्रस्त और गुलाम बना लेता है।

दमनचक्र चल पड़ा है। मानवाधिकार की रक्षा की आवाज़ भी कहीं इस चक्की में पिस नहीं जाए, इसके लिए ऐतिहासिक तंद्रा को झटका देकर वार्षिकोत्सवों में माला पहनाने वाले यह जान लें कि भोजपुरी और हिन्दी के बिना इस देश का कोई इतिहास है ही नहीं !

एक बार फिर कुछ देशों से पहुंचे नाचने-गाने वालों ने आकर हमारा मनोरंजन कर दिया। आपकी पत्रिका भी अपना वर्ष पूरा कर रही है और अपने दूसरे वर्ष में कदम रख रही है। इसके निकलने में थोड़ी-बहुत जो देरी हो जाया करती है, उसका एक सबसे बड़ा कारण यही है कि हिन्दी पत्रिका होने के नाते इसे पाठकों तक पहुंचने से पहले बहुत कुछ भुगतना पड़ता है। यह दुर्भाग्य मात्र 'वसंत' का नहीं बल्कि हिन्दी का ही है? चाहे वह भारत हो, चाहे मॉरिशस—हिन्दी की प्राथमिकता तो दूर की बात रही—सही मान्यता ही मिलने में अभी कुछ और आजादी के जश्नों का समय लगेगा।

पिछले दिनों में 'धरती के इस स्वर्ग' पर भी वायु-प्रदूषण के खतरे की चर्चा होने लगी है। औद्योगिकता, सभ्यता या आधुनिकीकरण—किसे कारण बतायें? अभी बहस इसी पर चल रही है। इस समय जब वातावरण-प्रदूषण की बात हो रही है तो क्या एक बार उस दूसरे प्रदूषण के बारे में भी हमने सोचा? हम यहां प्रदूषित व्यवस्था की चर्चा नहीं कर रहे हैं। हमारा मतलब मानसिक प्रदूषण से है, वह प्रदूषण जो हमारे अपने लोगों के जेहन में फैलता चला जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी अपनी पहचान को औरों की जूठन के साथ जोड़ता चला जा रहा है। आज भी औपनिवेशिक अभिव्यक्ति को अपनी भाषा करारते हुए आत्मगौरव का अनुभव ?

विकास और सफलता की लम्बी फेहरिश्त में जहां-तहां चन्द अवसरवादी और सुविधाजीवी एक नये आंदोलन को लेकर चल पड़े हैं। जाति विशेष का प्रचार —हम ये हैं—वह वह है ! अगला मोर्चा धनी और गरीब का नहीं होगा, शोषित और शोषक का नहीं होगा। वह गरीब का अपने दूसरे गरीब साथी के खिलाफ होगा, एक शोषित का दूसरे शोषित के खिलाफ।

सांस्कृतिक साम्राज्य की इस साजिश में आकर आज गरीब मजदूर भी अपने दूसरे गरीब मजदूर साथी से कह रहा है कि मैं फलानी जाति का हूं, तुम फलानी जाति के हो।

जेहन के भीतर का वह विषाक्त वातावरण, यह नासूर जिसकी लपेट में अब नयी पीढ़ी भी आने लगी है, इसका कोई उपचार है ?

हम एक बार फिर हिन्दी की बात करना चाहेंगे। जहां तक मॉरिशस का प्रश्न है, हिन्दी शुरू से आन्दोलन, अधिकार की रक्षा तथा अस्मिता की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है। डेढ़ सौ साल पहले इस देश के मेहनतकशों ने हिन्दी और भोजपुरी के माध्यम से ही इस देश में जीवित रहकर आगे बढ़ सकने के अपने अभियान को आरम्भ किया था। तब से दो पीढ़ियों तक यह भाषा श्रमिकों को अंदरूनी ढंग से जोड़ने का काम करती रही। इस यात्रा के दौरान कई हस्तियों ने, कई सभाओं ने अपना योगदान दिया। तब हिन्दी के किसी भी आयोजन में लोग हजारों की संख्या में टूट पड़ते थे, इस भाषा के लिए मरने-जीने को तैयार थे।

आज तो कहा जाता है कि हिन्दी का विकास हुआ है, हिन्दी ने प्रगति की है। उसकी प्रतिध्वनि सियासत की गुफाओं और कन्दराओं में होती है, फिर भी क्या कारण है कि हिन्दी के आयोजनों में आज मक्खियां भिनभिनाती हैं और कुर्सियां अंगड़ाई लेती हैं ?

हमने तो पिछली बार मांग की थी कि व्यवस्था हिन्दी के लिए अधिक सम्भावनाएं पैदा करे। क्या आज हिन्दीवालों से यह भी मांग कर सकते हैं कि वे हिन्दी, अपनी हिन्दी, अपनी रोटी देनेवाली हिन्दी, अपनी पहचान देने वाली हिन्दी, अपनी संस्कृति को उजागर करने वाली हिन्दी के प्रति थोड़ा-सा अधिक उदार हों ?

इस देश में हिन्दी कल भी गरीबों की भाषा थी—आम आदमी से जुड़ी हुई थी, सर्वहारा की सांस्कृतिक धरोहर थी—आज भी है। सामन्तों ने कल भी इससे घृणा की थी, आज भी करते हैं। पर ये वे लोग हैं जो इतिहास को नकारते हैं, जिनके लिए आयात किया हुआ स्वर ही बेहतर स्वर हुआ करता है। हिन्दी के अभियान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को शिथिल कर देने का तात्पर्य होगा, इन दलालों के सामने हथियार डाल देना और अस्मिता की तलाश में निकली हुई कल की पीढ़ी को अभी से ही दिग्भ्रांत कर देना। इतिहास के चेहरे पर मुखौटा लगा देने का अधिकार उन लोगों को हो सकता है, पर हम अपनी सही पहचान को बैसाखी थमा देने के अधिकारी कैसे हो सकते हैं !

मेरे एक मित्र ने कहा—"भाई, जब हिन्दी का भारत ही में कोई भविष्य नहीं, तो फिर यहां हम किस खेत की मूली ठहरे !" हमने जिस भाषा को इस धरती की सोंधी गंध और यहां के हर पौधे के स्पन्दन के साथ संवारा और संजोया हो, उसे अपने ही परिप्रेक्ष्य में क्यों न देखें !

रही भारत की बात, वहां तो अंग्रेज़ी बोलकर आत्मगौरव अनुभव करने की वह प्रवृत्ति अभी तक नहीं गई; और फिर प्रांतीयता भी तो सम्पूर्णता पर हावी है !

चुनाव की सरगर्मी के दौरान अपने को हिन्दी के माशूक बताने वाले और हिन्दी-हिन्दी चिल्लानेवाले आज मुड़िया पहाड़ की चुप्पी साधे बैठे हैं। कोई एक तीसमारखां तो विधान सभा में इस बहुसंख्यकों की तथा आम जनता की हिन्दी में बोलकर दिखा दे !

प्रलयंकर लावा और विस्फोट की इस स्थिति में समय सतही रूप से एक सनसनी को जी रहा है। पूरा माहौल ग्रस्त है। राजनीतिक असंतुलन, सांस्कृतिक भटकाव, सामाजिक अस्त-व्यस्तता और इन सभी तमाशाई उपलब्धियों के बीच आम आदमी बौखलाया हुआ चौराहे पर खड़ा है। कौन सही है, कौन गलत? कौन-सा रास्ता एक उज्ज्वल भविष्य तक पहुंचाने वाला है, कौन-सा रास्ता एक पैबन्द लगे बदतर वर्तमान की खाई में ढकेलता है? सर्वहारा आज दिशाहारा है।

तमाशबीनों की भीड़ और कोलाहल में साधारण आदमी एक असाधारण घुटन और विघटन झेल रहा है। उसके सभी राजनयिक अपनी अलग-अलग लड़ाई में जुट गये हैं। अस्त-व्यस्तता और कुहासे में आदमी आज फिर अकेला है। उसकी व्यथा कौन सुने ! अपने निजी सियासती व्यक्तित्व को चमकाने वाली रोशनी की चकाचौंध ! और उस चकाचौंध में फंस गया है भोला-भाला आदमी, जो अपने सिर पर परिवार का बोझ लिये तो चल ही रहा था, ऊपर से उसके पीठ पर पूरे राष्ट्र के भार की सलीब भी बंध जाती है।

आज के इस विश्रृंखलन में वह किससे शक्ति पाए? सारे देश की अस्पष्टता में वह किसकी सुने? इस अलगाव, उलझाव और टकराव में वह करे तो क्या? यह जो कुछ हो रहा है, इसका परिणाम क्या होगा? कहीं फ्रांज फेनन की वह चेतावनी···

आम आदमी इन बड़ी-बड़ी बातों के पीछे माथापच्ची क्यों करे ! फिर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगर दिन-रात वह खून-पसीना एक करता है तो सिर्फ दो जून रोटी के लिए ही तो नहीं करता ! सभी संघर्षों के साथ उसे इस बात का भी तो ख्याल रखना पड़ता है कि वह नारेबाजी के कोलाहल और वक्त की अस्तव्यस्तता के बीच अपने व्यक्तित्व और अस्मिता को न खो दे। उसे अपने इस दोहरे दायित्व को भी पहचानना होता है, तभी तो वह अपनी पहचान को बरकरार रख सकता है !

लेकिन तथाकथित बड़े लोगों के महाभारत के बीच यह आम आदमी और भी बौना दीखने लगा है। कहीं यह साजिश तो नहीं—उसे सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिवेश से काट देने की ? कहीं इससे उसकी जीवन-प्रक्रिया का मानसिक गतिरोध न हो जाए और वह कचोटती लक्ष्यहीनता, आस्थाहीनता, निष्क्रियता और जड़ता का शिकार न हो जाए ! अभी दो दिन ही तो हुए हैं, सियासत की पीठ थपथपाकर पलने वाले अवसरवादी व्यवसायियों की मुनाफाखोरी का नमूना देखे। एक रातों-रात लखपति बन बैठा तो दूसरा महंगाई के बोझ के नीचे दब गया !

हाथी के पांवों के नीचे न जाने कितने फूल-पौधे तथा अनुजीव कुचल जाते होंगे और हाथी को इसका आभास तक न होता होगा ! जांते में गेहूं के साथ घुन भी पिस जाते हैं। हमारी ख्वाहिश तो बस इतनी ही है कि हाथी कूदे-फांदे, गैंडे से लड़े या शेर से, पर इतना तो ख्याल रखे कि धरातल पर कुछ ऐसे भी जीव होते हैं जो उनके कद के नहीं होते, पर दोनों के गुत्थमगुत्थों के नतीजे भुगतनेवाले हो जाते हैं !

और राजनीतिक उथलपुथल का प्रलय आम आदमी को डुबो देता है।

१९७९ बाल वर्ष है। बच्चों के अधिकारों और उनकी आकांक्षाओं को मान्यता देने तथा उनकी सही अर्थों में कल का नागरिक होने का अवसर देने का संकल्प। इधर कुछ दिनों से जिस मुद्दे को लेकर उठा-पटक और रस्साकशी शुरू हुई है वह इन्हीं बच्चों से सम्बन्धित है, जिनके प्रति स्नेह का हम दावा करते हैं और जिनके हक की लड़ाई हम लड़ना चाहते हैं। इन दोनों बातों में हमारी ईमानदारी कहां तक बिन मुखौटे की है, इस पर गौर करना आवश्यक हो जाता है।

छठी कक्षा की परीक्षा को लेकर भारतीय भाषाओं को नकारने वालों ने जो जेहाद छेड़ रखा है, उसे इस अस्त-व्यस्तता में समझना बड़ा कठिन हो गया है कि यह जेहाद बच्चों का अपना है या बच्चों को कवच बनाकर बड़े लोगों का अपना कोई महाभारत ?

इस देश में सौ से ऊपर गांव होंगे, जहां के लोग अब तक की शिक्षा-पद्धति के कारण आधुनिक और स्वस्थ कॉलेजों की शिक्षा से महरूम रहे। अच्छे और सरकारी कॉलेजों में वे ही बच्चे स्थान पाते रहे, जिनके बाप के पास हजारों या खर्च करने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए। शिक्षा के निःशुल्क होते ही इस अंधे औपनिवेशिक कानून को मिटाकर सभी छात्रों को बराबर का अवसर देने के प्रयत्न के फलस्वरूप और बाल-वर्ष को सार्थक करने के ध्येय से सरकार ने यह तय किया कि आइन्दा अवसरवादी मनोवृत्ति पैदा करने वाली छात्रवृत्ति को समाप्त कर दिया जाए। एक आजाद मुल्क में तालीम को न्यायपूर्ण रूप देने के लिए यह निर्णय लिया गया कि उन सभी स्थानीय भाषाओं को भी बराबर मान्यता मिलनी चाहिए, जिन्हें लाखों विद्यार्थी पढ़ते हैं, जो डेढ़ सौ साल से संघर्ष की भाषा रही है तथा जिनसे इस राष्ट्र के बहुसंख्यकों की अपनी अस्मिता बनी रही है।

मुद्दत बाद व्यवस्था की कुंभकर्णी नींद टूटी और प्राथमिक स्कूलों में पढ़नेवाले छात्रों को यह अवसर दिया गया कि उनकी भाषाओं के अध्ययन को भी महत्त्व मिले। यह कोई बहुत बड़ी मान्यता नहीं रही! इस थोड़ी-सी मान्यता के बावजूद उनकी भाषाओं को लॉली-पॉप ही नसीब हुआ। उन्हें आज भी वह दर्जा नहीं मिला जो फ्रेंच को प्राप्त है। फ्रेंच के प्रति यह मोह क्यों? यह अंधभक्ति क्यों? एक आजाद मुल्क में आज भी एक भाषा दूसरी भाषा का आका क्यों बनी रहे?

इस देश की मिट्टी की भाषा न तो अंग्रेज़ी है और न ही फ्रेंच। ऐतिहासिक संघर्ष, आर्थिक व्यवस्था और स्वतंत्रता-अभियान को ध्यान में रखते हुए इन भाषाओं को आंकें तो कहीं-न-कहीं हिन्दी तथा उसकी साथी भाषाएं यहां के ईख के खेतों और मिट्टी से जुड़ी लगती हैं, जबकि फ्रेंच शुरू से ही शोषकों की भाषा रही है। आम आदमी की वात करनेवाले, सर्वहारा वर्ग का बहिष्कार करके शोषणपूर्ण सामन्ती व्यवस्था की भाषा को ही गद्दी पर क्यों बैठाये रखना चाहते हैं? क्या हम इसे ही वैचारिक क्रांति मान लें? मानव-मूल्यों की रक्षा और बच्चों की अपनी सही पहचान की नयी व्याख्या इसे ही कहते हैं?

फ्रेंच की तुलना में हिन्दी तो आज भी सोझिया की गाय या अबर की जोरू ही रही। यह कैसी नीति है कि कुछ बच्चे चार ही विषयों में पास होकर परीक्षा में सफलता पा लें, और कुछ चार विषयों में पास होकर भी अगर फ्रेंच में चूक जाएं तो पूरी परीक्षा में असफल माने जाएंगे! हिन्दी में कोई छात्र ९९ अंक पाकर इम्तिहान में नाकामयाव रह जाएगा, अगर वह फ्रेंच में सफलता नहीं पाता है तो! कितनी बड़ी विडम्बना है यह, कितना बड़ा धोखा! ९९ अंकों से हिन्दी में सफल होने वाले छात्र की इस आजाद मुल्क में कोई कदर नहीं, जबकि ऐसे छात्र को प्रतिभा का धनी मानना चाहिए। और यह बाल-वर्ष है!

बच्चों के हृदय से उनकी अपनी जबान नोचकर उसकी जगह पर सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की, यानी दूसरी गुलामी की ज़बान—फ्रेंच आजादी के बाद भी बसायी जा रही है, जिसे राजभाषा न होने के कारण अनिवार्य भाषा होने का कोई हक नहीं, और ऊपर से यह फतवा कि एक भाषा प्रतिष्ठा की भाषा होती है तो दूसरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपेक्षा और बहिष्कार की कैसे हो जाती है ? भाषा और संस्कृति से सम्बद्ध हमारी सभी संस्थाएं होंठों पर साबुत एलास्टोप्लास्ट चिपकाये क्यों बैठी है ? हिन्दी-हिन्दी चिल्लानेवाले वे मसीहा आज भी चुप क्यों हैं ?

वह जो बीत गया—अस्त-व्यस्तता का वर्ष था। सियासती रस्साकशी, उक्टापैंची और उठा-पटक के बारह लम्बे और बोझिल महीने जिनमें बाढ़ भी आयी, तूफान भी आया, महंगाई भी आयी, मुनाफाखोरी भी चली। अलगाव, उलझाव और भटकाव के बीच सतवांस हड़तालें भी हुईं। मॉरिशसीय मुद्रा का एक टुकड़ा चूहा कुतर भी गया। और इन तमाम उपलब्धियों के बावजूद कुछ लोगों के धनी होने की रफ्तार बढ़ती रही और कुछ लोगों के गरीब होने की गति भी तेज़ होती गयी।

आम आदमी को नसीहत होती रही, अपने पेट को थोड़ा सिकोड़ लेने की। दीक्षाएं दी जाती रहीं बरावा कर जाने की, परहेज कर जाने की। पर कौन किससे पूछे कि यह त्याग केवल सर्वहारा ही क्यों करें। जो खुद मोहताज हो, उसे ही बार-बार यह क्यों कहा जाए कि वह फिजूलखर्ची को रोके ? और जो सुविधाजीवी और अवसरवादी है, उसे छूट है हर आयात की हुई लक्जरी की ! नये वर्ष के साथ अगर देश की दयनीय स्थिति में परिवर्तन लाने के उद्देश्य से निर्णय और संकल्प करने हैं तो वह वर्ग-विशेष ही क्यों करे ? उसके लिए हमारी सामन्ती हस्तियां भी तो आगे आएं। पूरा देश ले यह संकल्प ! बस यात्रा-यात्रा-यात्रा···और हाथ ही पसारते-फैलाते रहने से उस बेहतर की कल्पना अपने आप को धोखा देने के अलावा और कुछ भी नहीं हो सकती ! मनोवृत्ति ही अगर बदलनी है तो वह केवल अबर की जोरू ही क्यों बदले ? यह तो पूरे देश को करना होगा !

लगभग सात साल होने को हैं, जब से सरकारी पाठशालाओं के लिए हिन्दी पाठ्य-पुस्तकों के आधुनिकीकरण और तैयारी की बातें चल रही हैं। इस संदर्भ में महारथी आते-जाते भी रहते हैं। हर एक विशेषज्ञ आकर कुछ-न-कुछ शुरू तो जरूर कर जाता है, पर इतनी लम्बी अवधि के बाद आज भी ये पुस्तकें सामने नहीं आ सकीं। पैसे बहाने में न तो कोई लिहाज हुआ है और न ही बुद्धि खपाने में कोई कंजूसी की गयी है; तो फिर कारण क्या हो सकता है, इस कच्चेपन और अधूरेपन का ? क्या हम सिर्फ इतना ही पूछने की धृष्टता कर लें कि क्या अंग्रेजी और फ्रेंच के साथ इसी तरह का व्यभिचार कर जाने की शक्ति है किसी में ?

एक दम्पति है इस देश में, जिन्होंने सारी निष्ठा और परिश्रम के साथ अपना बचा-खुचा लगाकर इस कमी की पूर्ति करने की कोशिश की। कक्षा एक, दो और तीन के लिए लिखी हुई इन युगल लेखकों की तीन पुस्तकें बहुत ही सुन्दर ढंग से छपकर बाजार में आ गयी हैं। इन पुस्तकों में एकाध खामियां हो भी सकती हैं, फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी आज की इस खलनेवाली स्थिति में ये पुस्तकें एक बहुत बड़ी भूमिका का निर्वाह कर सकतीं थीं, बशर्ते घर की मुर्गी को साग बराबर न समझकर अगर इन पुस्तकों को स्कूलों तक पहुंचाया जाता तो ! घर पर बच्चा भूखा मर रहा है। ओरियानी में दुधारू गाय बंधी हुई है और हम दूकान-दूकान भटक रहे हैं डिब्बे के दूध के लिए !

फिर वही मनोवृत्तिवाली बात—कब बदलेगी यह ?

आज़ादी का जश्न एक बार फिर मनाया जाएगा। इस बार देश की तंगहाली और अभिशप्त स्थिति के कारण सम्भवत: मित्र देशों से हस्तियां और नाचने-बजाने वाले न पहुंचे, फिर भी तमाशे से शायद हमें वंचित नहीं रखा जाएगा !

स्वतंत्रता की उपलब्धियों की फेहरिश्त तो बहुत लम्बी हुआ करती है। उन सारे विकासों, कामयाबियों और प्रगतियों के बारे में बोलते हुए लोग अघाएंगे भी नहीं ! भाषणों की लीपापोती, फिर बहुत सारे वायदे और आश्वासन, और उसके बीच राष्ट्रीय-गान की धुन के साथ समारोह पूरा भी हो जाएगा।

और यह भी हो सकता है कि तूफानों-बाढ़ों और आर्थिक जीर्णता के उस पीड़न का वे मदहोश लोग भी एहसास कर लें और यह सालगिरह यों ही खामोशी में गुज़र जाए ! ओ३म् शान्ति: और यों पूरा हो जाएगा एक और अध्याय।

अधूरे तो बस आम आदमी के सपने रह जाते हैं ! वह आम आदमी जिसने आज़ादी के अभियान में भाग लिया, वह आज भी अपनी झोंपड़ी के किसी कोने में बैठा हुआ आजादी की परिभाषा और उसके मूल्यों को पहचानने-समझने में लगा रहेगा, जबकि आज़ादी के विरोधी खुशी में झूमते नज़र आएंगे। इस विसंगति को अंगीकार करता हुआ समय चला आ रहा है और मस्त हाथी के चाल से चलता ही जाएगा।

एक ओर आज़ादी के खिलाफ जेहाद करनेवाले कल के वे विपक्षी अपने सबसे आत्मीय बनकर गले मिलेंगे और अपनी सफलता का एहसास करके आजादी की जय-जयकार करेंगे, तो दूसरी ओर महंगाई के बोझ को सिर पर लिये आज़ादी का कोई सेनानी अपने बच्चों के पेंदीहीन भविष्य पर आंसू बहाता मिलेगा। एक को अपनी गरिमा और सम्पूर्णता का बोध होगा और दूसरे को एक ऐतिहासिक साजिश का निराशा-बोध होता रहेगा। एक ओर अवसर और सुविधाएं, दूसरी ओर अभाव अधूरापन, अभिशाप और आत्मघाती स्थिति !

और यह आदमी जो पीठ पर समय की भारी-भरकम सलीब को ढोये चला आ रहा है, आज भी अपनी इस आशा को बरकरार रखे हुए है कि शायद इस बार उसके ये सियासती मसीहा दिमागी जकड़ से मुक्त होकर अपने सड़ांध भरे माहौल से बाहर आएं ! वे आपस की पैंतरेबाजी को तजकर उस सही लड़ाई को लड़ सकने के काबिल अपने को बनाएं, जिससे ये खेत चुगे जाने से बच जाएं। और……

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तब शायद स्वतंत्रता की अगली सालगिरह मातमपुर्सी-सी न प्रतीत होकर उमंगों और खुशहाली का समारोह प्रतीत हो !

स्वतन्त्रता

यह न तो मात्र एक शब्द है और न ही सिर्फ एक सियासती छलावा ! स्वतंत्रता अगर सचमुच ही मानवीय व्यक्तित्व और उसकी सृजनात्मकता की सच्ची तृप्ति है तो फिर उसमें मानव जाति के बीच सही विचारों का सृजन और सम्बन्धों का विकास निहित है। स्वतंत्रता पाकर आदमी दिमागी जकड़न और सीलन में पड़ा रहे, अतीत और बेबसी की लीपापोती करता रहे तो फिर स्वतंत्रता की गरिमा और उसकी सम्पूर्णता का बोध नहीं हो सकता।

आदमी के इस जन्मसिद्ध अधिकार और इतिहास की इस विराट उपलब्धि को एक सीमा मानकर बैठा नहीं जा सकता। उसे एक संघर्ष की सफलता के बाद दूसरे संघर्ष का जयघोष मानकर ही उसकी परिभाषा को समझा जा सकता है। स्वाधीनता की अन्तिम परिणति स्खलन नहीं होती, यह दायित्व को और भी बुलन्द करती है। आदमी और आदमी के बीच की खाई को पाटने तथा बराबरी और भाईचारे का संकल्प ही इस राजनीतिक और वैचारिक क्रांति की सार्थकता हो सकती है। आजादी किसी दल विशेष की नहीं होती, न ही किसी वर्ग या जाति विशेष की। वह तो सभी के लिए होती है, सभी के हित में सभी को अवसर देने के लिए। उससे सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को बेहतर बनाने के अवसर सामने आते हैं। इस अवसर को चूक जाने का मतलब होगा आजादी को न पहचान पाना, उसकी कदर न कर पाना !

स्वतंत्रता का अर्थ है, घुटने के बल न जीकर अपने पांवों पर खड़े होकर जीने की चाह ! हर आदमी का अपनी जिम्मेदारी समझना और उसके निर्वाह का निर्णय ही इस जीने की चाह को सफल बना सकता है। एक-दूसरे को कोसते रहने और उदासीनता से समय की बर्बादी हो सकती है, समस्याओं का निराकरण नहीं। आजादी व्यक्ति की प्रगति के लिए होती है, व्यक्तिगत प्रगति के लिए नहीं। व्यक्तिगत घुटन और संत्रास को सिर पर लेकर बैठ जाने से आजादी के प्रति गद्दारी हो सकती है, आजादी के प्रति फ़रमानबरदारी नहीं। स्वाधीनता जहां ईमानदारी का तकाजा करती है, वहीं अधिक-से-अधिक श्रम और बलिदान का भी ! पर यह बात हास्यास्पद तब हो जाती है, जब सारी ईमानदारी, श्रम और बलिदान की उम्मीदें केवल सर्वहारा वर्ग से की जाती हैं। केवल उसी को निचोड़कर तिजोरियां नहीं भरी जा सकतीं।

आजादी मिलने के बाद आजादी की सार्थकता और सम्पूर्णता उसके फल को बराबर हिस्सों में बांटने में ही निहित है। फल चाहे कड़वा हो या मीठा, उसे पूरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र बराबर भोग सके। यह नहीं कि उस फल के सभी रस का अधिकारी एक वर्ग बन जाये और दूसरे के भाग में फल की गुठली ही बचे! ऐसा होने पर राष्ट्र के लिए आत्मघाती स्थिति पैदा होने में अधिक देर न होगी !

राष्ट्र के सलामती के लिए हर आदमी को आगे आना पड़ता है। हर एक के लिए अपने दायित्व की पहचान अनिवार्य होती है। "इसने यह किया, उसने वह किया" और सारी तोहमत दूसरों पर थोपकर अपनी निर्दोषिता नहीं प्रमाणित की जा सकती। यह आजादी आप की है, आप ही को उसे जीवन्त और सार्थक बनाये रखना है—ताकि कल का नया सूरज फ्रीज से निकले, बर्फ के टुकड़े की तरह न हो !

आदमी और आदमी के बीच के फासले को कम करना ही होगा ! धर्म-भेद, रंग-भेद और जाति-भेद जैसे अभिशापों से आजादी को ग्रसित होने से बचाना हर एक नागरिक का फर्ज बनता है। इस फर्ज को निभाना होगा। जात-पांत का खूंख्वार दैत्य सुरसा की तरह मुंह बाये लपकता चला आ रहा है। उसका संहार अलग-अलग टोलियों में बंटकर नहीं, बल्कि एक सूत्र में बंधकर ही किया जा सकता है—अपने और कल की आनेवाली पीढ़ी के हित में—आदमीयता के हित में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

वह सम्पादकीय, जिसके कारण 'वसंत' की सभी प्रतियां जला दी गयीं

हिन्दी की गरदन पर ये खूनी पंजे किसके हैं ?

इस आजाद मुल्क में आज हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के साथ जो व्यभिचार हो रहा है, उसकी वजह औपनिवेशिक हस्तियों की आर्थिक शक्ति है या हमारे नेताओं की ओर से विश्वासघात ? या यह हमारी अपनी ही कमजोरियों का नाजायज फायदा है जो हमारा अहित चाहने वाले आज उठा रहे हैं ?

एक सौ पचास साल से हिन्दी इस धरती की सांस्कृतिक, सामाजिक, औद्योगिक और राजनीतिक गतिविधियों तथा विकास के साथ जुड़ी रही है। उस पर कोड़े भी बरसे हैं और उसने सामन्ती तूफानों को भी झेला है। बहिष्कृत हो-होकर भी हिन्दी ने इस देश के स्वतंत्रता-अभियान में जो भूमिका निभायी, उसे भी बिसार देने की कृतघ्नता सामने आ ही गयी।

जब यहां के अंग्रेजी-फ्रेंच के ठेकेदार पूंजीपतियों ने आजादी के खिलाफ जेहाद शुरू किया था, उस समय गांवों की बैठक-बैठक से, ईख के खेतों के चप्पे-चप्पे से स्वतन्त्रता का आह्वान हुआ था। आम आदमी की उस निश्छल अभिव्यक्ति और उस अदम्य शक्ति की जीत हुई थी। यह दावा भी सिर्फ हिन्दी का ही हो सकता है कि अगर लोग मन्त्री और महामन्त्री की कुर्सियों पर शोभित हैं तो उसी हिन्दी के वोटों से। आज उन्हीं ओहदों के भारी-भरकम बोझ के नीचे हिन्दी सांसों के लिए छटपटा रही है।

हिन्दी के साथ अन्य भारतीय भाषाओं का बहिष्कार और अपमान हुआ है, उससे भी यही प्रतीत होता है कि इस देश में सरकार नाम की कोई चीज अब है ही नहीं ! अगर हुई भी तो नपुंसकता को पहुंची हुई; अन्यथा यह देश गिरजाघर की डांट-डपट से आत्म-समर्पण न कर जाता। अगर यही रवैया रहा तो कल पूरी हुकूमत गिरजाघर की होगी !

पैंतीस वर्ष से जिस हिन्दी की पढ़ाई सरकारी स्कूलों में होती चली आ रही है और जिसके पीछे सरकार को एक महत्त्वपूर्ण रकम खर्च करनी पड़ती है, वह आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी परीक्षा का विषय बनने की योग्यता अर्जित नहीं कर सकी। कितना कसैला है यह व्यंग्य ! कितनी करारी है यह नीति ! जो मान्यता दो औपनिवेशिक जुबानों को हासिल है, वह बहुसंख्यकों की अपनी भाषा को क्यों नसीब नहीं ? मौकापरस्ती की भी तो हद होती है।

बाज के पंजों में कबूतर की स्थिति में हिन्दी का दम घुट रहा है। वह छतनार के नीचे के किसी पौधे की तरह अस्तित्व और अस्मिता के लिए छटपटा रही है।

पर अगर थोड़ी-सी ईमानदारी और दिलेरी के साथ यह सवाल किया जाए कि आखिर हिन्दी की इस वर्तमान स्थिति की जिम्मेदार क्या सिर्फ पूंजीपति और शोषक की बांहें ही हैं, या ये पंजे हमारे अपनों के भी हैं ? तो उत्तर की जगह एक दूसरा सवाल पैदा हो जाता है—चुनावों के दौरान हिन्दी और भाई-भाई की दुहाई दे-देकर वोटों की भीख मांगने वाले वे राजनयिक आज खामोश क्यों हैं ? क्या कहीं ये लोग भी इस साजिश में शामिल तो नहीं ? क्या यह सियासती छलावा ही हमारी नियति है ?

भाषा सिर्फ अभिव्यक्ति का साधन नहीं हुआ करती; वह तो एक पूरी जाति, एक पूरे राष्ट्र की अपनी अस्मिता, अपनी गरिमा होती है ! भाषा आदमी को अंदरूनी ढंग से जोड़ती है। उसके बिना संस्कृति विकलांग और गूंगी हो जाती है। राजनीतिक शक्ति का स्रोत भी भाषा होती है। क्या हम भूल गये इस समाजवाद के नारे को, कि अगर एक जाति को मिटाना है तो पहले उसकी भाषा को मिटा दो !

इस साम्राज्यवादी षड्यन्त्र से हमें मानसिक स्तर पर गुलाम बनाने की प्रक्रिया चल पड़ी है। इस सन्दर्भ में हम अपने आप से भी सवाल करने का साहस तो करें।

क्या इस स्वतन्त्र देश में हम आयात की हुई, डिब्बे की संस्कृति के प्रलोभन में अपनी संस्कृति को नीलाम कर दें ?

अपने बच्चों के हाथों में बैसाखी थमा देना हमें गवारा होगा ?

अगर नहीं तो फिर अपनी भाषा की गरदन पर के इन खूनी पंजों से निबटना होगा !

(आग की लपटों से बच पायी प्रति के सौजन्य से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेंट-वार्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी ही भेंटवार्ता

मेरे जीवन का पहला इन्टरव्यू जो चक्रव्यूह से कम नहीं था, फ्रेंच पत्र के साहित्यिक संवाददाता प्येर रेनो ने लिया था। इंटरव्यू के बाद मेरे यह पूछने पर कि कैसी रही मेरी यह भेंटवार्ता, उसने अपना सन्तोष तो जाहिर कर दिया था, लेकिन मैं असन्तुष्ट था। तब से जब भी किसी पत्र-पत्रिका को इन्टरव्यू दिया, सभी अधूरे ही लगे। साहित्य अकादमी के अतिथि के रूप में (साहित्य अकादमी का अतिथि होना भला क्यों चूकूं इस विज्ञापनिक महत्त्व से) दिल्ली के अन्तरराष्ट्रीय केन्द्र में ठहरा हुआ था तो 'सारिका' की ओर से श्री अवधनारायण मुद्गल ने मेरा लम्बा इंटरव्यू लिया, वह भी जब सारिका में आया तो सम्पादन की कैंची के बीच से ही आया।

मुझे याद है, नागपुर में प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन के दौरान आकाशवाणी और टेलीविजनवालों ने मुझसे जो बातें कीं उनमें से टेलीविजनवाला जो अंश आया, वह भी सेंसर की कैंची की कतरन के ही रूप में आया; क्योंकि भारत सरकार और हिन्दी के साथ उसके रिश्ते पर मैं वही बोल गया था जो देखा और महसूसा था। जहां तक रेडियोवाली भेंटवार्ता का प्रश्न है, वह रेकार्डिंग ही अधूरी रह गयी; क्योंकि भारत में हिन्दी की जिस दयनीयता की मैंने चर्चा की, वह आकाशवाणी के प्रश्नकर्ता को पसन्द नहीं आयी थी।

खैर 'एक्सप्रेस' की मेरी उस पहली भेंटवार्ता के समय से ही अपने आप से बात करने की मेरी जो चाह थी, वह समय के साथ बढ़ती गयी। जब डॉ० कमल किशोर गोयनका ने अपनी पुस्तक 'अभिमन्यु अनत : एक आत्मीय बातचीत' के लिए मेरे ऊपर प्रश्नों की बौछार शुरू की, उस समय मेरी यह अपने आप से बात करने की इच्छा और भी जागृत हो उठी।

उसी का फल है यह 'आईने के सामने।'

आखिर अपने बारे में थोड़ा-सा विशेष कुछ कहने से लेखक क्यों रुके!

प्रस्तुत है स्ट्रिप टीज—पर हां, एक बात और—

अभिमन्यु की इस भेंटवार्ता का प्रश्नकर्ता 'अभि' है और उत्तर देनेवाला 'मन्यु'। अभि का अर्थ होता है श्रेष्ठ और मन्यु का क्रोध! अनत को बीच में इसलिए नहीं लाया, क्योंकि अनत का मतलब होता है—जो कभी न झुके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आईने के सामने

अभिमन्यु का अभिमन्यु से साक्षात्कार

अभि : लेखन तुम्हारे लिए क्या है ?

मन्यु : बिजली के तार पर चलना।

अभि : बस ?

मन्यु : विचारों के संसार में विचरते हुए अस्तित्व को जीना भी है।

अभि : यह तो लेखक के लिए हुआ। तुम्हारा लेखन पाठक के लिए क्या है, समाज के लिए क्या है ?

मन्यु : एक तन्द्रा, यात्रा के दौरान अपने कन्धे पर किसी के हाथ का स्पर्श अनुभव करके क्षण भर के लिए ठिठक जाना।

अभि : तब तो साहित्य जीवन को अवरोध देता है, गति नहीं ?

मन्यु : नहीं, वह सामने की खाई की आगाही करता है। अंधाधुंध को रोकता है, चेतना को गति देता है।

अभि : तुम्हारे अपने साहित्य में भी यह होता है ?

मन्यु : प्रयास तो यही करता हूं !

अभि : तुम अपनी रचनाओं की सार्थकता किसमें मानते हो ?

मन्यु : बस, यह जीवन को बेहतर बनाने का संकेत दे दे !

अभि : क्या बदतर को मिटाने का उपाय भी उसका दायित्व नहीं होता ?

मन्यु : हर आदमी को अपना उपाय खुद ढूंढ़ना है।

अभि : तो फिर लेखक ?

मन्यु : शोषित मानव शोषण का आदी होकर उसे जीवन की स्वाभाविकता मान लेता है और उस लिजलिजेपन को सन्तोष के साथ जीता रहता है। लेखक उसके कानों में सिर्फ इतना ही कहता है कि जिसे वह भाग्य का लेख समझता है, वह कानून नहीं—उसे तोड़ना है। यह चेतना होती है। इसके बाद उपाय और सक्रियता आदमी की अपनी जिम्मेदारी होती है। लेखक तो केवल इतना कहेगा कि भाई, तुमने जूते उल्टे पहन रखे हैं। वह जूते पहनाएगा तो नहीं !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभि : लेकिन लेखन तो इससे आगे का दावा करता है।

मन्यु : साहित्य दावा नहीं करता।

अभि : साहित्यकार कल्पना तो करता है !

मन्यु : साहित्यकार ईजाद करता है, अपने ढंग से एक बेहतर संसार का आविष्कार करता है। वह सपना नहीं देखता, कल्पना नहीं करता। जो कुछ जीता है, जो कुछ भोगता है, उसी के बल पर आविष्कार करता है।

अभि : तुम्हारे साहित्य में कला का क्या स्थान है ?

मन्यु : साहित्य तो खुद कला है, उसमें कला का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

अभि : अगर कला कला के लिए, तो फिर साहित्य ?

मन्यु : कला कला के लिए नहीं, जीवन-मूल्यों के लिए और साहित्य भी उन्हीं जीवन-मूल्यों की सार्थकता और महानता के लिए !

अभि : तुम तो मसीहाई पर उतर आये ! खैर, हर लेखक का अपना नरक हुआ करता है। तुम्हारा नरक क्या है ?

मन्यु : एक तो जब मैं भारत में होता हूं तो भारतीयों की अंग्रेज़ी सुनना मेरे लिए नरक होता है, और मेरा दूसरा नरक तब होता है जब मैं किसी सांस्कृतिक मंच पर किसी राजनीतिक की बगल में बैठा हुआ होता हूं।

अभि : तुम राजनीति से इस कदर नाक क्यों सिकोड़ते हो, जबकि उसी से समूचा देश चलता है ?

मन्यु : राजनीति से देश चलता है, इससे मैं नाक नहीं सिकोड़ता। मैं तो नाक तब सिकोड़ता हूं, जब उसके लिए और उसकी वजह से देश रेंगने लगता है और आदमी घुटने टेक देता है।

अभि : तुम्हारा देश तो एक अत्यन्त ही सुन्दर देश है, पर क्या कारण है कि तुम्हारी रचनाओं में उसके सौन्दर्य का विशेष वर्णन नहीं होता ? तुम सुन्दरता से चिढ़ते तो नहीं ?

मन्यु : यह जरूरी नहीं कि जो तुम्हें सुन्दर लगे, वही मुझे सुन्दर लगे ? तुम्हें अगर शाम के वक्त क्षितिज पर डूबता हुआ सूरज सुन्दर लगता है तो मुझे दोपहर की धूप में मजदूर के माथे पर की चमकती हुई पसीने की बूंदें सुन्दर लगती हैं। एक दूसरी बात यह भी तो है कि मेरे अपने भीतर का कलाकार पहले इस देश के पीड़न, उदासीनता, अभाव, आक्रोश—इन सारी चीज़ों से समय पा ले, फिर उसे इन गूंगी प्राकृतिक सुषमाओं के वर्णन से कोई आपत्ति थोड़े ही होगी।

अभि : पर तुम्हारी पुस्तकों में कुदरती मन्जरों के चरचे जहां-तहां तो आ ही जाते हैं !

मन्यु : जहां वह चर्चा जुड़ पाती है, मानवीय भावनाओं के साथ-साथ पात्रों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थितियों की मानसिकता के साथ।

अभि : तुम्हारे कई पात्र टाई से घृणा करते हैं, जबकि तुम्हारे चित्रों में टाई के साथ देखा गया है ! और टाई के प्रति तुम्हारा यह रुख तुम्हारी दो या तीन रचनाओं में आ गया है। अनजाने में ऐसा हुआ है या···?

मन्यु : नहीं, अनजाने में तो नहीं हुआ है ! बात यह है कि जीवन में मैंने शायद कुल तीन-चार बार टाई बांधी है, और उसी तीन-चार बार के विरोध, विद्रोह, घुटन और यातना को एक ही बार में व्यक्त करना मेरे लिए बड़ा कठिन था; यही वजह है कि उसकी चर्चा एक बार से अधिक हुई है। फिर भी लगता है कि उस बुर्जुआ और औपनिवेशिक बन्धन से आज भी मेरी गर्दन जकड़ी हुई है। शायद एकाध और जिक्र के बाद ही उससे मुक्ति पा सकूंगा ! जिन्दगी की और भी एक-दो बातें हैं, जो कहीं-न-कहीं मेरे भीतर इतनी गहरी हैं कि उन्हें अपने उपन्यासों-कहानियों में दोहराने को विवश हो गया हूं।

अभि : जब टाई के प्रति तुम्हारे ये भाव थे और हैं, तो फिर खुद क्यों बांधी ?

मन्यु : बांधी तभी तो उस यातना को भुगत पाया। कड़वाहट को हलक के नीचे उतारे बिना उसकी कड़वाहट का बयान, ईमानदारी नहीं हो सकता।

अभि : साहित्य की इस ईमानदारी की बहुत दुहाई दी जाती है। इस ईमानदारी के प्रतिमान क्या हैं ?

मन्यु : कला में जिस तरह दावा नहीं चलता, उसी तरह दुहाई भी नहीं चलती ! रहा ईमानदारी का प्रतिमान, इसके उत्तर में एक प्रश्न है। रॉबिन्सन क्रूजों के विश्वविख्यात लेखक दानियल डीफ़ो ने अपने जीवन में कभी समन्दर नहीं देखा था, पर उसकी पुस्तक के उस समुद्री तूफान के वर्णन को अद्वितीय माना जाता है। इसी तरह के और भी प्रमाण हैं। सूरदास को ले लें ?···

अभि : पर इससे प्रमाणित क्या होता है ?

मन्यु : यही कि ईमानदारी की व्याख्या क्या है ? कला के बहुत सारे सत्यों को मानसिक स्तर पर भी तो भोगा जाता है। पिकासो की ईमानदारी पर शक करने से पहले ईमान का मूल्यांकन हो जाना जरूरी हो जाता है। हां, अलबत्ता यह दूसरी बात हो जाती है कि बारहवीं मंजिल के एअर-कन्डिशन कमरे में रहनेवाला लेखक मिट्टी की सोंधी गन्ध और धूप की अकुलाहट पर महाकाव्य लिखने बैठ जाए।

अभि : अभी-अभी तो तुम मानसिक स्तर पर स्थिति को झेलने की बात कर रहे थे। दानियल डीफो···।

मन्यु : मैं यही तो कह रहा हूं कि यहां ये दो अलग चीजें हो जाती हैं। समुद्र को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना देखे एक प्रतिभाशाली कलाकार समुद्री आंधी का आविष्कार तो कर सकता है; पर पार्टियों में जिन्दगी गुजारनेवाला जिस भूख का वर्णन करेगा, वह बेईमानी होगा ।

अभि : विरोधाभास !

मन्यु : उससे जीवन्तता का ही तो आभास मिलता है ।

अभि : तुम पार्टी की बात कर गये, इसलिए अब तो पूछना ही पड़ेगा कि पार्टियों में तुम्हें क्यों नहीं देखा जाता ? कहीं-कहीं तो तुम्हारे मित्रों को बाज़ी लगाते भी देखा गया है कि उस आत्मीय के घर की पार्टी में भी अगर अभिमन्यु पहुंच गया तो हजार की हार भी मन्जूर !

मन्यु : पार्टियों से मुझे चिढ़ है ।

अभि : क्यों ?

मन्यु : पहला कारण तो यह है कि उसे फिजूलखर्ची मानता हूं । हर पार्टी के उन हजारों रुपयों के व्यंजन और शराब को मैं मजदूरों का खून बहना मानता हूं । सामन्तों के उस मनोरंजन और ऐयाशी के वक्त बाहर हजारों भूखे तड़पते हैं । दूसरा कारण यह है कि वह भोज उन लोगों को दिया जाता है, जिनके पास पहले ही खाने-पीने का अगाध होता है । मैं उस पार्टी में जाने को तैयार हूं और वह भी टाई बांधकर, जहां वर्ष में चाहे एक ही बार, देश को निर्मित करनेवाले मजदूरों को दावत दी गई हो ।

अभि : तुम्हें कभी भी पार्टी में नहीं देखा जा सकता ?

मन्यु : कभी अपने देश से बाहर शिष्टाचार निभाने की विवशता भी तो हुआ करती है ।

अभि : लेखन प्रक्रिया में तुम्हारे लिए आनन्द के क्षण कब होते हैं ?

मन्यु : तीन ही क्षण होते हैं । एक तो जब कोई विचार जेहन के भीतर कौंधता है । दूसरा तब जबकि एक सन्तोषजनक पृष्ठ पूरा करने के बाद लम्बी सांस लेता हूं, और तीसरा आनन्ददायक क्षण वह होता है, जब रचना का अन्तिम वाक्य पूरा होता है ।

अभि : प्रायः यह कहा जाता है कि यह आखिरी क्षण प्रसव-पीड़ा के बाद का-सा आनन्द होता है ?

मन्यु : हां, वह एक मानसिक प्रसव ही तो होता है । जिस तरह मां अपने नवजात शिशु को बगल में देखकर प्रसव की उस पीड़ा को भूल जाती है, ठीक उसी तरह लेखन के दौरान की सारी यातनाओं को रचना के पूरा होते ही लेखक भूल जाता है । और फिर तो खुश होना स्वाभाविक हो जाता है ।

अभि : तुम अब तक की अपनी रचनाओं में सबसे अच्छी रचना किसे मानते हो ?

मन्यु : पहली बात तो यह है कि पुस्तक के छपकर पाठकों के हाथ पहुंच जाने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह लेखक की अपनी एकमात्र चीज़ तो रहती नहीं, जिसकी वजह से वह उसके आगे-पीछे विशेषण जोड़ता फिरे। दूसरी बात यह भी है कि मैं अपनी किसी रचना को अच्छा या बहुत अच्छा कहकर पाठक के उसकी परख के अधिकार को क्यों छीनूं ? रचना को आंककर, महसूसकर प्रतिमानित करके अच्छा-खराब कहने का हक लेखक को नहीं, पाठक को होता है।

अभि : तुम्हारा यह ह्म्बलनेस ऊपर से चिपकाया हुआ प्रतीत होता है। क्योंकि कई अवसरों पर तुम्हें आत्मप्रशंसा भी करते सुना गया है।

मन्यु : ऊपर की अपनी बातों में से मैं अपनी कोई नम्रता या इस तरह की कोई चीज़ जाहिर करना नहीं चाहता हूं। वह एक सत्य है जो मैंने तुम्हारे सामने रख दिया। रही वह आत्मप्रशंसा की बात, सो वह दूसरी बात होती है। लेखक अपने को घटिया नहीं समझ सकता। अगर वह अपने को घटिया लेखक मानता है तो फिर या तो वह कपटी हुआ, या सचमुच वह यही मानकर चलता है कि वह घटिया है—उसकी रचना भी घटिया है। ऐसी हालत में लेखक को लिखना बन्द कर देना चाहिए। जिस आत्मप्रशंसा की बात तुम कर रहे हो, वह आत्मविश्वास हुआ करता है। कलाकार के भीतर अपनी पहचान और अपने विराट् होने के भाव का अभाव रहा तो फिर वह कभी भी उस विराट् रचना का सृजन नहीं कर सकता, जो उसका अपना धर्म होता है।

अभि : कभी तुम्हारी रचनाओं के पात्र दो मुकामों पर मिलते-जुलते-से लगते हैं।

मन्यु : अधूरेपन को कहीं तो पूरा करना ही पड़ता है। 'आन्दोलन' की सलमा 'कल हड़ताल होगी' की जेनी के रूप में भी जब सम्पूर्णता नहीं पा सकी तो 'अपनी ही तलाश में' रूना के रूप में सामने आयी।

अभि : तुम अपने साहित्य में प्रायः चिल्लाते-चीत्कारते प्रतीत होते हो।

मन्यु : चीत्कारना इसलिए पड़ जाता है, क्योंकि हर पीड़ा को खामोशी से नहीं सहा जा सकता। चिल्लाता इसलिए भी हूं कि बहरों से वास्ता पड़ता है।

अभि : एक लेखक को दूसरे शब्दों में तुम क्या कहोगे ?

मन्यु : लेखक को तो बहुत सारे दूसरे शब्द दिये जा चुके हैं। श्रद्धा कहा गया है उसे। सोल्जेनी ने उसे एक देश की दूसरी सरकार भी कहा है।

अभि : तुम क्या कहते हो ?

मन्यु : मैं उसे मानव मस्तिष्क का इन्जीनियर मानना पसन्द करूंगा।

अभि : यह पहली बार कहा जा रहा है?

मन्यु : हो सकता है, यह पहले भी कहा गया हो।

अभि : लेखक को तुम भी मानव मस्तिष्क का इन्जीनियर क्यों मानते हो ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्यु : इन्जीनियर का काम पुल बनाना होता है। और लेखक भी पुल बनाता है पर लोहे-पत्थर और सीमेंट का नहीं बल्कि विचारों और रिश्तों का। वह आदमी-आदमी के बीच रिश्तों का पुल बनाता है। वह छोटे-बड़े, गरीब-धनी, मजदूर-मालिक, वेश्या-सती, पुजारी और पापी, इन सारे अन्तर-विरोधों के बीच की खाई को पाटने के लिए सेतु तैयार करता है।

अभि : लगता है, अब तुम फतवे गढ़ने लगे। कहीं लेखक को मसीहा साबित करने की कोशिश तो तुम नहीं कर रहे ?

मन्यु : बिल्कुल नहीं।

अभि : तुम्हारा 'नहीं' विश्वसनीय नहीं लगता !

मन्यु : यहां तक पहुंच आये ! खैर, मैं फरिश्ता नहीं हूं। यह उत्तर प्रर्याप्त है या विस्तार चाहते हो ?

अभि : जरूरी है कि मैं तुमसे शृंखलाबद्ध प्रश्न ही करूं ?

मन्यु : तुम अपनी जरूरत को मेरी जरूरत से मत जोड़ो।

अभि : तुम आदमीयत की दुहाई देते रहते हो—आदमी और आदमी के बीच के भेद-भाव, अन्तर, फासले को नकारते हुए भी तुम अपने को भारतीयता और हिन्दुत्व से जोड़े प्रतीत होते हो !

मन्यु : प्रतीत होना सत्य भी हुआ तो इसमें अनर्थ क्या है ?

अभि : तुम तो उलटे मुझसे प्रश्न करने लगे।

मन्यु : तुम्हारा यह कहना गलत नहीं है कि मैं अपने को भारतीयता और हिन्दुत्व से जोड़े हुए प्रतीत होता हूं। गलत यह है कि मैं अपने को कोई कट्टर हिन्दू मानता हूं। भारतीयता मेरी अपनी धमनियों में है, पर इसका यह अर्थ तो नहीं हो जाता कि मॉरिशस मेरी धमनियों में नहीं है। अलबत्ता मैं उन लोगों में नहीं हूं जो अपनी पहचान पर हीन भावना महसूस करके अपने को उससे काट लेते हों। अपने भारतीय वंशज होने और हिन्दू धर्म की परम्परा से सम्बद्ध होने का मुझे गर्व है। ये दोनों पहचान और विशेषताएं अपनी सही परिभाषा में आदमीयत तक ही पहुंचती हैं। दिग्भ्रान्ति का दोष आदमी के अपने उसूल का होता है, पहचान और परम्परा का नहीं। आदमी अपने को एक पेड़ ही मानकर चले तो बहुत है।

अभि : तुम भटक तो नहीं गये ?

मन्यु : नहीं, मैं अभी एकदम उसी पटरी पर हूं जिस पर तुमने मुझे चढ़ा दिया है। यूं तो पटरी पर चलना मुझे गवारा नहीं है, इसलिए उतर भी सकता हूं। मैं कह रहा था कि आदमी अपने को पेड़ ही मानकर चले तो बहुत है। पेड़ क्या कुछ नहीं देता ! लेने की चाह उसमें होती ही नहीं। उसके फल-फूल-छांव को छोड़ दो तो वह वातावरण के सारे कार्बन डाईआक्साइड को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर पूरे वातावरण को ऑक्सीजन देता है। पर इसके लिए उसे भी एक बात की आवश्यकता होती है।···

अभि : किस बात की ?

मन्यु : अपनी पहचान की—अपनी परम्परा की, अपनी शक्ति की, अपनी जड़ की। जड़ के बिना पेड़ की न तो अस्मिता होती है न अस्तित्व। मैं भी अपनी जड़ को छोड़कर त्रिशंकु वाली आधुनिकता पर विश्वास नहीं करता, कम-से-कम मेरे भीतर का लेखक ऐसा नहीं कर सकता।

अभि : यानी जड़ परम्परा से चिपके रहना और रूढ़ि के प्रति मोह बरकरार रखना ही सही लेखन है।

मन्यु : मैंने ऐसा कहा ?

अभि : तुम्हारे कहने का तात्पर्य शायद यही रहा हो।

मन्यु : तुम अपने समझने के तरीके को मेरे कहने का तात्पर्य मत मान लो। क्या तुम अपने बाप के बेटे और अपनी बहन के भाई होने के साथ-साथ मेरे अच्छे दोस्त और अपनी प्रेयसी के महबूब नहीं बन सकते ? या ये सब कुछ होते हुए तुम कोई वैज्ञानिक या डॉक्टर कभी बन ही नहीं सकते ?

अभि : तुम व्यवस्था के विरुद्ध चिल्लाते रहते हो···

मन्यु : मैं आम आदमी के पक्ष में चिल्लाता रहता हूं।

अभि : तुम सिर्फ आम आदमी के लिए ही लिखते हो क्या ?

मन्यु : मैं सिर्फ आम आदमी के लिए नहीं लिखता। मज़दूर से यह कहते रहना कि आन्दोलन करो, क्रान्ति करो—कोई मतलब नहीं रखता। मज़दूर तुम्हारे कह देने से आन्दोलन या क्रान्ति थोड़े ही कर लेंगे। इसलिए मज़दूर के हित में मालिकों और पूंजीपतियों के लिए भी लिखता हूं। मैं इन लोगों से कहता रहता हूं कि वे जो कर रहे हैं, उसमें आदमीयत का भाव कम है। मैं उनको यह दर्शाता हूं कि मज़दूरों के प्रति उनका रवैया सही नहीं है। मैं जुल्म के खिलाफ बगावत से कहीं अधिक जुल्म के अपने आप घटने की प्रक्रिया पर विश्वास करता हूं।

अभि : तुम धर्म पर विश्वास नहीं करते-से लगते हो ! क्या यह सच है ?

मन्यु : शायद !

अभि : कन्नी मत काटो। सही उत्तर क्यों नहीं देते ?

मन्यु : तुम जिस धर्म की बात करते हो, उस धर्म पर विश्वास करने का मतलब होता है—अपने आप पर विश्वास कम होना। मैं एक बार परीक्षा देने को था। मेरी तैयारी अच्छी नहीं थी। दौड़ गया था मन्दिर को। भगवान से कह आया था कि अगर मैं पास हो गया तो प्रसाद चढ़ाऊंगा। मैं धर्म पर विश्वास करता हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभि : यह क्या ऊट-पटांग बातें करने लगे ?

मन्यु : मैं विशेष लोगों द्वारा आयोजित धर्म पर विश्वास नहीं करता।

अभि : लेखक हो, वकीली पैंतरें क्यों लेने लगे हो ?

मन्यु : जरूरी नहीं कि वकील लेखक भी हो, लेकिन लेखक का वकील होना जरूरी होता है। उसका सभी कुछ होना जरूरी होता है।

अभि : बस करते हैं !

मन्यु : क्यों ?

अभि : तुम बकवास पर उतर आये।

मन्यु : मैं बकवास करने लगा या तुम्हारे प्रश्न समाप्त हो गये ?

अभि : अगर यह बात है तो लो, प्रश्नों का दूसरा भाग भी शुरू किये देता हूं। तुम्हारे विचार हमेशा निगेटिव लगते हैं, ऐसा क्यों ?

मन्यु : तुम्हें मेरे सभी उत्तर भी निगेटिव लगे क्या ?

अभि : अब तो तुम प्रश्न करने बैठ गये।

मन्यु : तो तुम जानना चाहते हो कि मेरे विचार हमेशा निगेटिव क्यों होते हैं ? तुम्हें एक शर्त पर इसका जवाब दे सकता हूं।···

अभि : कौन-सी शर्त ?

मन्यु : इस 'हमेशा' शब्द को अगर हटा लो।

अभि : ठीक है। तुम्हारे विचार निगेटिव क्यों होते हैं ?

मन्यु : इसलिए कि मुझे समाज को उसकी सही तस्वीर देनी होती है। फोटो-प्रॉसेस के तकाजे को तो तुम जानते हो ! तस्वीर पॉज़िटिव से नहीं आती, निगेटिव से आती है।

अभि : शब्दों से खेलने लगे। खैर, तुम्हारी रचनाओं में क्रम की शिकायत कर सकता हूं ?

मन्यु : तुम तो कुछ भी कर सकते हो—यों भी मैं जीवन में कभी भी क्रमबद्ध नही रहा हूं। मेरी तो मृत्यु भी चक्रव्यूह में जन्म से पहले हो गयी थी।

अभि : तुम ऊट-पटांग उत्तर न देकर सही उत्तर दोगे तो मैं अगला सवाल करूंगा, वरना बन्द करते हैं इसे। लगता है तुम्हें दिमागी थकान हो चली है।

मन्यु : नया प्रश्न क्या है ?

अभि : तुम्हारी रचनाओं में तुम्हारा सबसे प्रिय पात्र ?

मन्यु : मीरा !

अभि : 'लाल पसीना' वाली ?

मन्यु : 'लाल पसीना' और 'गांधी जी बोले थे' वाली।

अभि : क्यों ?

मन्यु : इसका उत्तर दोनों सम्बद्ध उपन्यासों में ही तुम्हें मिल सकता है, उनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर नहीं।

अभि : शराब से तुम्हारा रिश्ता ?

मन्यु : कभी बहुत अच्छा रहा है। लेकिन पीकर मैंने नहीं लिखा। हर दूसरे-तीसरे अध्याय के पूरे होने पर उस संतोष का जश्न मनाया है। पर तुम इन बेबात की बातों के बदले मेरे साहित्य पर प्रश्न क्यों नहीं कर रहे ?

अभि : तुम कहां तक अपने उपन्यास को आधुनिक या नया उपन्यास मानने की स्थिति में हो ?

मन्यु : आधुनिक उपन्यास या नुवो रोमां—नया उपन्यास—आज से बहुत पहले लिखा भी गया है। जिस नयेपन का दावा आज रोब्रग्रिये नाताली सारोत या मिशेल बीतोर करते हैं, उसे १८६० में फलोंबेर ने भी किया था। १६१० में प्रस्त ने भी उस नयेपन को प्रस्तुत किया था। प्रेमचन्द ने भी अपने समय का नूवो रोमां लिखा था और रेणु ने भी अपने समय का नया उपन्यास ! मैं भी अपने समय का उपन्यास लिखता हूं; कहां तक वह आधुनिक है, कहां तक नया—यह तो मैं नहीं कह सकता। तुम मेरे ऊपर झट अपनी ही पीठ ठोंकने का आरोप लगा बैठोगे। पर हां, इतना अवश्य कहूंगा कि हर नया कल अपने बीते हुए कल से नया हो जाता है और आने वाले कल का पुराना बन जाता है।

अभि : तो तुम साहित्य के उस शाश्वत रूप को नहीं मानते ?

मन्यु : जो शाश्वत होता है, उसके लिए नये और पुरानेपन का सवाल ही नहीं पैदा होता !

अभि : अच्छा, तुम्हारा टेलीविजन का साहित्यिक कार्यक्रम 'आयाम' कभी बहुत अधिक चर्चित था, और तुम फूलकर ठेकवा न हो जाओ तो यह भी कह सकता हूं कि वह एक कलात्मक कार्यक्रम भी माना जाता था। उसके एकाएक बन्द हो जाने का क्या कारण रहा ?

मन्यु : उसके एकाएक बन्द हो जाने का इतना ही कारण था कि एक राजनीतिक हस्ती, जो आदी था झूठ और खुशामद का शोरबा पीकर जीवित रहने का, वह पचा नहीं पाया 'आयाम' के उस कसैले सत्य को—बस !

अभि : इससे साहित्य और साहित्यकारों को तथा पाठकों और दर्शकों को भी सदमा तो पहुंचा होगा ! खास कर तुम्हें ?

मन्यु : यार, लेखक अगर सियासत की बन्दूक से मरता तो आज शायद ही कोई लेखक जीवित रह पाता ! लेखकों की बात कर रहा हूं—चिलमभरुओं, चारणों और प्रशस्ति-गान करने वालों की नहीं। यह वर्ग तो उस समय तक जीवित रहेगा, जब तक उसके आकाओं के तलुओं से शहद की बूंदे टपकती रहेंगी। लेखक तो शहद पीकर नहीं, जहर पीकर जिन्दा रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य में तुम समय-बोध को कहां तक महत्त्व देते हो ?

मन्यु : बहुत देता हूं, लेकिन उसी हद तक, जहां वह मात्र कुएं के सीमित दायरे के बीज से मंडेर के भीतर की प्रतिध्वनि बनकर न रह जाता हो ! साहित्य को तो समय-बोध कराते हुए भी समय के आगे रहना पड़ता है, अन्यथा वह आखिरी लेखन से आगे नहीं बढ़ पाता । चन्द रचनाओं पर, प्रकाशन के बाद कुछ दिनों तक शोर तो बहुत होता है; लेकिन फिर उनकी चर्चा कभी होती ही नहीं । साहित्य की इस सीमित सामयिकता से मैं घबड़ाता बहुत हूं ।

अभि : लेखक और पत्रकार में तुम क्या अन्तर कर पाते हो ?

मन्यु : पत्रकार को पैसे दिये जाते हैं कहने के लिए; जबकि लेखक जब कह जाता है तब पैसा मिलता है, और नहीं भी मिलता ।

अभि : अब तक तुम्हारा कोई भी उत्तर संतोषजनक नहीं रहा ।

मन्यु : उत्तर तो वैसा ही रहेगा, जैसा प्रश्न ! खैर, अब मैं एक प्रश्न करूं ?

अभि : करते तो रहे हो ।

मन्यु : वे तो प्रश्नों के रूप में तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर थे ।

अभि : पूछो, क्या पूछना है ?

मन्यु : तुम पीते हो ?

अभि : नहीं ।

मन्यु : तो फिर आज्ञा दो मुझे ! सूरज ढल चुका और मेरे पीने का वक्त हो चला ।

अभि : बिना कोई अध्याय पूरा किये ?

मन्यु : इस पाप के भागी तुम रहे !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे दो एकांकी

मैं शायद सतरह वर्ष का था, जब 'परिवर्तन' शीर्षक से अपना पहला नाटक महेश्वरनाथ मंदिर के विस्तृत भवन में प्रस्तुत किया था। वह नाटक से अधिक एकांकी था। बहुत पहले मेरे गांव में कोई नाटक-मंडली थी, जिसके दो-चार वृद्ध कलाकार बचे हुए थे। कहा जाता है कि उस समय ये कलाकार स्वयं स्त्री भूमिका भी निभाते थे। आर्यसमाजी आंदोलन के बाद नाटक शब्द से कुछ लोग नाक सिकोड़ने लग जाते थे। ऐसी स्थिति में पंडित वासुदेव विष्णुदयाल ने हमें सुझाव दिया कि हम नाटक को नाटक न कहकर रूपक या ड्रामा कहें। उसी नाम से मैंने गांव का अपना नाट्य-आंदोलन शुरू किया। मेरे पहले नाटक के मंचन के अवसर पर मंदिर का प्रांगण कोई पांच हजार दर्शकों से भर गया था। 'परिवर्तन' में मुख्य भूमिका मेरी थी। उतनी बड़ी भीड़ देखकर तो मेरी घिग्घी बंध गयी थी।

उसी सफलता ने मुझे नाटक को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने का हौसला दिया और तब से हर दूसरे-तीसरे महीने मैं उस मंच पर नया एकांकी लिये उपस्थित हो जाता। फिर रेडियो के लिए भी कुछ नाटक लिखे और उन्हें प्रस्तुत भी किया। अजन्ता मंच की ओर से मैंने स्थानीय टेलीविजन के लिए ३० से ऊपर नाटक लिखे, निर्देशन किया और भूमिकाएं निभायीं। लेकिन लेखन के प्रति मेरा रुझान उतना अधिक नहीं होता तो मैं टी० वी० स्टार बनकर रह जाता। शुरू में अपने नाटकों की भूमिका, निर्देशन आदि सब कुछ मैं खुद करता था, क्योंकि मेरा यह विश्वास था कि नाटक के लेखन से लेकर उसके निर्देशन और अभिनय तक अगर एक ही आदमी की सृजन-प्रक्रिया चले तो बेहतर रहेगा। लेकिन बाद में अन्य जिम्मेदारियों ने अभिनय निर्देशन से मुझे विलग कर ही दिया।

मेरा पहला लम्बा नाटक 'विरोध' रहा, जिसका पहला मंचन लखनऊ में हुआ। अपने देश में मेरे दो नाटकों पर प्रतिबंध रहा। पहला था 'कोप भवन' जिसमें मैं दशरथ को अपने सफेद बालों के कारण सत्ता का मोह तजने को तत्पर न बताकर उसे युवा पीढ़ी के विरोध के कारण विवश बताया। सत्तारूढ़ लोगों से यह हजम नहीं हो सका और नाटक के अगले प्रदर्शन पर रोक लगा दी गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा नाटक था 'मरिशा गवाही देना' जिसके कारण मेरे साहित्यिक टेलीविजन कार्यक्रम पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

मेरे नाटक, चाहे वे एकांकी रहे हों या सम्पूर्ण नाटक, मैंने उन्हें हमेशा एक अधूरी रचना के रूप में ही लिखा है, क्योंकि मेरा यह भी विश्वास रहा है कि नाटक में निर्देशन और अभिनय की सम्भावनाएं होनी चाहिए। मैंने हमेशा यही चाहा है कि मेरे नाटक निर्देशक की अपनी और कलाकारों की अपनी कला से अपनी सम्पूर्णता हासिल करें।

जहां मैंने अपनी किसी भी कहानी, किसी भी उपन्यास को किसी फिल्म-निर्माता के लिए नहीं लिखा, वहां मैंने अपने हर नाटक को पाठक के साथ ही दर्शक के लिए भी लिखा है, इसीलिए उसके अधूरेपन को दूर करके उसे सम्पूर्णता प्रदान करने की जिम्मेदारी कलाकार और निर्देशक के साथ ही दर्शक पर भी छोड़ दी है।

इसका यह मतलब नहीं हो जाता कि मैंने पाठकों को ख्याल में नहीं रखा। मुझे एक बार एक पाठक ने कहा था—आपके नाटकों को मैं मानसिक मंच पर मंचित करता रहता हूं। इस विधा का एक सबसे बड़ा संतोष मुझे यह रहा है कि वर्षों तक मॉरिशस में केवल अंग्रेजी-फ्रेंच के नाटकों को सरकारी सहयोग मिलता आ रहा था। १९७३ से आज तक अगर हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के नाटकों को सहूलियत और सरकारी सहयोग मिल रहा है और आज १०० से ऊपर युवा क्लब भारतीय भाषाओं में नाटकों का मंचन कर रहे हैं, तो उसका श्रेय अगर किसी को सबसे अधिक जाता है तो वह हैं श्री प्रियदत्त मेवासिंह। उन्हीं की सहायता से हम सरकार को, भारतीय भाषाओं के नाटकों को भी मान्यता देने को विवश कर पाये थे।

नाटक को जहां मैंने विवेक के लिए एक प्रकाश माना है, वहीं आम आदमी के लिए एक शक्ति-संचार भी। यह तो मेरा मानना रहा है, पता नहीं इसको अपने नाटकों में कहां तक उतार पाने में सफल रहा हूं। यह देखने की जिम्मेदारी आपकी हो जाती है; इसीलिए यहां अपना कोई सम्पूर्ण नाटक न देकर दो एकांकी प्रस्तुत कर रहा हूं, ताकि मेरी इस विधा के अधूरेपन के बावजूद आप उसकी सम्पूर्णता को आंक सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरिशा गवाही देना...

पात्र :

मरिशा
मां
भारते
रामदेवा
ठेकेदार
सिपाही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय : १८६५ की एक शाम।

स्थान : शक्कर-कोठी का एक साधरण घर।

(खिड़की से सूरज की अन्तिम किरणों की आंखमिचौली। बीच कमरे में चक्की। तख्ते पर पुरानी पुस्तकें। मिट्टी का चिराग। कोने में पुराने बरतन—थाली, डोल, चटाई, लोटा आदि।

मरिशा अपनी मां के साथ एक हाथ से चक्की चलाती हुई अपने दूसरे हाथ की पुस्तक पर आंखें गड़ाये, पिसाई और पढ़ाई दोनों एक साथ करती दीखती है। पृष्ठ-भूमि में जंतसार की धीमी आवाज़···)

दिनवा गनत मोरे अंगुरी रे खिअइलीं
आरे बटिया जोहत नयन लोर भरि गयलीं
जंतवा चलावत भर गइलें फोड़वा से हथवन मोरी
पियवा अबहूं नै अयलें नाहीं समझे दरदवा मोरी
दिनवा गनत···
आरे बटिया जोहत···

(नेपथ्य की जंतसार की धीमी आवाज़ पर कुत्तों की आवाज़ हावी होती है।)

मां : ई कुत्तवन के बाई लगल बा का···

मरिशा : साहेब के कुत्ते होंगे, मां ! शिकार पर निकले होंगे।

मां : (**क्षण भर को जांता रोककर**) शिकार जंगल में होवेला कि बस्ती में ?

मरिशा : साहब तो मालिक है ! जहां चाहे शिकार करे, उसकी अपनी मर्जी।

मां : पर हियां कौन खरगोश-हरिन बाटे ? कहीं ई लोग अदमिये के शिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त नैं करत हवन स ?

मरिशा : मालिक को कौन रोके मां, वह तो जो चाहे करे !

(मरिशा अपने हाथ की पुस्तक का पन्ना पलटने के लिए जांते की मूठ पर से दूसरे हाथ को हटाती है।)

मां : मरिशा ! तू अपन के ई पोथियन से कब छोड़यबे ? ई सब के पीछे तू भी पागल बनबे ?

मरिशा : (हंसकर) तुम पिताजी को पागल मानती थी ?

मां : पागल नै रहत तऽ पराया के फिकिर में अपन जान दे बैठत ? एक दिन तू देखिहे न ! हमार कपार बिगड़ी त ई सब पोथियन के हम चूल्हा में झोंक देवब।

मरिशा : ना मां, ऐसा मत करना ! क्या इन पुस्तकों में तुम्हारे लिए पिताजी की यादें नहीं होतीं ?

मां : हमके तऽ ऊ सब याद आवेला, जौन की ई पोथियन के खातिर हम लोग के भुगते के पड़ल बा।

(बाहर से कुत्ते के भौंकने की आवाज़ फिर आती है।)

ई कुतवन के ऊफर पड़े के कोई दूसरी जगह नै मिलत बाटे का ?

(जंतसार की आवाज़ कुछ अधिक स्पष्ट होती है।)

दिनवा गनत मोरे, अंगुरी रे खिअइलीं
आरे बटिया जोहत नयना लोर भरी गइलीं
जंतवा चलावत भर गइलें फोड़वा से हथवन मोरी
पियवा अबहूं नैं अयले ना समझे दरदवा मोरी।

मां : सांझ होवत बाटे। जौन बाकी बा ऊ काल पीस लेवब स, बेटी। डोलवा भर के तऽ होये गयल होई न ?

मरिशा : अभी कहां ? अभी तो आधा ही हुआ है।

मां : ई दिन भर में आज आधे पेट के काम होय सकल।

मरिशा : रमदेवा मकई देर से लाया था।

मां : ऊ तऽ अपन कसूर नैं मानेला। अभी अयते ही फजीहत शुरू कर देई।

मरिशा : वह जो गालियां सरदार से सुनता है, उन्हें हमारे ऊपर उतार देता हैं।

(कुत्तों के भौंकने की आवाज़ तेज़ होती है।)

मां : ले, आब डोलवा बटोर रे अंटवा।

(बाहर से आवाज़ आती है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवाज : दरवाज़ा खोलिये।···

मां : के हऽ, रमदेवा ?

आवाज : दरवाज़ा खोलिये !

मां : ई त रमदेवा के आवाज़ नाहीं।···

(पहले मरिशा खड़ी होती है, फिर मां।)

मां : के ह ? कौन काम बा ?

(कुत्तों की आवाज़ पास प्रतीत होती है।)

आवाज : मैं मुसीबत में हूं।···

मां : **(दरवाजे तक पहुंचकर)** ई घर में कोई मरद ना बाटे। मदद-उदद चाही त दूसर दुआर जा !

आवाज : मैं यहां से हिल नहीं सकता। खूंख्वार कुत्ते मेरे पीछे हैं। दरवाज़ा खोलिये···

मरिशा : ठहरो, मां ! मैं पहले फांक से झांककर देख तो लूं कि कौन है !

(वह बगल की एक फांक से झांककर देखती है। कुत्ते जोर से भूंकते हैं।)

मां : के हऽ मरिशा ?

मरिशा : इस गांव का तो नहीं लग रहा ! उसके सिर से खून बह रहा है। एकदम दयनीय स्थिति में है।

आवाज : ये कुत्ते मुझे नोंच खायेंगे। जल्दी कीजिए, दरवाज़ा खोलिये ! मैं कोई बुरा आदमी नहीं। मेरा नाम भारते है। मैं पड़ोस ही के गांव का मज़दूर हूं।

मां : पराया जो हवे। पराया के अच्छा और बुरा के का फरक !

मरिशा : **(मां तक आकर)** खोल दे, मां !

मां : कोई चोर-डाकू होवल तब ? सरदार लोग के हरकाठी तऽ हये ढंग से फुसला-उसला के घर के भीतर आ जालन स ! अभी त ऊहे दिन बा सोमू के बेटी के ठग-ठाग के सरदार के···।

मरिशा : यह आदमी सचमुच घायल है।

आवाज : भगवान के लिए दरवाज़ा खोलिये। दरवाज़ा खोलिये···दया कीजिए !···

मरिशा : खोल दे, मां !

मां : कोई चोर-डाकू होवल त ?

मरिशा : यहां है ही क्या, चोर-डाकू के लिए !

मां : अच्छा, चल हट उधर तू।

(वह आगे बढ़कर दरवाज़ा खोलती है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दुबला-सा आदमी माथे की चोट को थामे भीतर आ जाता है। अपने पीछे जल्दी से दरवाजे को बन्द कर लेता है। दूसरे हाथ से चेहरे के पसीने को पोंछता है।)

भारते : (हांफते हुए) ये लोग कुत्तों के साथ मेरा पीछा कर रहे हैं।···

मां : कौन लोग ?

भारते : कोठी का ठेकेदार और सिपाही ।

मां : सिपाही ?

भारते : पर मैंने कोई भी ऐसा गलत काम नहीं किया।

(कुत्तों की आवाज़ दरवाजे के एकदम पास आ जाती है।)

आवाज : मुझे छिपने का कोई स्थान बता दीजिये। मैं मौत के डर से नहीं गिड़गिड़ा रहा हूं । मुझे बस अपने काम को अधूरा रह जाने से बचाना है।

मां : चेहरा से तऽ तू चोर-डाकू नै लगत हवे, तऽ फिर सिपाही तोर पीछा काहे करत बाटे ?

भारते : मुझ पर विश्वास कीजिये। मैं चोर-डाकू नहीं हूं···

बाहर से आवाज : उवेर लापोर्त।

दूसरी आवाज : कवाड़ी खोलो।

(मरिशा अपनी मां के पास पहुंचकर उसे देखती है। उसकी मां भी उसी ढंग से उसे देखती है। फिर दोनों एक साथ भारते को देखती हैं।)

मां : (धीरे से) हियां कहां लुकाये पावब स !

मरिशा : पीछे का कुआं···

(वह आगे न बोलकर भारते को इशारा करती है। भारते उसके पीछे हो जाता है और दोनों जल्दी से दाहिनी ओर से बाहर हो जाते हैं।)

आवाज : उवेर सा लापोर्त ला साक्वा नू कास ली।

दू० आ० : इस दरवाजे को जल्दी से खोलो, नहीं तो हम तोड़ देंगे इसे !

(मां पहले दो कदम उधर को बढ़ती है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिधर से मरिशा और भारते निकले थे। फिर दरवाजे तक लौटती है।)

आवाज़ : कवाड़ी खोलो। जल्दी करो, कवाड़ी खोलो।

(मां दरवाज़ा खोलती है, ठेकेदार और सिपाही भीतर आ जाते हैं।)

ठेकेदार : **(चारों ओर देखकर अपने हाथ की लाठी को जमीन पर टेकते हुए)** दरवाज़ा खोलने में इतनी देर क्यों की ?

मां : के हवऊ तू ?

ठेकेदार : मेरे साथ कानून है। यह सरकार का सिपाही है।

(सिपाही अपनी बन्दूक को कसकर अकड़ जाता है।)

मां : सिपाही के हमर घर से का लेवे-देवे के बा ?

ठेकेदार : अभी इधर कोई आया था ?···

(मरिशा भीतर आ जाती है।)

तुम कहां से आ रही हो ?

मां : भैया, ई अपन घर में बा। ई में कहीं से आवे-जावे के बात कहां से आ गइल।

ठेकेदार : मैं जो पूछता हूं, उसका जवाब चाहिए मुझे।

मां : तोहरा ई बस्ती के मरदवन से सवाल करे चाहे ला। ऊहे लोग तोहर जवाब देई ! बोलऊ त हम ऊ लोग के बुलवा देईला।···

(सिपाही बन्दूक ताने चारों तरफ घूमकर देखता हैं।)

मरिशा ! तू जाके झमन चाचा के बुला लाव, हाली से।

ठेकेदार : ठहरो ! हम यहां तुम लोगों की जान लेने नहीं आये हैं। सिर्फ इतना जानना चाहते हैं कि यहां कोई आया था या नहीं ?

मरिशा : यहां कोई नहीं आया।

ठेकेदार : सच कहती हो ?

मां : विश्वास नै बा त खोज लऽ, भैया !

ठेकेदार : **(चक्की के पास से मुट्ठी भर आटा उठाकर)** यह इतना आटा कहां से आया ?

मां : ई गांव के बड़े सरदार खातिर पिसाता।

ठेकेदार : पैसा कितना मिलता है ?

मां : आटा मिलेला।

ठेकेदार : कितना आटा मिलता है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मां : एक डोल पिसल पर एक मुट्ठी मिलेला।

ठेकेदार : (**मरिशा से**) तू भी पीसती है ?

मां : हमर अकेले से ई थोड़े होय सकी।

ठेकेदार : तुम लोग इसमें से थोड़ा-बहुत चुराते भी तो होगे ! दो मुट्ठी आटा से गुजारा कैसे हो जाता है ?

मां : मरिशा ! तू जाके झमन चाचा के बुला ले ! ऊहे बतइहन कि हमनी के गुजारा कैसे होला।

ठेकेदार : मैं फिर पूछता हूं, यहां कोई नहीं आया ? उस ओर क्या है ?

मां : एगो खाट, एगो चूल्हा और दू-चार गो बरतन।

(बाहर कुत्ते फिर भूंकते हैं।)

सिपाही : मों क्वार बान लीसियें फिन सांची किकसोज।

ठेकेदार : चलो देखो, ये कुत्ते क्या इशारे कर रहे हैं।

(सिपाही बाहर होता है।)

मुझे लगता है, तुम लोग यहां दुखी हो। मेरी वस्ती में औरतें दुख नहीं सहतीं।

मरिशा : हम जानते हैं।

ठेकेदार : क्या जानती हो तुम लोग ?

मरिशा : यही कि आपके यहां औरतें दुख़ नहीं सहतीं। वे इन्द्रासन में रहती हैं !

ठेकेदार : (**मां से**) तुम्हारी बेटी बहुत सुन्दर है, पर बातें अच्छी नहीं करती…

(बाहर से सिपाही आवाज़ देता है।)

सिपाही : लीस्ये फिन गांय त्रास दंगाजे विनी मिस्यें।

ठेकेदार : कुत्ते को सुराग मिला है। मैं चलता हूं। (**मरिशा की ओर घूमते हुए**) ठीक है, फिर कभी आऊंगा।…

(वह दरवाजे तक जाकर फिर ठिठकता है। मरिशा को देखता है और मुस्कराता है।)

मैं फिर आऊंगा !

(उसके चले जाने पर मां और मरिशा एक-दूसरे को देखती हैं। मरिशा बाहर झांकती है।)

मरिशा : वे कुत्तों के पीछे जा रहे हैं।

मां : कुएं की ओर ?

मरिशा : नहीं, दूसरी ओर !

(वह दरवाजे को धीरे से बन्द कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेती है।)

मां : कहीं हम लोग जोखिम के काम त नै कर बैठली स ?

मरिशा : मां, तुमने देखा नहीं—ये दोनों भेड़ियों की तरह थे ! किसी को इनके हवाले न करके हमने तो बड़ा काम किया है।

मां : बड़ा काम करके ही तऽ तोर बाप के अपन दिन कैद में बीता के दम तूड़ देवे के पड़ल ! (**व्यंग्य से**) बड़ा काम !

(क्षण भर के लिए दोनों अतीत की याद में खो जाती हैं।)

मरिशा : मां, अब मैं उसे बुला लाती हूं।

मां : अरे अभी ऊ जल्लाद लोग इधर ही होयन स ! थोड़ा ठहर ले ! तब तक ई अंटवा काहे नै बटोर लेबत हवे, बेटी।

(मरिशा आटे को डोल में बटोरती है। सूरज की किरणें खिड़की से लुप्त होती दिखाई देती हैं। धीमे स्वर में जंतसार की दो पंक्तियां सुनाई देती हैं।)

फजीर के चौराई के भाजी त बचल होई न ?···खाली रोटिये पकावे के होई।)

मरिशा : (**आटा बटोरती हुई**) एक ज्यादा पकानी पड़ेगी।

मां : काहे के ?

मरिशा : अब रात होने को है, मां ! उसे कहां भटकने को छोड़ेंगे ?

(मरिशा उठती है। भारते दाहिनी ओर से भीतर आ जाता है।)

भारते : मैं आप लोगों की इस मदद को कभी नहीं भूलूंगा ! यहां से जाने से पहले आप लोगों को इतना तो बताता ही जाऊं कि ये लोग मेरे पीछे क्यों हैं। इससे आप लोग भी इस दुविधा में नहीं होंगी कि न जाने किस अनजाने, अच्छे या बुरे आदमी की मदद करनी पड़ी !

मां : बाद में बतइहा, बाद में।

भारते : पर मैं तो जा रहा हूं।

मां : एतना जल्दी का बा ! और रात होवे के बा। कहां जाएक सोचत बानी ?

मरिशा : मां चाहती है कि आज रात आप यहीं रह जाएं।

भारते : आप लोग तो मुझे जानती भी नहीं। इतना विश्वास कैसे कर लेंगी ?

मां : जब जान बचाए के विश्वास हो गइल तऽ फिर एक रात के पनाह देवे के विश्वास कौन भारी बात हऽ ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर से

आवाज : चाची !

मरिशा : रमदेवा आ गया ।

(भारते जल्दी से दाहिनी ओर से बाहर चला जाता है । मां दरवाज़ा खोलती है। रमदेवा भीतर आता है।)

मां : देख रमदेवा, आज तू देरी से अनले रहले ।

रमदेवा : देर से लाया था तो लेने भी तो देर से आया हूं ! यह क्या, डोल भरा नहीं ?

मरिशा : कैसे भरता ! हमें कोल्हू का बैल समझता है क्या ?

रमदेवा : देख, तू मेरे मुंह से गाली मत निकलवा !

मां : तू गाली देही डाल, नै त शायद तोर खाना नै पची !

रमदेवा : सरदार··· ।

मरिशा : तू सरदार से कह देना, कल ज्यादा पीस देंगे ।···

(वह डोल रमदेवा के आगे करके कोने से थाली उठा लाती है । रमदेवा उसमें एक मुट्ठी आटा डालता है ।)

बस ?···

रमदेवा : जितना पीसा, उतना पाया !

मरिशा : पर यह तो तुम एकदम···

रमदेवा : कई बार कहा है कि यह मैं नहीं करता । सरदारिन का हुक्म होता है यह ! तुम लोगों को यह अच्छा नहीं जंचता तो कह दो, मैं सरदारिन से कह दूंगा ।···

मां : अच्छा-अच्छा ! तोर सरदार-सरदारिन के भगवान बनयले रही ! जो कुछ मिल रहल बा, उहे लोग के तऽ किरपा हऽ। पर रमदेवा, कल मकई सवेरे ला दिहे !

रमदेवा : मेरे ऊपर हुकुम चला रही हो क्या ?

मां : अजी जी करत है, बेटा !

रमदेवा : कल मकई की नहीं, धान की बारी है । मुझे सरदार से कहना ही पड़ेगा कि अब तुम लोगों को इस काम में अंग नहीं लगता । अघायल बकरी लकड़ी चबावेला !

मां : अरे ना बेटा ! सरदार से कुछ मत बोलिहे ।···

रमदेवा : कल शाम को यहां मकई की लीटी खाऊंगा ।

मां : जरूर खयवे बेटा, जरूर खयवे !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(रमदेवा डोल उठाकर दरवाजे तक जाता है। फिर दो कदम पीछे लौट कर कहता है।)

रमदेवा : आज मैंने गाली-वाली नहीं दी है।···

मां : काल गरम लीटी के संगे तोके कोंहरा के भूंजल भाजी भी मिली।

(वह चला जाता है। मरिशा अपने हाथ की थाली को तख्ते पर रखकर बीच मंच पर लौटती है, तब तक भारते भी आ जाता है।)

मरिशा! तू अंटवा सान के चूल्हवा बार, तब तक हम बकरियन के घास-पानी डाल आईला।

(**भारते से**) तू अपन का नाम बतइले रहले, बेटा?

भारते : भारते, मां जी!

मां : अच्छा-अच्छा!

(वह बायीं ओर से निकल जाती है।)

भारते : तुम्हारी मां बहुत अच्छी है!···

मरिशा : मां तो सभी अच्छी होती हैं।

भारते : मेरी मां नहीं है। मैं जब छपरा में था, तभी मेरा बाप मर गया था। इधर आने पर मेरी मां भी पिछली महामारी में जाती रही।

मरिशा : महामारी तो अभी पिछले ही साल आयी थी।···

भारते : हां, तभी मरी थी मेरी मां, जब लाशें ठेलागाड़ियों से ढोई जा रहीं थीं।

मरिशा : मेरा बाप भी उसी समय मरा था, पर महामारी में नहीं, बल्कि कैद में। मां तो कहती है, उसे मार डाला गया था।···

भारते : कैद में?

मरिशा : हां, कोठी के सभी मजदूरों की ओर से वह मालिक के पास सरदारों के अत्याचार की शिकायत करने गया था। उस पर चोरी का अभियोग लगाकर कैद कर दिया गया था। वहां कैदियों की बगावत का जिम्मे-वार उसे ही बताया गया था और···

भारते : तुम्हारा बाप···महेन्दरसिंह तुम्हारा बाप था क्या?

मरिशा : हां! तुम उसको जानते थे?

भारते : उसे कौन नहीं जानता था! टापू के इस छोर से उस छोर तक के सभी मज़दूर उसे मन-ही-मन अपना नेता मानते थे।

मरिशा : (**एक क्षण के लिए खोई रहती है। फिर एकाएक सचेत होकर**) तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठो, मैं आटा रूंध लूं। (**जाते-जाते ठिठककर**) हमारे यहां तो तुम्हें रोटी के साथ सिर्फ चौलाई का साग मिलेगा।···

भारते : क्यों, रोटी और चौलाई के साग से तीन दिन के भूखे आदमी का पेट नहीं भर पाएगा क्या !

मरिशा : क्या तुम तीन दिन से भूखे हो ?

भारते : तुम लोगों ने सचमुच मेरे ऊपर बड़ा एहसान किया है !

मरिशा : मैं आटा ले आती हूं।···

(वह बाहर जाती है। भारते कोने की खाट पर बैठ जाता है।)

भारते : (**घर को अच्छी तरह देखते हुए अपने आप**) तो यह महेन्दरसिंह का घर है !···

मरिशा : (**नेपथ्य से**) तुम मक्की की रोटी तो खाते हो न !

भारते : (**आवाज आने की दिशा की ओर देखते हुए**) तो रोटी और किस चीज़ की बनती है ?

मरिशा : गेहूं तो हमारे यहां नहीं है।···

भारते : गेहूं की अपनी पिछली रोटी तो मैंने छपरा मे खाई थी। तुमने भी तो उधर ही खाई होगी ?···

मरिशा : उधर कहां ?

भारते : भारत में—अपनी जन्मभूमि में !

मरिशा : मेरा जनम तो यहीं हुआ है। मेरे मां-बाप ने तो उन्नीस-बीस साल पहले भारत छोड़ा था। तब तो उनका ब्याह भी नहीं हुआ था।

भारते : (**अपने माथे के घाव को अपनी फतुही की छोर से पोंछते हुए**) थोड़ा पानी दे सकती हो ? प्यास लगी है।

(मरिशा आटा और पानी लिये भीतर आ जाती है। अपने हाथ के आटे को नीचे रखकर दूसरे हाथ से लोटा भारते को देती हुई)

मरिशा : आटा सानने के लिए लायी थी। लो पी लो, मैं दूसरा पानी ले आऊंगी।

(भारते लोटे को ऊपर करके पानी पीता है। फिर लौटाकर गाल पर बह आये पानी को पोंछता है। मरिशा आटे के लिए पानी लाने बाहर जाती है।)

भारते : (**अपने आप से**) मैं इसे केवल संयोग ही मान लूं कि जिस महेन्दरसिंह के नारों से प्रभावित होकर मैंने अपने साथी मज़दूरों को स्वर दिया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज उसी घर में मेरा रक्षा हुई ? अगर यह संयोग ही रहा, तो भी मेरे दम तोड़ते हौसले को नवजीवन देने के लिए। अब तो लगता है कि मुझमें और भी सात सौ कोड़े सहने की शक्ति आ गई है।

(मरिशा लोटे में पानी लिये भीतर आ जाती है। आटे के पास बैठकर।)

मरिशा : (**आटा रूंधने से पहले**) तुम्हारे माथे पर यह चोट···?

भारते : कोई खास नहीं, बस खरोंच है ! मैं अपने इस तरह भागते रहने की वजह तो तुम्हें बता दूं।···

मरिशा : सन्तू का भी लोग इसी तरह पीछा कर रहे थे, और जब वह पकड़ा गया तो उसकी बोटी-बोटी नोच ली गई। (**वह आटा रूंधने लगती है।**)

भारते : यह सन्तू कौन था ?

मरिशा : हमारे पड़ोस का था। उस पर मजदूरों को भड़काने का अभियोग था। छह महीनों से अधिक ही होने को हैं ! उसका तो कहीं पता ही नहीं चला। गांव के लोग यही कहते हैं कि उसकी बोटी-बोटी कुत्तों से नोचवाकर उसका नामोनिशान मिटा दिया गया होगा ! (**थमकर**) कहीं तुम्हारा पीछा भी तो इसीलिए नहीं किया जा रहा कि तुम भी अपने इलाके के मजदूरों को···?

भारते : नहीं। मेरा जुर्म तो इससे एकदम छोटा है।

मरिशा : और कौन-सी ऐसी बात हो सकती है, जिसके लिए कानून भी तुम्हारी गिरफ्तारी को निकल पड़ा है ? (**उसका आटा रूंधना रुक जाता है।**)

भारते : सिर्फ गिरफ्तारी के लिए नहीं, कोठी के गोरे का तो यह आदेश है कि मैं जहां मिलूं, वहीं मुझे हमेशा के लिए खामोश कर दिया जाए।

मरिशा : और कानून ? (**वह एकटक भारते को देखती रहती है।**)

भारते : कैसा कानून ! उसी कानून की बात कर रही हो, जिसने महेन्दर की हिफाजत कर ली ? कानून तो आकाओं की रक्षा और हम जैसों की सजा के लिए होता है !

मरिशा : तुम्हारा जुर्म क्या है ?

भारते : गीत लिखना !

मरिशा : (**खामोशी के बाद**) मैं समझ नहीं पायी।···

भारते : जीविका के लिए तो मैं भी हजारों मजदूरों की तरह गन्ने बोता हूं, गन्ने काटता हूं; पर अपने और अपने सभी साथियों को थोड़ी-सी इज्जत का हकदार होने के लिए मैं गीत लिखता हूं।···

मेरे इन गीतों को पहले कोठी के गोरे मालिक ने, फिर कानून ने बगावत और जहर करार दिया। ये गीत घर-घर गूंजने लगे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन गीतों को मारने के लिए मुझे मार डालना लोगों के लिए जरूरी हो गया है।···

(खामोशी)

ये लोग नहीं चाहते कि गुलामों की तरह जिन्दगी बसर करने को मजबूर ये मजदूर अपने अधिकारों को पहचानकर उसका तकाजा करें। मैं भागता फिर रहा हूं—अपने प्राण की रक्षा के लिए नहीं, बल्कि अपने उन गीतों की हिफाजत के लिए, जिनमें मेरे अपनों के प्राण हैं। अपने अधिकार की पहचान और अभिव्यक्ति है जिन गीतों में। जिनमें महेन्दरसिंह की आत्मा है।···

(दोनों फिर चुप रहते हैं। मरिशा अपनी अंगुलियों से आटा छुड़ाती हुई भारते को एकटक देखती रहती है।)

क्यों, तुम मुझे इस तरह क्यों देखने लगी ?

मरिशा : तुम गीत लिखते हो ?

भारते : हां।

मरिशा : गाते भी हो ?

भारते : गाना पड़ता है। गवाना पड़ता है।

मरिशा : मुझे भी गवाओगे ?

भारते : मेरे गीत वे नहीं हैं जो तुम सोचती होगी।···

मरिशा : क्या हैं तुम्हारे ये गीत ?

भारते : ये गीत थके-मांदे को नींद नहीं देते।···

मरिशा : तो फिर ?

भारते : ये नींद से डूबे हुए लोगों को झकझोरने के गीत हैं।

मरिशा : सुस्त पड़े लोगों को सचेत करने के गीत ?

भारते : हां !

मरिशा : मैंने भी कभी ऐसे गीतों की कल्पना की थी। मैं भी तुम्हारे ये गीत सीखना चाहती हूं।

भारते : मेरे गीत मर्दों के गीत हैं।

मरिशा : मर्दों के गीत क्यों ?

भारते : अधिकार के लिए मर मिटने के प्रण हैं उसमें।

मरिशा : अधिकार केवल मर्दों के लिए ही क्यों ? जिन खेतों में तुम लोग शोषित हो, क्या वहां औरतें भी वे ही जुल्म नहीं सहतीं ? वे भी जब अपने पसीने के साथ खून बहाती हैं, तो फिर अपने अधिकार के लिए आगे आने के योग्य क्यों नहीं समझी जा रहीं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारते : यह तो ठीक है, लेकिन···

मरिशा : तो फिर लेकिन क्या ? अपने बाप की मृत्यु से पहले मैं भी खेतों में काम करती थी।···

भारते : फिर ?

मरिशा : आज उन खेतों में न होकर भी वहां के दर्दों को मानसिक स्तर पर भुगतते रहने से अपने को रोक कैसे सकती हूं ! मेरी इस बस्ती की कौन ऐसी औरत है जो शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर इस दारुण दण्ड को झेल नहीं रही। और तुम उन्हें अपने साथ शामिल नहीं करना चाहते ?···

भारते : मर्दों की स्थिति अगर खेतों में अच्छी हो जाती है तो फिर औरतों को मजदूरी करने की जरूरत ही नहीं रहेगी।

मरिशा : पर क्या उससे औरतों पर के जुल्म खत्म हो जाएंगे ? मैं तो तब खेतों से जुड़ी हुई नहीं थी, जब कोठी के गोरे मालिक ने···

भारते : तुम रुक क्यों गयी ?

मरिशा : हां, मैं रुक क्यों गयी ! शर्म को पी जानेवाली भी आज शरमा उठी। कोठी के गोरे मालिक ने जोखू सरदार की पीठ थपथपाकर उसे शाबाशी दी थी। मेरे सुन्दर होने की शाबाशी उसे मिली थी।

(वह चुप हो जाती है।)

भारते : मरिशा ! (**थमकर**) तुम रो रही हो ?

मरिशा : मैं तो न अपने बाप की मृत्यु पर रोयी थी और न ही सन्तू के ओझल हो जाने पर। मैं रोना नहीं जानती !

भारते : कोठी पर जाना तुमने क्यों मान लिया था ?

मरिशा : (**हंसती है।**) अपने बाप की रिहाई के लिए गिड़गिड़ाने गयी थी। (**गम्भीर होकर**) गांववालों ने चाहा था कि मैं अपनी बस्ती की उन पहली तीनों लड़कियों की तरह जान दे दूं। मैंने ऐसा नहीं किया। इसके लिए कई दिनों तक हमारा घर बहिष्कृत रहा। यहां तक कि हमारा सबसे बड़ा हितैषी झमन चाचा भी हमारी ओर नहीं ताकता था। मैं अपने उस अनचाहे बच्चे को जनमने से रोककर भी जीवित रही, क्या इसीलिए नहीं कि कभी-न-कभी उस अधिकार के लिए अपने को उतना ही जीवन्त पाऊं, जितना कि तुम अपने को पाते हो !

भारते : मरिशा !···

मरिशा : क्यों, दहल गये न ! दहला देनेवाला भाग तो मैंने कहा ही नहीं।··· मेरा बाप कहता था कि सबसे बड़ा दर्द गूंगा होता है।

भारते : तुमने जो कहा, वह सच है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरिशा : एक झूठ अभी कुछ देर पहले बोली थी, तुम्हें तलाशनेवालों से। एक सत्य अभी बोल रही हूं, जिसके लिए वह पहला झूठ बोलना पड़ा था।

भारते : मरिशा !···

मरिशा : तुम्हें हैरानी हो रही है ?

भारते : नहीं।

मरिशा : सन्तू मुझे प्यार करता था। वह उस गोरे मालिक की जान का प्यासा बन बैठा था। मैंने सन्तू से सिर्फ इतना कहा था—सन्तू, तुम्हें एक ही आदमी गुनहगार दीख रहा है, क्योंकि उसकी एक हरकत उस लड़की के साथ रही, जिसे तुम प्यार करते हो। पर क्या उस एक से बदला लेकर तुम उन सभी तबाहियों का बदला ले लोगे या रोक लोगे ?···

भारते : मरिशा ! सचमुच अब तो मैं हैरान हूं।

मरिशा : मेरी बातों से ?

भारते : शायद तुम्हारी बातों से ही।

मरिशा : सन्तू कहता था कि मैं महेन्दरसिंह की बेटी हूं, इसलिए उसे मेरे ऊपर हैरानी नहीं होती थी। अरे, तुम कांपने क्यों लगे ?

भारते : ठंड लग रही है।···

मरिशा : अभी कुछ देर पहले तो तुम्हारा शरीर तर था पसीने से !

भारते : तब मैं चार-पांच मील लगातार दौड़ता-भागता आया था।

मरिशा : पसीना भी कभी ठंडक दे जाता है। तुम्हें बुखार तो नहीं ?

भारते : नहीं तो !

मरिशा : तुम मुझे अपना गीत तो सुनाओ ! मुझे सिखाओगे नहीं ?

भारते : प्रयोजन क्या होगा ?

मरिशा : तुम्हारे स्वर में स्वर मिलाकर गाना।

भारते : बस ? बहुत छोटा है तुम्हारा प्रयोजन !

मरिशा : छोटे प्रयोजन में अगर बड़ा उद्देश्य निहित हो, तो क्या वह बड़े प्रयोजन के छोटे उद्देश्य से बेहतर नहीं ?

भारते : तुम्हारे तख्ते पर की इन पुस्तकों को अब देख पा रहा हूं।

मरिशा : तुम्हें एक बात बताऊं ! मैं अपने बाप को मरा हुआ नहीं मानती। वह आज भी जीवित है। वह तो उस दिन मरेगा, जब···।

भारते : जब उसकी आवाज़ की प्रतिध्वनि बन्द हो जाएगी।

मरिशा : तुम भी ऐसा मानते हो ?

भारते : हां !

मरिशा : तो फिर उस गूंज के साथ मुझे भी शामिल हो जाने दो ! हमारी इस बस्ती में रोज़ आल्हा गाये जाते थे। रामायण हुआ करती थी। रप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर की उदासी और कुण्ठाओं ने सभी गतिविधियों को मार डाला है। हर आदमी अपनी घुटन लिये खामोश है। अब यहां कोई रौनक नहीं। श्मशान-सी लगती है यह बस्ती। हर आदमी अब बस अपने ही लिए जी रहा है। लिजलिजापन ही हर मज़दूर का अपना पड़ाव बन गया है। (**थमकर**) इन लोगों में फिर से जान फूंकनी होगी। जिन पुस्तकों के दोहे-चौपाई को गा-बजाकर ये लोग अपनी सभी पीड़ा, सभी थकान और यन्त्रणाओं को भूल जाते थे, आज उन पुस्तकों को हमेशा के लिए बन्द कर दिया गया है। इन सारे हताश और हारे हुए लोगों को फिर से गा-बजाकर ही जिलाया जा सकता है। हम आज ही रात को झमन चाचा से मिलते हैं। कल रात तुम गाओगे !

भारते : मेरा गांव तो मेरे पीछे भुगत रहा है, अब तुम चाहती हो कि यहां भी वही हाल हो ?

मरिशा : तुम अपने को किसलिए गिरफ्तार हो जाने से बचाते फिर रहे हो ? इसीलिए न कि तुम्हारी आवाज़ न मरे ! ताकि लोगों की खामोशी टूटे। ताकि वे शरीर के साथ-साथ मानसिक गुलामी को भी नियति मानकर सिर न झुका दें !…बोलो भारते, तुम चुप क्यों हो ? या तुम गिरफ्तार कर लिये जाने से डरते हो ?

भारते : नहीं ! मुझे अपने गिरफ्तार हो जाने का डर नहीं है—तनिक भी नहीं !

मरिशा : पर इतना डर तो जरूर है कि महेन्दर सिंह की आवाज़ मर न जाए—तुम्हारे गीत न मरें ? मेरा बाप कहता था कि कभी किसी-न-किसी को तो आगे आना ही है ! जब तक ऐसा नहीं होता, मज़दूर की स्थिति बेहतर हो ही नहीं सकती !

भारते : सच पूछो तो अब…अब…मुझे गाते हुए डर लगता है।…

मरिशा : और यह डर तुम्हें नहीं लगता है कि अगर सारा कुछ ऐसा ही रहा तो ये सारे देश भर के मज़दूर आज की इस स्थिति को अपनी आदत बना लेंगे ! अभी कुछ ही देर पहले तो तुम्हारी बातों से लगा था कि तुम परिवर्तन चाहते हो। वह तो भुगते बिना आएगा नहीं। उसकी कीमत तो देनी ही पड़ेगी !

भारते : नहीं मरिशा ! फिर से सोचना होगा। (**वह अपने सिर को दोनों हाथों में ले लेता है।**)

मरिशा : सिर्फ सोचते ही रहने से कुछ होने को नहीं ! सोचा तो बहुत गया है। अब उन सारी सोची हुई बातों को कार्यान्वित करना है। सोचना बन्द करो !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारते : मरिशा ! तुम तो मुझसे भी अधिक भावुक दीख रही हो ।

मरिशा : यह भावुकता नहीं है, भारते ! तुमने अभी इस गांव की खामोशी और उदासी को नहीं देखा । यह खामोशी और उदासी मेरे भीतर तेजाब छिड़क रही है । देखोगे तो तुम भी कराह उठोगे—चिल्ला उठोगे गाने के लिए ।

भारते : (**एकदम से खालीपन में खोकर**) सुनो···सुन रही हो तुम ?

मरिशा : क्या ?

भारते : मेरे गांव के मज़दूरों की आवाज़···सुनो, वे सभी गा रहे हैं। मेरा गीत गा रहे हैं···।

मरिशा : भारते !

भारते : इस गाने को मैंने सबसे पहले लिखा था···सुन रही हो तुम···

(**मरिशा उसके करीब आकर उसके माथे पर हाथ रखती है ।**)

मरिशा : तुम्हें तो जोरों का बुखार है, भारते···!

भारते : सस्स्त् ! सुनो···(**नेपथ्य से आती गीत की आवाज़ को संकेत करके वह अंगुली उठायें दो कदम आगे आ जाता है ।**)

(ढपली की आवाज़ के साथ गाने की आवाज़)

घाम के मारल पसीना कोड़ा के मारल खून बहे
सौ ठोप पसीनवा के सौ ठोप खूनवा से मिलके
तब कहीं बनेला जाके ठोप रसवा के एगो !
रसवा के ठोप-ठोप से भरल हौवे गनवा
गन्ने से भरल हौवे देशवा के खेतवा
अरे खेतवन से उपजे देशवा के सोनवा
उहे सोनवा के गहनवा बड़े लोगन पहनें
और मजदूरन के गहनवा उहे माटी के टीकवा···

भारते : तुमने सुना ?

(बाहर से कुत्तों की आवाज़ फिर आती है ।)

मरिशा : कुत्तों की आवाज़ फिर आ रही है ।···

भारते : कुत्ते फिर आ रहे हैं क्या ?

मरिशा : लगता तो ऐसा ही है ?

भारते : इसीलिए डर से मेरा गीत बन्द हो गया ।···सस्स्त् चुप ।

मरिशा : तुम चुप रहोगे तो ये खूंख्वार कुत्ते हमेशा अपने नुकीले गाने गाते रहेंगे, और आदमी या तो जंगल-जंगल भागता रहेगा या बिल में दुबका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेगा ।

(कुत्तों की आवाज़ें और भी तेज होती हैं ।)

भारते : मुझे ज़ोरों की ठंड लग रही है ।

मरिशा : **(बात अनसुनी करके)** वे लोग फिर इधर को ही आ रहे हैं ।···

भारते : **(अपनी फतुही के नीचे से पिस्तौल निकालता है)** आने दो । इस बार जो होना है, होकर रहेगा ।

मरिशा : पिस्तौल ?

भारते : स्ससस्त् । किसी से मत कहना । सोमवा चुरा लाया था, मालिक की कोठी से । मुझे दे गया था, अपनी हिफ़ाजत के लिए ।

मरिशा : यह क्या ? तुम पिस्तौल से गीत लिखते-गाते रहे हो क्या ?

भारते : अब तक इसका इस्तेमाल नहीं किया । मैं मूर्ख था । आने दो, आने दो उन कुत्तों को ।

मरिशा : कितनों को रोक सकोगे इससे ?

भारते : मुझे ठंड लग रही है । मैं भून डालूंगा इन कुत्तों को···आने दो ।

मरिशा : भारते ! तुम्हारे पास तो इससे भी जबरदस्त हथियार है । उसका इस्तेमाल करो, जिससे ये लोग इतने भयभीत और आतंकित हैं । तुम अपने स्वर का इस्तेमाल करो । तुम्हारे गीत तो इन गोलियों से अधिक ताकतवर होंगे, तभी तो ये लोग तुम्हारा इस कदर पीछा कर रहे हैं ।

(मां का प्रवेश)

मां : ऊ लोग फेर से इधरे आवत हवन स ।

मरिशा : अब क्या किया जाए ?

भारते : गोलियों से दाग दूंगा···आने दो ।

मां : जा हाली से उधर जा बेटा···जा, हाली जा··· ।

(वह खड़ा रहता है ।)

मरिशा : चलो, भारते !

(बाहर से आवाज आती है ।)

आवाज : उवेर लापोर्त ।

दूसरी आवाज : दरवाजा खोलो ।

मां : **(धीरे से)** मरिशा, तू दोनों हाली झमन चाचा के हियां चल जा स । हाली से, बेटा ।

(भारते का हाथ थामकर मरिशा उसे घसीटते हुए बाहर चली जाती है ।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवाज़ : हम हैं, दरवाज़ा खोलो।

दूसरी आवाज़ : उवेर लापोर्त।

(मां दरवाज़ा खोलती है, ठेकेदार और सिपाही का प्रवेश)

ठेकेदार : तुम्हारी बेटी कहां है ?

मां : काहे का ?

ठेकेदार : (**नम्रता का अभिनय करते हुए**) मैं पूछता हूं, तुम्हारी बेटी कहां है ?

मां : पड़ोस में गइल बा, अपन झमन चाचा के हियां।

ठेकेदार : जाके बुला ला।

मां : कौन काम बा ओकर से ?

ठेकेदार : मैं उसे काम देना चाहता हूं, अच्छा-सा काम—इज्जत का भी, पैसे का भी। तू उसे हमारे घर आटा पीसने के लिए भेज सकती है ? मेरे यहां से उसे रोज़ दोगुना आटा मिलेगा। महीने में दो रुपये भी दूंगा।

मां : हम लोग के गुजार अच्छा से हो जाला। काम के जरूरत नहीं।

ठेकेदार : तुम लोगों का यह घर अब गिरने को है, तब गिरने को है। मैं इससे अच्छे घर का बन्दोबस्त कर दूंगा।···

मां : ई घर अभी ना गिरी !

ठेकेदार : तुम्हारे लिए नारियल-तम्बाकू का भी बन्दोबस्त हो जाएगा।

मां : हम तम्बाकू-गुड़ाकी ना पीहींला।

ठेकेदार : फिर से सोच लो ! तुम्हारे फायदे की बात कर रहा हूं।

मां : हम लोग बनिया नाहीं। नफा-नुकसान के बात हमें ना चाही।

ठेकेदार : ठीक है ! तो फिर हम यहीं बैठते हैं। जब तक तुम्हारी बेटी हमारे सामने नहीं आती, हम यहां से जाएंगे ही नहीं !(**सिपाही से**) तुम चलकर बाहर देखो। इन लोगों की साजिश का पता हमें लगाकर ही रहना है।···

(सिपाही सलाम कर चला जाता है।)

मैं देखता हूं, कब तक तुम्हारी बेटी एक विद्रोही को अपने साथ छिपाये फिर सकती है। मैं उसका इन्तजार करूंगा।

(मरिशा भीतर आ जाती है।)

मरिशा : लो मैं आ गयी। क्या पूछना है, पूछो।

ठेकेदार : तमीज़ से बात करो। कहां है वह विद्रोही ?

मरिशा : मैं किसी विद्रोही को नहीं जानती।

ठेकेदार : ठीक है, हम इन्तजार करेंगे। मुझे कोई जल्दी नहीं। मेरी उपस्थिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हें खलने लग जाए तो उसका पता बता देना।

मरिशा : मुझे कुछ भी बताना नहीं है।

ठेकेदार : ठीक है, देखते हैं। मैं यहां जिन्दगी गुजार सकता हूं, पर उस आदमी का पता पाये बिना यहां से टलूंगा नहीं। नौबत आयी तो तुम्हें भी अपने साथ घसीट ले जाऊंगा।

(सिपाही प्रवेश करता है।)

सिपाही : मुस्ये नू फिन तुव ली। वह पड़ोस के घर में है।

ठेकेदार : सच ? तो फिर जल्दी चलो। (**मरिशा से**) मैं फिर आऊंगा। अभी तो और भी मकसद है। जल्दी ही आऊंगा।

(वह सिपाही के साथ निकल जाता है। मां मरिशा के पास आ जाती है।)

मां : ओके कहां छोड़ अयले, बेटी?

मरिशा : झमन चाचा के यहां मां, पर वह छिपना नहीं चाह रहा।

मां : पकड़ा जाई तऽ ओकर जान नै छोड़िहन स।

मरिशा : कहीं अनर्थ हो गया तो?···

मां : बजरंग बली के नाम जप, बेटी। ऊहे बचैहन।

मरिशा : कहां किसी ने हमको अब तक बचाया है, मां।···

(बाहर से गोलियां चलने की आवाज़ आती है।)

भारते।

(अपनी सारी से शक्ति चिल्ला उठती है।)

भारते।

(सन्नाटा।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जारी रहे तलाश…

पात्र :

नील
यूरी
साधु
आकृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(बर्फ से ढका हुआ पहाड़ी दृश्य ! यूरी और नील गरम कपड़ों में सामने आते हैं। यूरी मंच के बीच में आकर ऊपर को इस तरह देखता है, गोया पहाड़ की चोटी का अन्दाजा लगा रहा हो। फिर नीचे को देखता, खाई को नापता-सा प्रतीत होता है। नील अपनी कमर पर दोनों हाथों को रखे, एक सफेद चट्टान पर एक पांव रखकर अपने दोनों हाथों से कंधों को जकड़कर ठंड का एहसास कराता है।)

नील : अब मुझसे आगे नहीं बढ़ा जाएगा। मेरे पांव ही नहीं, मेरा पूरा सिस्टम जवाब देने लगा।

यूरी : (**अपनी कलाई की घड़ी देखकर**) यह देखो।

नील : मुझे अब कुछ मत बताओ !

यूरी : देखो तो सही ! मेरी घड़ी की संकेत-सुई हिलने लगी है।

नील : वह भी जवाब देने लगी होगी।

यूरी : शायद हम सही जगह से एकदम करीब पहुंच आये हैं।

नील : बस-बस, मैं तंग आ गया इस यातना से। बेवकूफ था मैं। सोचा था, वही चांद-यात्रा वाली सनसनी और थ्रिल होंगे इसमें भी। यह तो दोजख का सफर रहा।

यूरी : बस अपने में थोड़ी-सी हिम्मत और लाओ। कामयाबी हासिल होकर रहेगी।

नील : सत्रह दिनों से तुम यही कहे जा रहे हो। और मैं भी फिर से वही कह रहा हूं कि हम लोग दिग्भ्रान्त हो गये हैं। हमारी यह दिग्भ्रान्ति हमारी इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्रा की शुरुआत से पहले ही शुरू हो चुकी थी।

यूरी : नहीं नील, हम सही रास्ते पर हैं !

नील : मुझसे यह ठंड सही नहीं जा रही है। तुम मुझे यहां की किसी चोटी से नीचे क्यों नहीं ढकेल देते, ताकि मेरी लाश आदमियों की किसी बस्ती में जा गिरे। यहां तो हमारी अपनी भी परछाईं नहीं है।

यूरी : **(फिर से घड़ी देखता है।)** देखो, यह संकेत हमारे ऑब्जेक्टिव पर है। हम लोग सफलता के निकट आ गये हैं।

नील : मुझे जोरों की प्यास लगी है।

यूरी : सुन रहे हो, यह कल-कल आवाज़ ! कहीं पास ही में नदी होगी। तुम यहीं बैठो, मैं तुम्हारे लिए पानी ले लाता हूं।

नील : मुझे गरम कॉफी चाहिए। जोरों की ठंड लग रही है मुझे।

यूरी : हिमालय पर ठंड नहीं लगेगी तो क्या पसीना आएगा यहां ?

नील : तुम्हारे पास गरमी की गोलियां थीं।

यूरी : खत्म हो गयीं। राशन सिर्फ दो हफ्ते का था। सभी कुछ समाप्त हो गया।

नील : मेरा हौंसला भी।

यूरी : नहीं, वह समाप्त नहीं हो सकता।

नील : भूख भी लगी है।

यूरी : भूख मारनेवाली गोलियां भी खत्म हो चुकी हैं।

नील : हम अभी भी जी रहे हैं ?

यूरी : हां ! हमें अभी और जीना है। हम उस हिम-कमल की तलाश करके ही रहेंगे।

नील : तलाश ! तलाश ! तलाश !!! कब तक ?

यूरी : तलाश ही तो जिन्दगी है।

नील : तुम दार्शनिक नहीं, वैज्ञानिक हो। खोखले दर्शन का लबादा मत ओढ़ो।

यूरी : विज्ञान का धर्म भी तलाश है…तलाश !

नील : मैं ऊब चला…थक गया…बस करो…चलो, लौट चलें !

यूरी : खाली हाथ ?

नील : हमने जिन्दगी में इतना कुछ पाया, क्या बस नहीं ?

यूरी : हमें बहुत कुछ मिला है और कुछ भी नहीं मिला है। हम उस सबसे बड़ी चीज़ की तलाश में आये हैं जो इस हिमालय की कन्दराओं में मिलेगी। और अगर नहीं मिलती है तो समझ लो कि हमारी सफलताएं और वैज्ञानिक उपलब्धियां अधूरी ही रह जाएंगी। हिम-कमल हमारी सभी तलाशों हमारे सभी प्रयोगों, सभी आविष्कारों, हमारी सभी प्रयोगशालाओं की चरम सीमा होगा। हम उस चरम सीमा, पराकाष्ठा और अन्तिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणति को अपने साथ लेकर ही अपने देशों को लौटेंगे।

नील : यह हिम-कमल वही अमृत, वही अलौकिक शक्ति प्रमाणित होगा, इसका इतना अधिक विश्वास तुम्हें कैसे हो गया?

यूरी : वैज्ञानिक सत्य पर विश्वास क्यों न करूं?

नील : क्या वैज्ञानिक कभी छले नहीं जाते?

यूरी : क्यों?

नील : मुझे तो लगता है कि हम लोग छले गये हैं। जीवनपर्यन्त हम लोगों ने विज्ञान की शक्ति के साथ जुड़े रहकर अपनी सारी तलाशें की हैं। दुनिया को हवाई जहाज दिया, टेलीविजन दिया, वीडियो दिया, चांद पर पहुंचे, हृदयारोपण किया, परखनली ने बच्चे पैदा किये—दुनिया को बम दिया, अब बाकी क्या रह गया है?

यूरी : अभी बहुत कुछ बाकी है···

नील : कहीं हम लोग ठगे तो नहीं जा रहे—अपने आप से छले तो नहीं जा रहे? सच मानो, बेवकूफ बन रहे हैं हम! हमारी प्रयोगशालाओं और हम वैज्ञानिकों ने ट्रांजिस्टर से बोलनेवाले एक कल-मानव पर विश्वास कर लिया और उस असम्भव की तलाश में भटक रहे हैं। सभी कुछ पाकर आज एक ऐसे ठौर पर आ गये हैं, जहां हमारी उपलब्धि का कुछ भी हमारे पास बाकी नहीं। यह ऊहापोह, यह असमंजस, कहीं यही विज्ञान का अन्तिम चरण तो नहीं!

यूरी : तुम भूल रहे हो, भावुक हो रहे हो। विज्ञान का संसार इतना सीमित नहीं होता—आगे बहुत कुछ है···। तुम देखोगे, यह हिम-कमल हमारे हाथ लगते ही हमें नया क्षितिज, नया आयाम मिल जाएगा। हिम-कमल विश्व को अमरत्व प्रदान कर देगा।···कोई नहीं मरेगा। विज्ञान की हमेशा जीत हुई है, पर यह सबसे बड़ी जीत होगी।

नील : यह जीत विज्ञान की क्यों और कैसे होने लगी?

यूरी : तुम यहां वकालत करने आये हो क्या?

नील : अगर यह हिम-कमल हमें यहां मिल भी गया तो वह विज्ञान की उपलब्धि कैसे समझा जाएगा? हमारी ताजा प्रयोगशाला तो यह कहती है, मानती है कि यह समूचे मुनियों और यतियों की लम्बी साधना की उपलब्धि है, तो फिर?

यूरी : मुझे लगता है, थकान ने हमारे मस्तिष्क को खाली कर दिया है। तुम इस बात को समझ ही नहीं पा रहे हो। इस तरह की ऊट-पटांग बातें तुमने मिशन की शुरुआत में भी की थीं। यह चीज हिमालय के ऋषि-मुनियों द्वारा उत्पन्न की गयी क्यों न हो, पर उसका उपयोग अगर अब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-कल्याण के लिए नहीं हो पाया तो फिर उसका महत्त्व ही क्या रहा। हमारा यहां तक पहुंच आना ही तो अपने आप में विज्ञान की एक बहुत बड़ी कामयाबी है। हमसे पहले कोई नहीं पहुंचा यहां। विज्ञान की अद्भुत शक्ति से हम यहां पहुंचे हैं और उसी विज्ञान की शक्ति से अपने को इस मृत्यु की ठंड में टिकाये हुए हैं। हिम-कमल को यहां से प्राप्त कर के लौटना, विज्ञान की चांद-यात्रा से भी महत्त्वपूर्ण सफलता समझी जाएगी।

नील : मुझे प्यास लगी है।

यूरी : ठहरो, मैं पानी ले आता हूं।

नील : मुझे गरम कॉफ़ी चाहिए।

यूरी : (**व्यंग्य करते हुए**) ब्रैंडी नहीं चलेगी ?

नील : मेरे गले में निगलने के लिए थूक भी नही है।

यूरी : ठीक है, मैं पानी ले आता हूं। (**जाने लगता है**)

नील : यहां अकेले रहने में मुझे डर लगता है।

यूरी : डर किस बात का ?

नील : यति ! बर्फदानव !

यूरी : तुम भी किस काल्पनिक जन्तु पर विश्वास कर बैठे हो।

नील : अगर यति पर विश्वास नहीं करते हो तो फिर इस हिम-कमल पर तुम्हारा इतना विश्वास कैसे ?

यूरी : हिम-कमल एक सत्य है। दुनिया के सभी पहुंचे हुए वैज्ञानिक इसकी आस लगाये बैठे हैं। सारा विश्व इस समय एक बहुत बड़े सस्पेंस में जी रहा है। दुनिया भर के सभी सैटेलाइट और टेलीविजन को हिम-कमल की पहली तस्वीर की बेसब्री के साथ प्रतीक्षा है। हिम-कमल की प्राप्ति का मतलब है दुनिया के सारे दुख, सारी गरीबी, सारी बीमारी, और बेरोजगारी का खत्म हो जाना। उसके मिलते ही दुनिया अमर हो जाएगी।

नील : लेकिन···

यूरी : लेकिन क्या ?

नील : यह यति अगर काल्पनिक जीव हुआ तो फिर हिम-कमल भी तो कल्पना हुआ। उसे तो यतियों का आविष्कार माना गया है। उसे वर्षों के योग और युगों की समाधि का फल माना गया है। जब तुम यतियों पर ही विश्वास नहीं करते हो तो फिर इस हिम-कमल को बर्फ की इन चट्टानों की उत्पत्ति मानते हो क्या ?

यूरी : वकालत बन्द करो और बैठे रहो, मैं तुम्हारे लिए पानी ले आता हूं।

नील : ठंड मेरी हड्डियों को भी बर्फ बनाकर रहेगी। वह क्या चीज बतायी गयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी हमें, जिसकी एक बूंद में सारी ठंडक गरमी से धधक उठती है ?

यूरी : वह तो हिम-कमल के मिलने पर ही सम्भव हो सकता है।

नील : पर क्या नाम था उसका ?

यूरी : सोमरस !

नील : यार, कहीं से सोमरस ही ला दो, नहीं तो मुझे इस बर्फ के पहाड़ पर बर्फ बन जाने में देर नहीं लगेगी।

यूरी : हिम-कमल मिल जाने दो। जिस पानी में भी उसे डुबाएंगे, वह सोमरस बन जाएगा—अमृत ! यह अमृत ही तो विज्ञान की सबसे बड़ी और अन्तिम तलाश है—मानव की महानता, विज्ञान की सम्पूर्णता !

नील : लेकिन दोस्त ! यह सम्पूर्णता हमारी किसी प्रयोगशाला से नहीं जनम कर यहां कैसे जनम गयी ? धर्मग्रन्थों की बातों को झूठ प्रमाणित करते-करते आज यह विज्ञान उसी धर्मग्रन्थ की बातों को अपना…

यूरी : तुम चुप बैठे रहो नील, मैं पानी ढूंढ़ लाता हूं।

(यूरी चला जाता है—नील चारों ओर देखता हुआ एक चट्टान पर बैठना चाहता है, पर एकाएक सोचकर यूरी को आवाज़ देता है।)

नील : यूरी ! यूरी !!

यूरी : (**वापस आकर**) क्या है ?

नील : तुम उधर जाकर खो गये तो ?

यरी : मेरे उधर खो जाने पर तुम यहां बैठकर झक मारना !

नील : तुम जानते हो, एक बार वीयतनाम की लड़ाई के दौरान मुझे इसी तरह की प्यास लगी थी।

यूरी : अब मैं तुम्हारी कहानी सुनने के लिए रुक जाऊं क्या ?

नील : (**चेहरे पर अतीत की याद लाते हुए**) मैं लाशों के बीच था। इधर लाश, उधर लाश, आगे आग, पीछे आग। (**अभिनय के साथ**) बेकार पड़े हथियारों के बीच मैं भी बेकार पड़ा हुआ था—लाशों के बीच लाश की-सी निर्जीवता लिये हुए। अपने एक हाथ से दूसरे हाथ को उठाना चाह रहा था। इशारे से किसी को अपने पास बुलाने के लिए—हाथ से हाथ को उठाना भी नहीं हो रहा था। बड़ी कठिनाई से एक हाथ को ऊपर उठा पाया था। पर वहां था ही कौन, देखने के लिए।

यूरी : देखो, दुनिया भर के टी०वी० कैमरे हम लोगों पर फोकस हैं। तुम अपनी कहानी पूरी दुनिया को सुनाओ, मैं चलता हूं।

नील : सुनकर जाओ ! पता नहीं, उधर गये और लौटकर नहीं आये तो ? तुमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो अपनी नताशा की कहानी मुझे सुना दी, अब मेरी हा-जॉन की कहानी भी तो सुन लो। वह किसी भी त्जेन से कम सुन्दर नहीं थी।

यूरी : तुम पहले यह तय कर लो कि तुम्हें पानी पीना है या अपनी मुहब्बत की कहानी सुनानी है।

नील : तुम यहां से बच निकलो तो मेरी कहानी भी तुम्हारे साथ बच निकलेगी, नहीं तो बर्फ़ की इस दुनिया में वह मेरे साथ बर्फ़ बन जाएगी।—अतीत का स्वर—उन लोगों के बीच में घंटों तक उसी तरह पड़ा हुआ था। रात होने को थी—कि तभी दूर से आती हुई एक रोशनी दिखाई पड़ी। रोशनी पास आयी। उसे थामे हुई थी एक बहुत ही सुन्दर वीयतनामी लड़की। उसे देखते ही (**इशारे से अंजुली को मुंह तक ले जाकर**)इस तरह मैंने उससे पानी मांगा। अपने हाथ के हरीकेन को मेरी बगल में छोड़कर वह पानी लाने दौड़ गयी थी। पानी लाकर अपने हाथों मुझे पिलाया था। कंधे का सहारा देकर मुझे अपने घर ले गयी थी—थाई-बिन के बौद्ध मन्दिर के पास था उसका घर···उतनी दूर से वह आयी थी, अपने तीनों भाइयों की तलाश में। उसे अपने उन भाइयों की लाशें भी नहीं मिली थीं, मेरी हा-जॉन को।

यूरी : बन्द करो अपनी कहानी···मुझे भी प्यास लग आयी है।

नील : आगे नहीं सुनोगे?

यूरी : हम लोग यहां मिशन पर आये हैं। भावुकता के लिए नहीं, सक्रियता के लिए। अतीत को जीने के लिए नहीं बल्कि भविष्य के निर्माण के लिए। अपने देश लौटने पर वहां अपनी कहानी को पूरा करना। मैं हाथ में वोदका का ग्लास लिये बड़े ध्यान और बड़े ही आनन्द से तुम्हारे उस वीयतनामी इश्क की कहानी सुनूंगा।

नील : अपने देश लौटने पर तो हम दो अलग छोरों पर होंगे। तुम्हारा अपना देश होगा, मेरा अपना। फिर सुनाऊंगा कैसे? सुनोगे कैसे?

यूरी : मैं पानी तो ले आऊं! (**जाना चाहता है।**)

नील : ठहरो।

यूरी : अब क्या है?

नील : तुम्हें उस हिम-कमल की पहचान है, मुझे नहीं। तुम उधर गये और वह चीज़ मुझे इधर दीख भी गयी तो मैं पहचान नहीं पाऊंगा···

यूरी : लाल लता पर दूध-सा सफ़ेद फूल। उसकी पंखुड़ियों के बीच से झिलमिलाती बैंगनी रोशनी और···अब तो पहचान लोगे? ब्रीफिंग के वक्त भी शायद तुम्हें अपनी वीयतनामी महबूबा की याद आयी होगी, इसीलिए स्क्रीन पर का चित्र देखा ही नहीं। अब तो जा सकता हूं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वह चला जाता है। नील पास की चट्टान पर बैठ जाता है।)

नील : (अपने आप से) यह कहां आ गया मैं ? यह स्थान तो चांद से भी विचित्र है। यहां हवा और भी अधिक बोझिल है। अपने को थामे रखना कितना कठिन हो रहा है। ऊपर से यह जानलेवा ठंड···हम अपने साथ जो भी यन्त्र लाये थे, सभी बेकार हो गये—हैरत तो यह है कि हम अब भी जीवित बचे हुए हैं। **(ठंड से कांपता है—अपनी जगह से उठकर गरमी के लिए इधर से उधर कूदता-दौड़ता है, फिर अपने में ठिठुरकर बैठ जाता है)** यूरी ठंडा पानी ले आएगा···मुझे प्यास लगी है गरम कॉफी की··· ब्रैण्डी की···आखिर मौत के किस शिखर पर आ गये हम लोग ? इतनी ठंड ! कहीं प्रलय तो नहीं होनेवाला ! पर नहीं, प्रलय के वक्त तो गरमी से पहाड़ पिघलेंगे···समुद्र के बीच लपटें उठेंगी···अरे, मैं भी धरम के भरम में पड़ गया। पर यह मौत की-सी ठंड क्यों ? **(वह अपने दोनों हाथों को आपस में मलता है। जिस ओर से यूरी गया था, उसकी विपरीत दिशा से किसी के आने की आहट आती है।)**···कौन है ? यूरी तुम ? **(अधिक जोर से)** कौन है ? **(वह फिर से उठ खड़ा होता है—अधिक कांपने लगता है। एक आकृति को देखकर)** कौन हो तुम ? **(एक अधनंगा साधु उसके सामने आ खड़ा होता है। नील कुछ पीछे को हट जाता है।)** कौन हो तुम ?···**(हाथ के इशारे से पूछता है, फिर कांपते स्वर में सवाल करता है।)** मैं पूछ रहा हूं, कौन हो तुम ? **(साधु गम्भीर रहता है, नील हाथ के इशारे से पूछता है।)** तुम कौन-सी भाषा बोलते हो ? इस तरह नंगे हो तुम···तुम्हें ठंड नहीं लगती ? **(नील अपने दांतों को किटकिटाता है।)** क्या बात है, तुम मेरे प्रश्नों का जवाब क्यों नहीं देते ? **(साधु अपने हाथ के कमण्डल से अंजली भर पानी लेता है और उसे नील पर छिड़क देता है।)** यह क्या कर रहे हो ? मैं ठंड से मरा जा रहा हूं और तुम मेरे ऊपर पानी छिड़क गये···जंगली हो तुम···! **(वह साधु पर झपटता है। साधु अपने हाथ को आशीर्वाद मुद्रा में ऊपर उठाता है और नील मूर्ति-सा अपनी जगह पर फ्रीज हो जाता है। साधु फिर से उस पर छींटे देता है और चला जाता है। नील उसी तरह अवाक् खड़ा रहता है। फिर अपने सिर को हिलाता हुआ तनकर खड़ा होता है।)** अरे, यह क्या—ठंड कहां गायब हो गयी ? **(वह नीचे से बर्फ का एक टुकड़ा उठाता है।)** कमाल है ! मुझे तो यह बर्फ का टुकड़ा भी ठंडक नहीं दे रहा। आखिर यह अधनंगा आदमी था कौन ?···

(नेपथ्य से आवाज आती है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरी : (नेपथ्य से) नील ! नील, कहां हो तुम ?

नील : मैं यहां हूं···जहां छोड़ गए थे।

यूरी : (प्रवेश करते हुए) पानी नहीं मिला।

नील : कोई बात नहीं।

यूरी : क्या ?

नील : मुझे प्यास नहीं। मेरी प्यास जाती रही।

यूरी : और तुम्हारी ठंड ?

नील : वह भी जाती रही !

यूरी : मेरे उधर जाने से पहले तुम थर-थर कांप रहे थे···

नील : तुम्हारे उधर जाने पर चमत्कार हो गया।

यूरी : तुम तो एकदम इस तरह खड़े हो, जैसे सचमुच ही तुम्हें ठंड नहीं लग रही।

नील : ये सारे गरम कपड़े तो अकुलाहट दे रहे हैं (**वह अपने ऊपर से जैकेट उतारकर कमीज़ के बटन खोल देता है।**)

यूरी : तुम्हें सचमुच ठंड नहीं लग रही ?

नील : कमीज़ भी उतार दूं क्या, ताकि तुम्हें यकीन हो जाए !

यूरी : मैं तो ठंड से टूटा जा रहा हूं। (**दांतों को किटकिटाता है।**)

नील : इधर को लौटते हुए रास्ते में तुम्हें कोई नहीं मिला ?

यूरी : कोई क्यों मिलने लगा ?

नील : एक अधनंगा आदमी ?

यूरी : क्या कह रहे हो ? इस गजब की ठंड में अधनंगा आदमी ? फिर बहकने लगे तुम !

नील : उसके हाथ में एक पात्र था···कमण्डल···पानी का। उसने मेरे ऊपर पानी छिड़का और मेरी भूख-प्यास, ठंड, सभी कुछ जाता रहा।

यूरी : लगता है, ठंड ने तुम्हारी मति मार डाली है !

नील : तुम इस तरह कांप क्यों रहे हो ?

यूरी : ठंड लग रही है।

नील : लो, मेरा जैकेट अपने ऊपर रख लो ! (**वह यूरी को जैकेट पहनाता है।**)

यूरी : मुझसे रहा नहीं जाता। बहुत ठंड लग रही है···

नील : उस आदमी को आखिर ठंड क्यों नहीं लग रही थी ? उसके कमण्डल में वह क्या था, जिसके छींटों से मेरी ठंड एकाएक गायब हो गयी ?···

यूरी : तुम किस आदमी की बात कर रहे हो ? यहां हम दोनों के सिवाय कोई नहीं है। हम जिस कठिनाई से यहां पहुंच पाये हैं, तुम सोचते हो कि धरती पर कोई दूसरा ऐसा आदमी है जो इतना कुछ सहकर, इतनी रुकावटों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सामना करके यहां तक पहुंच सकता है ? हम अंतरिक्ष यात्री न होते तो हमारा पहुंचना भी नितांत असम्भव होता ! मेरे और तुम्हारे देश ने हम दोनों को एक साथ यहां भेजने के लिए अपने आप में जो समझौता किया है, वह आश्चर्यजनक है। न्यूज़वीक ने इसे दो देशों का नहीं, दो दुनियाओं का समझौता कहा है। अब वह कौन-सी तीसरी दुनिया है इस धरती पर, जो अपने किसी आदमी को यहां भेजने में कामयाब हो सके ? कहीं तीसरी दुनिया के किसी भूखे-अधनंगे मसीहा का सपना तो तुम नहीं देखने लगे ?

नील : मैं सपना नहीं देख रहा। वह कोई मसीहा ही रहा होगा !···

यूरी : बड़बड़ाना बन्द करो, नील ! बैठो, कुछ आराम कर लो !

नील : वह आदमी बाहर का नहीं, यहीं का—इसी प्रदेश का है, यूरी ! मेरी बात मानो तुम।···

यूरी : फिर बहकने लगे !

नील : अच्छा तो फिर बताओ, मेरी ठंड और प्यास इस तरह एकाएक गायब कैसे हो गयी ?

यूरी : तुमने बेईमानी की होगी ! ठंड और प्यास की कुछ गोलियां अपने पास छिपाकर रख ली होंगी !

नील : नहीं, यूरी···मैंने ऐसी कोई गोली अपने हलक के नीचे नहीं उतारी।

यूरी : तो फिर ?

नील : तो फिर क्या ?

यूरी : इस तरह तुम्हारी ठंड और प्यास कहां जाती रही ?

नील : यही तो तुम्हें समझा रहा हूं ! वह आदमी कोई सुपर ह्यूमन था।

यूरी : बच्चों की कॉमिक्स पढ़कर आये हो। फैन्टम और सुपरमैन का सपना आ रहा है तुम्हें !

(एकाएक जोरों का गुंजन होता है। नील चुपचाप खड़ा रहता है। और यूरी अपने दोनों कानों पर हाथ रखकर अपने को ऐंठने लगता है। आवाज़ बढ़ती है। नील पर मानो उसका कोई असर होता ही नहीं और यूरी पर गोया कोड़े बरसते हैं।)

नील : यूरी ! यूरी ! यह तुम्हें क्या हो रहा है ? **(जोर से)** यूरी ! यूरी !!···

(वह गुंजन धीरे-धीरे समाप्त होता है। यूरी के कंधों को झकझोरकर नील

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछता है।)

क्या हो गया था तुम्हें ?

यूरी : (**कांपते-हांफते एक ही साथ**) यह कैसा शोर था ? लगा कि हिरोशिमा में बम फटा हो !

नील : वह तो झरझर की बहुत ही मामूली आवाज़ थी। कहीं बर्फ ढह रही थी। तुम भी कमाल करते हो, आवालांस को बम का विस्फोट मान बैठे !

यूरी : क्या ?

नील : बर्फ ढहने की आवाज़ थी। बड़ी सुरीली थी ! लगता है, तुम उधर से थककर लौटे हो। अपने मस्तिष्क के खालीपन को बजते पा लिया होगा !

यूरी : मुझे उल्लू बनाने का नाटक मत करो !

नील : मैं सही कह रहा हूं। तुम नाहक ही एक मामूली आवाज़ को प्रलय मान बैठे !

यूरी : वह प्रलय ही था—बेशुमार बमों का धमाका एक ही साथ !

नील : मुझे क्यों नहीं सुनाई पड़ा ?

यूरी : तुम्हारी बेईमानी अब भी चल रही है। जल्दी से तुमने कोई एंटी नोंइज़ की गोली गले के नीचे उतार ली होगी !

नील : (**हंसता है।**) तुम बड़े शक्की हो !

यूरी : तुम बेईमान हो ! मुझे उधर भेजकर बची हुई गोलियों से अपने को ताकतवर बना बैठे।

(इस बार एक दूसरी तरह की आवाज़ गूंजती है। उसके साथ ही बैंगनी बिजली चमकती है। दोनों एक-दूसरे को देखते हैं, फिर चारों ओर देखते हुए घूम जाते हैं।)

तुमने देखा ? बैंगनी प्रकाश !

नील : अल्ट्रा-वायलेट रेज़ !

यूरी : हां ! हिम-गुलाब की चमक !

(आवाज़ तेज़ होती है—बादल गरजने की-सी आवाज़। रोशनी धुंधली होती है और उस धुंधलके में एक छाया उभरती है—पीछे की सफेद साइक्लोरामा पर एक विकराल आकृति पंजे फैलाये बढ़ती है।)

नील : मौत के पंजे !

यूरी : नहीं ! ये सब संकेत हैं, हिम-कमल के प्रकट होने के। (**अपनी कलाई घड़ी**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखता है।)मेरी घड़ी की संकेत-सुई हिलने लगी है। यह देखो, जिस महत्त्व-पूर्ण वक्त के बारे में हमें संकेत किया गया था—वही बैंगनी रोशनी मेरी घड़ी के ऊपर। देखो, गौर से देखो! (**नील भी आगे आकर देखता है।**) हम अपने मिशन की सफलता के एकदम करीब हैं। हिम-कमल के ऊपर से बर्फ पिघलने लगी है।

नील : तुम इधर तो देखो—यह दैत्य आकृति हमारी ओर बढ़ी आ रही है। हमारी पिस्तौल पीछे छूट चुकी। यह दैत्य हम दोनों को निगल जाएगा।

(आकृति दहाड़ती है। एक ओर से आगे बढ़ती है। नील और यूरी उस दूसरी ओर को पीठ किये हटते जाते हैं। धीमे संगीत के साथ आवाज़ आती है।)

आवाज़ : ऊँ शिवाय नमः···ऊँ शिवाय नमः···ऊँ शिवाय नमः!!!

(रोशनी हो जाती है। दोनों हैरत के साथ एक-दूसरे को देखते हुए अपने स्थान को लौट आते हैं।)

नील : यह आवाज़ कहां से आयी थी?

यूरी : शायद बगल की किसी कन्दरा से।

नील : किसकी आवाज़ थी?

यूरी : खालीपन की प्रतिध्वनि होगी!

नील : उस अधनंगे फकीर की भी तो हो सकती है।

यूरी : फिर वही बकवास!

(अपनी नाक से जोरों की सांस लेकर)

खुशबू···वही···एकदम वही! वही सुगन्ध, जिसका आभास हमें तुम्हारे नाज़ा के वैज्ञानिक अनुसंधान-केन्द्र में मिला था। (**हवा में सूंघते हुए**) क्यों नील! अब तो तुम्हें हिम-कमल के अस्तित्व का विश्वास हुआ न?

नील : वह तो तभी हो गया था, जब उस बूढ़े ने मेरे ऊपर पानी के छींटे दिये थे।

यूरी : छोड़ो, अपने जीव और उस सुपर ह्यूमन की कहानी!

नील : अच्छा, यूरी! एक बात पूछूं?

यूरी : तुम वक्त जाया करने में लगे हुए हो।

नील : अगर यह हिम-कमल हमें मिल गया तो क्या करेंगे?

यूरी : क्यों, तुम्हारी याददाश्त जाती रही क्या? अपना मिशन तक भूल बैठे?

नील : मैं कुछ नहीं भूला।

यूरी : तो फिर?

नील : हिम-कमल मिल गया तो क्या करेंगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरी : उसे मानवता के कल्याण हेतु अपने देश ले जाएंगे।

नील : अपने देश को ?

यूरी : अपने-अपने देश को !

नील : ले जाएंगे कैसे ?

यूरी : जैसे आये हैं, उसी तरह ! यह क्या बच्चों-जैसी बातें करने लगे ?

नील : इस क्षितिज तक फैले वर्फ के विस्तार को पार कैसे करेंगे ?

यूरी : हमारा अन्तरिक्ष-यान किस काम के लिए है, नील !

नील : यूरी ! मुझे लगता है कि विज्ञान अपने आखिरी पत्ते को खेल चुका। तुम अपने को यह झूठा आश्वासन क्यों दे रहे हो ? बड़ी खोखली है तुम्हारी यह अपने आप की तसल्ली। तुम जानते हो कि हमारे यान और उसके साथ यहां पहुंचे हमारे सारे आधुनिक साधन, सारी वैज्ञानिक सुविधाएं अब पीछे रह चुकीं। हमारे पास तुम्हारी इस घड़ी के अलावा और कुछ बचा ही नहीं ! यह भी अगर तुम्हारी कलाई के साथ बंधी न होती तो उस पिछली फिसलन में उन तमाम चीज़ों की तरह चली गयी होती। हमने जिस लम्बे और विकट रास्ते को तय किया है, उसका कोई भी वापसी टिकट हमारी जेब में नहीं, फिर भी तुम···

यूरी : नील, तुम एक ऐतिहासिक प्राणी हो। अनुभव के अनुपम जीव हो··· विज्ञान के सुपर मैन हो तुम ! सम्भव और असम्भव के चक्कर में अपने को मत डालो। चलो, तलाश जारी रखें !

नील : तलाश ?

यूरी : हां, तलाश !

नील : कैसी तलाश ?

यूरी : हम उसके बहुत पास आ गये हैं। उसकी चमक, उसकी खुशबू एकदम करीब है।

नील : (**बैठ जाता है।**) तलाश !···

यूरी : क्या हुआ तुम्हें ?

नील : तलाश ! किस चीज़ की तलाश ?

यूरी : मानव-कल्याण के उपायों की।

नील : मुझे संदेह होने लगा है।

यूरी : किस बात का ?

नील : खैर, छोड़ो !

यूरी : तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा कि विज्ञान की इस महत्त्वपूर्ण खोज से पूरी मानव-जाति का कल्याण होने जा रहा है ?

नील : हमारे कई प्रयोग विनाश भी तो ला चुके हैं !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरी : तुम वैज्ञानिक हो या मजहब के ठेकेदार ? धर्म-गुरुओं की तरह क्यों बोलने लगे ?

नील : सच मानो, मुझे तो लगता है कि हम सीमा पार कर चुके। कहीं यह अति हमारी इति न बन जाए, मुझे इसका डर लगने लगा है ! मैं अपने आपसे पूछने लगा हूं कि कहीं हम उस मुकाम पर तो नहीं पहुंच आये, जहां सारी सफलताएं, सारी उपलब्धियां एक आखिरी उपलब्धि की ललक में हमारी सबसे बड़ी असफलता बन जाए ?···जुआरी एक आखिरी दांव के लोभ में सारी जीती हुई राशि को खो दिया करता है !

यूरी : फिलॉसफी बघारना बन्द करो ! धरती पर हमारी प्रतीक्षा हो रही है। वहां दुस्टन में तुम्हारे लोग तुम्हारे इस पागलपन पर सिर धुन रहे होंगे। चलो, जल्दी ढूंढ़ निकालते हैं हिम-कमल को। हमें लौटना है धरती को।

नील : धरती को ? हम धरती पर ही तो हैं ! लगता है, तुम्हें अपनी अंतरिक्ष यात्रा याद आने लगी ! कहते हैं, मृत्यु के समय आदमी को अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएं याद आने लगती हैं।

यूरी : हम मृत्यु के नहीं, प्रगति और जीवन के मसीहा हैं। कल इतिहास हमें प्रगति और अमरत्व के देवता कहेगा।

नील : कल ?

यूरी : हां, कल !

(नील जोर से हंसता है। यूरी ठंड से कांपता हुआ अपने में सिकुड़ता जाता है।)

नील : तुम ठंड को नहीं सह पा रहे हो, यूरी !

यूरी : मुझमें ठंड को सह लेने की शक्ति है। मैं सूरज के निकट तक जाकर उसके धधकते ताप को झेलकर लौटा हुआ इन्सान हूं। यह ठंड मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। मैं अद्भुत मानव हूं—सारा संसार मानता है !···

(तेज संगीत के साथ ऊपर से बर्फ के टुकड़े पिघलकर बरसने लगते हैं।)

बर्फ पिघलने लगी। हमें इस घड़ी की प्रतीक्षा थी। **(वह अपनी घड़ी देखता है।)** मेरी घड़ी की संकेत-सुई जोरों से हिलने लगी है। सुगंध, हिम-कमल की सुगंध ! नील, इन बरसते हुए हिम-टुकड़ों में गौर से देखना ! इन्हीं के बीच मिलेगा हमें हिम-कमल ! गौर से देखना ! कहीं वह फिर से बर्फ के नीचे दब न जाए···**(गिरते हुए टुकड़ों के बीच वह किसी पागल-सा इधर से उधर खोजने लगता है।)**

नील : मैं तो अपनी जिंदगी की एक उम्मीद ढूंढ़ना चाहता हूं, इन बर्फ के टकड़ों के बीच।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चारों ओर बैंगनी रोशनी फैल जाती है।)

यूरी : देखो नील, देखो···हिम-कमल की आभा···(**अपनी घड़ी को कान तक ले जाकर उसे नील के कान तक पहुंचाते हुए**) सुनो, मेरी घड़ी सफलता की ध्वनि देने लगी। यहां भी हमारे विज्ञान ने हमारा साथ नहीं छोड़ा। शुरू से अन्त तक अपने सारे दायित्व को इस घड़ी ने जब निभा लिया तो हम क्यों चूकें !···

(संगीत फिर तेज होता है और उसके साथ ही ऊपर से बर्फ के टुकड़ों के साथ हिम-कमल नीचे गिरता है। दोनों विस्फारित नेत्रों से उसे देखते हैं—स्तब्ध ! संगीत के समाप्त होते ही)

नील : यूरी ! यह तो सचमुच अद्भुत है !

यूरी : (**उछलता है।**)हुर्रा !···यूरेका ! सफलता ! यही है वह अमरत्व का रहस्य ! विश्व-शान्ति की कुंजी ! यह अन्तरिक्ष की विजय से भी बड़ी विजय है !···

नील : यूरी···हमें···हमें···हमें हिम-कमल मिल गया !

यूरी : हां, नील ! हमें वह चीज़ मिल गयी, जिसकी समूची मानवता को इतनी चाह थी। अब संसार का रंग बदलकर रहेगा। कोई नहीं झगड़ेगा अब ! विज्ञान ने प्रयोग-दर-प्रयोगों के बाद मंजिल पा ली। हजारों साल की इच्छा पूरी हुई !···

नील : पूरी हो गयी ?

यूरी : हां, पूरी हो गयी !

नील : पर कहते हैं कि इच्छा कभी पूरी नहीं होती ! एक इच्छा दूसरी इच्छा को जन्म देती है। और हमारा विज्ञान भी तो इसी एक के बाद दूसरी चाह का गुलाम रहा है।

यूरी : इसी अन्तिम चाह के लिए थीं वे सारी चाहें—वे सारी इच्छाएं !

नील : अब इच्छा नहीं होगी ?

यूरी : अब अमरत्व होगा !

नील : बिना इच्छाओं का ?

यूरी : हां, बिना इच्छाओं का !

नील : तलाश खत्म हो गयी ?

यूरी : सफलता मिल गयी।

नील : और तलाश ?···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरी : तलाश ?

नील : हां, तलाश ?

यूरी : तलाश खत्म हो गयी ! इसी महान और शाश्वत सत्य के लिए मानव युगों से छोटे-छोटे सत्यों को तलाशता रहा था। आज उस महान सत्य की तलाश पूरी हो गयी। इस अनमोल सफलता ने सभी तलाशों को समाप्त कर दिया।

नील : यूरी ! तो फिर ज़िन्दगी का मकसद क्या रह जाएगा ?

यूरी : तुम मुझे क्रॉस एकजाम करते रहोगे या इस कामयाबी पर झूमोगे भी !

(यूरी झूम जाता है। वह नीचे झुकता है, उस हिम-कमल को उठाना चाहता है, फिर झिझकता है।)

इतनी बड़ी उपलब्धि को अपने इन हाथों से छू पाऊंगा ? नील, मुझे इस अद्वितीय सफलता पर विश्वास नहीं हो रहा। तुम ही उठाओ इसे···!

नील : डरते हो, कहीं इसमें रेडियो-एक्टीविटी न हो ?

यूरी : यह क्या बोलने लगे तुम ? आह, क्या सुगंध है !

नील : (**झुककर उसे उठाना चाहता है।**)तलाशों की अन्तिम परिणति, इच्छाओं की लाश या कि विज्ञान की सबसे बड़ी हार—सबसे बड़ा छलावा।

यूरी : ठहरो ! इसे मुझे ही पहले छूना होगा।

नील : यह जरूरी है कि तुम्हीं इसे पहले छूओ ?

यूरी : हां, यह जरूरी है !

नील : इससे तुम्हारी श्रेष्ठता प्रमाणित हो जाएगी क्या ?

यूरी : नहीं ! इस चीज़ का पता सबसे पहले मेरे देश को चला था। हमने सबसे पहले इस क्षेत्र के देशों से दोस्ती की थी और इस महारहस्य को जाना था।

नील : लेकिन इसे पहुंचना तो मेरे देश की प्रयोगशाला में है ! इसकी शक्ति को वहीं से आंककर विश्व भर में फैलाना है।

यूरी : ठीक है, ठीक है ! पर मिशन का प्रस्ताव मेरे देश का था।

नील : यात्रा की सभी तैयारी मेरे देश की थी।

यूरी : ले आने की मेरी थी ! अरे, हम झगड़ने क्यों लगे ? यह दायित्व हम दोनों का है।

(वह हिम-कमल को उठाकर उसे गौर से देखता है।)

क्या सौन्दर्य है ! क्या सुगंध ! यह देखो नील, दुनिया की सबसे भव्य वस्तु मेरे हाथों में है। विश्व का सबसे अनमोल खजाना देखो, तुम्हारी आंखों के सामने है। इसकी सुगंध ने मेरी सारी थकान हर ली।···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नील : (**हाथ बढ़ाकर**) लाओ मैं भी देखूं।

यूरी : नताशा से भी सुन्दर है यह !···

नील : मैं भी देखूं !

यूरी : आह ! क्या चमक है—क्या कोमलता है !

नील : मैं भी तो देखूं !

यूरी : मेरी ठण्ड जाती रही, प्यास जाती रही, कमजोरी जाती रही। अब किसी चीज की भूख नहीं, कोई इच्छा नहीं !···

नील : पर मेरी तो है। इसे देखूं तो सही !

यूरी : लो यार ! जी भर कर देख लो। सभी इच्छाएं जाती रहेंगी।

नील : (**यूरी के हाथ से फूल लेकर**) क्या चमत्कार है !

यूरी : (**तनकर खड़ा होता है।**) अरे, मैं तो एकदम नया आदमी हो गया।··· (**अपने को और विस्तृत करते हुए**) मेरी तो जवानी लौट आयी !

(तभी कान के परदों को फाड़ देने वाली आवाज़ गूंजती है।)

नील : यह क्या ?

(उसके हाथ से फूल छूटकर नीचे गिर जाता है। दोनों व्यक्ति अपने-अपने कानों पर हाथ रखकर लुढ़क जाते हैं। किसी डंस की-सी पीड़ा को झेलते हुए दोनों ज़मीन पर लोट जाते हैं। आवाज़ धीरे-धीरे धीमी होती है। दोनों दो अलग छोरों पर धीरे-धीरे उठते हैं। नील खड़ा हो जाता है। यूरी घुटनों के बल पर रहता है। नील सहमा हुआ उसके पास पहुंचता है।)

यूरी ! यह कैसी आवाज़ थी ?

यूरी : मेरा अपना सारा बदन सुन्न होता जा रहा है। मेरे पांव उठ नहीं पा रहे। मेरे हाथों को यह लकवा मार गया क्या ? नील···नील, यह मुझे क्या हो गया ?

(नील झपटकर हिम-कमल को उठाता है। फिर अचानक किसी अंगारे की तरह उसे फेंक देता है।)

नील : यह अंगारा है। मेरे हाथ !···

(वह अपने दोनों जुड़ आये हाथों को एक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे से छुड़ाने की चेष्टा करता है।)

यूरी ! यह मेरे हाथों को क्या हो गया ? मेरे मस्तिष्क में यह झुनझुनी-सी क्यों होने लगी ?···

यूरी : मेरी सांसें !··· (**वह सांसों के लिए संघर्ष करता है।**) मे···मे, म-म··· मेरी आवाज़···आ···वा···(**उसकी आवाज़ बंद हो जाती है। वह इशारे से अपनी पीड़ा को व्यक्त करता है।**)

नील : यूरी ! यह किस अभिशाप की तलाश थी हमें ? तलाशों की अन्तिम परिणति यही है क्या ? यह तो मौत है ! हा-जॉन, माई लव ! मेरी हा-जॉन···मैं···मैं तुमसे मिलूंगा···जरूर मिलूंगा···थाई-बिन के बौद्ध मंदिर के प्रांगण में···हा-जॉन, मेरी मुहब्बत !···

(तब तक यूरी ज़मीन पर लुढ़ककर दम तोड़ जाता है। नील भी नीचे गिरता है। अपने हाथों को छुड़ाने में असमर्थ वह रेंगता हुआ यूरी के पास तक पहुंचता है। बोलने की कोशिश करता है—बोल नहीं पाता। उसके निष्प्राण होते ही एक कोमल संगीत शुरू होता है और साधु का फिर से प्रवेश होता है। बीच में खड़ा होकर वह दोनों व्यक्तियों को देखता है। नीचे से हिम-कमल उठाकर अपनी मुट्ठी में बांध लेता है।)

साधु : खोज ! तलाश !! (**वह आंखें बन्द कर लेता है, फिर उन्हें धीरे-धीरे खोलता है।**) हर तलाश की चिता पर नयी तलाश जनमती है। आदमी अंधेरे में रोशनी तलाशता है और रोशनी में अंधेरा। धूप में छांव की तलाश होती है, छांव में धूप की !

(प्रकाश थोड़ा-सा धूमिल होता है। संगीत तेज होकर धीमा पड़ता जाता है।)

विनाश अपने आप नहीं आएगा—उसे खोज ले आएगी तलाश ! बेहतर के वहम में। तलाश ! तलाश अभी जारी है।

(संगीत तेज़ होता है। उसके साथ ही अंधकार फैल जाता है।)

(प्रलय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता-संग्रह

नागफनी में उलझी सांसें, कैक्टस के दांत, और एक डायरी बयान।

साहित्य में भी हथौड़े की आवश्यकता होती है। मैं हंसिये के साथ चिपके हुए हथौड़े की बात नहीं कर रहा ! यों तो मेरा यह विश्वास है कि साहित्य में लोहार के हथौड़े से कहीं अधिक उपयोगी और सार्थक सोनार की हथौड़ी होती है। अपनी लेखन-प्रक्रिया के दौरान मैं अपने इस उसूल को तोड़ता भी रहा हूं, क्योंकि मैं यह नहीं मानता कि उसूलों के साथ चिपके रहकर उनकी रक्षा की जा सकती है। इस सिद्धान्त को मैंने सबसे अधिक अपनी कविताओं की रचना के दौरान तोड़ा है। अपनी कविताओं के लिए मैंने सोनार की हथौड़ी को कोने में रखकर लोहार के हथौड़े का इस्तेमाल किया है। उस भारी-भरकम प्रहार से मेरी कविताओं का सौन्दर्य बिगड़ भी गया होगा तो मुझे इसकी परवाह नहीं, क्योंकि मुझे जो कहना था—वह मैं कह सका हूं और इसकी मुझे खुशी है। चिल्लाकर कुछ बोलना मेरी आदत नहीं रही है, लेकिन जब वास्ता बहरों से पड़ता है तो चिल्लाना मेरे लिए अनिवार्य हो जाता है···इसलिए मेरी कविताएं उसी अनिवार्यता की कविताएं हैं। मेरी कुछ कविताएं जब धरावाही नव भारत टाइम्स में 'पसीना किसी का—फसल किसी की' शीर्षक से आयी थीं, उस समय कुछ मित्रों ने उनके कविता होने पर संदेह व्यक्त किया था और मैंने कविता के सामने यह शब्द लिख दिया था—मेरी···। अपनी कविताओं को मैं आज भी 'मेरी अपनी' कविता मानता हूं !

मैं वह कविता तो लिख ही नहीं सकता, जो कभी मेरी समझ में आयी ही नहीं और जिसे माप-तौलकर प्रस्तुत करना मुझे कभी आया ही नहीं ! मेरा पहला कविता-संग्रह 'नागफनी में उलझी सांसें' के नाम से पाठकों के हाथों में आया और उसमें से कुछ कविताओं को जब बच्चन जी ने वर्ष की बेहतरीन कविताओं के अपने चयन में स्थान दिया तो मैं झट अपनी कविताओं से 'मेरी अपनी' शब्दों को हटा लिया, और तब से मेरी कविताएं भी महज कविता के रूप में आ रही हैं।

मैं बुद्धू था ! अब तक समीक्षकों के पांव नहीं पकड़े। विश्वविद्यालयों के कुल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतियों को खुश नहीं किया। प्रेस और रेडियो-टेलीविजन के लोगों को दावतें नहीं दीं। ऐसा किया होता तो आज मेरी पुस्तकों की भी बेसुमार समीक्षा और विज्ञापन होते। बेसुमार पुरस्कार मिलते। और खैर, देर अभी भी नहीं हुई! आपने धर्म-युग, सारिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि पत्रिकाओं के माध्यम से यह जाना तो जरूर होगा कि मैं अभिमन्यु अनत जो शुरू-शुरू में कभी 'शबनम' भी था—कहानी-कार हूं; लेकिन मैंने कविताएं भी लिखी हैं, शायद आपने सुना नहीं! मेरे कवि रूप का थोड़ा-बहुत प्रचार मेरे सहयात्री ने जरूर किया है। पर वह आप तक पहुंचा नहीं होगा। मेरा यह दोस्त उपन्यास और कहानियां लिखता है, कविताएं बिल्कुल नहीं लिखता। मित्रों से बातें करते वक्त यह कहता रहता है कि अभिमन्यु कवि तो बहुत बड़ा है, लेकिन उपन्यासकार और कहानीकार बिल्कुल नहीं है। मेरी सभी कहानियों और कोई पन्द्रह उपन्यासों को नकारकर मेरा यह दोस्त मेरे कवि रूप का विज्ञापन करता रहा है। क्यों न मैं आपसे अपने उस कवि रूप का भाव जान लूं! देखिये, मैं जानता हूं कि बाजार में कविता का भाव गिरा हुआ है, इसलिए मैं आपको एक-एक करके अपनी कविताएं नहीं बेचना चाहता। आपके सामने एक टोकरी रख देता हूं, पहले लघु कविताओं की। जो भी दाम मन में आये, दे दीजियेगा! इनमें से कुछ कविताएं 'नागफनी में उलझी सांसें' से तोड़ी गयी हैं, कुछ 'कैक्टस के दांत' से और कुछ 'एक डायरी बयान' से। पर सभी ताज़ा हैं। चाहें तो खरीदने से पहले एक चख लें। इसका दाम मत दीजियेगा।

यह प्रतिक्रिया भी रही है कि इन कविताओं में न तो कोई सौन्दर्य-बोध है और न ही कोमलता का आभास! न वह माधुर्य ही, जिसकी आशा कविता में की जाती है। सच बात तो यह है, मेरे प्रिय ग्राहक! कि मैंने भी इन्हें कभी कविता माना ही नहीं। मैं अपने उस दोस्त के बहकावे में आ गया जा मुझे कहानीकार नहीं, कवि बहुत मानता है। मैं सुमन और बच्चनजी के बहकावे में भी आ गया। समीक्षकों की भी यह साजिश ही रही कि मैं अपने को यातनाओं से ग्रस्त, तेजाब छिड़कने वाला कवि मान लूं। कुछ लोग मेरी कुछ रचनाओं के जरिये मुझे बड़ा साहसी और निडर व्यक्ति समझते हैं, जबकि वास्तव में मैं हल्दी घाटी पर ओजपूर्ण कविता करने वाले उस कवि जैसा ही निडर हूं, जो कुत्तों की भौंक सुनते ही घर के भीतर जा छिपता था! मेरी कविताओं से आपको भी गलतफहमी हो गयी होगी। इन छोटी कविताओं से थोड़ी लम्बी कविताएं भी हैं, मेरी इन ऊपर चर्चा की हुई पुस्तकों में। ये कविताएं क्षणिकाओं और हायकू से लम्बी तो अवश्य हैं, लेकिन लम्बी कविताओं से छोटी हैं। जहां-तहां तेजाबी भी हो चली हैं इसलिए इन्हें छलकने न दें! एक मिनट!

कुछ लोग कहते हैं कि कभी कविताओं से बेहतर उन पर कही गयी बातें होती हैं; इसलिए पहले कुछ अच्छी बातों से अपनी रौ को बना लीजिये। 'सर्वहिताय' के सम्पादक की इस बात को पता नहीं आप कहां तक समीक्षा मानेंगे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहां तक प्रशंसा और कहां तक रिआयत—ऐसे तो रिआयत शब्द से मुझे बहुत चिढ़ है, लेकिन जहां समीक्षा और आलोचना से ठंड या गरमी का आभास मुझे कम होता है, वहां प्रशंसा खुशी देकर कभी जोरों की गुदगुदी भी दे जाती है—हां, तो डॉ० जीवन प्रकाश जोशी कहते हैं कि 'नागफनी में उलझी सांसें' पढ़कर उन्हें आनायास 'आयरलैण्ड के महान कवि ईट्स और उनकी उन कविताओं की याद आती है जो उन्हें राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महान मनवाती है !

"अभिमन्यु की कविताओं में व्यापक ध्वन्यर्थ में राष्ट्रीयता का रंग-रूप-रसबोध और मनुष्य की मुक्तिधर्मी चेतना का सहज-सरस स्वर है।"

आखिर बात आ ही गयी न रंग-रस की !

'प्रकर' में रमेशचन्द्र मिश्र का विश्वास है कि सातवें दशक की हिन्दी कविता के मुहावरे को 'नागफनी में उलझी सांसों' के इस कवि ने भली-भांति पकड़ा है—"उन रचनाओं में कवि की आकुलता के साथ ही लम्बे अनुभव और अभ्यास का भी एहसास होता है। और इस आधार पर यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि मॉरिशस का यह जनकवि आज के हिन्दी कवियों की प्रथम पंक्ति में निःसंकोच प्रतिष्ठित हो सकता है ! (यहां थोड़ी-सी राहत अपने को मिली, क्योंकि अभी हुआ नहीं हूं, हो सकता हूं) और निश्चित ही कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से सातवें दशक के कवियों के काव्य-इतिहास में आज के आदमी की पीड़ा को भाषाबद्ध करने वाले कवियों में अनत का नाम अंकित होगा—

सवाई सिंह शेखावत ने मेरी प्रशंसा और विज्ञापन के लिए एक सरकारी पत्रिका का सहयोग लिया और लिख ही डाला—"प्रतीकों और बिम्ब-रचना के निर्वाह में 'नागफनी में उलझी सांसें' में एक विरल अनूठापन है जो अभिमन्यु का अपना है, ओढ़ा हुआ नहीं !" मेरी रचनाओं पर अपनी थीसिस पूरी करने वाले डॉ० श्यामधर तिवारी के विचार में, मेरा क्षुब्ध मन वर्तमान स्थिति को स्वीकार नहीं कर सकता, सम्भवतः इसीलिए वह आग उगलने लगता है। कवि से ज्वालामुखी बन जाने का कारण मेरा अपना कुंठित अतीत नहीं है, बल्कि मेरे देश का वर्तमान है। सोचा था, इसका विश्वास डॉ० तिवारी को मेरी सभी पुस्तकें पढ़ने के बाद मिल गया होगा।

शिवमंगल सिंह सुमन जी के लिए मेरा कथा-साहित्य जहां प्रेमचन्द और मोहन राकेश के छोरों को जोड़ता-सा प्रतीत होता है, वहीं मेरी कविताओं का शब्दशोधन उन्हें रूस के क्रांतिकारी कवि मायकोव्स्की की याद दिलाता है और मेरी कभी नत न होने की आन उन्हें निराला के सर्वहारा स्वाभिमान की याद दिला जाती है।

आपको मेरी कविताएं अगर आज के सियासती व्यूह में आम आदमी की उस खामोश यातना की याद दिला दें, तो उनके कविता न होने पर भी मैं उनकी सार्थकता स्वीकार लूंगा !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खून और पानी

पानी की एक बूंद
खून की एक बूंद से मिलकर
अपना अस्तित्व खो बैठी
और खून की एक बूंद से मिलकर
उसे भी अपना रंग दे गयी,
फिर भी पानी खून नहीं हुआ
और खून पानी हो गया !

और अब

'जाए दे' कहकर तुमने
विभीषण को जाने दिया,
'आए दे' कहकर तुमने
जयचन्द को आने दिया,
'छोड़ दे' कहकर अब तुम
छुड़ाना चाह रहे हो
जकड़ी हुई अपनी गरदन को।

बीच का क्षण

मेरे अपने, तुम्हारे अपने—
दोनों के दो क्षणों के बीच का
एक छोटा क्षण
दूसरे लोगों के क्षणों के बीच
खो गया है
इधर हमारी श्रृंखला बनती नहीं,
उधर वह बेकार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चांद की परछाइं

तुमने उस दिन कहा था—
चांद भी मांगो,
हम तुम्हें ला देंगे !
अंधेरी रातों में ओझल रहकर
पूर्णमासी की रात तुम पहुंचे
हाथों में कटोरा थामे
उसके पानी में
चांद की परछाइं लिये।

वर्तमान

अतीत की रिसती छत से
मेरा वर्तमान
ठोप-ठोप टपक रहा है
भविष्य के
पेंदीहीन पात्र में···

रात

अंधेरी रात
बिन सिन्दूर के
मेरी चारपाई पर आ गयी है,
इस अवैध संगम से
कल एक और अंधेरी रात का
जन्म होगा
इस अंधेरी नगरी में।

खाली पेट

तुमने आदमी को खाली पेट दिया—
ठीक किया !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर एक प्रश्न है रे नियति,
खाली पेटवालों को
तुमने घुटने क्यों दिये ?
फैलनेवाला हाथ क्यों दिया ?

सूरज की गवाही

जिस दिन सूरज को
मज़दूरों की ओर से गवाही देनी थी,
उस दिन सुबह नहीं हुई;
सुना गया कि
मालिक के यहां की पार्टी में
सूरज ने ज्यादा पी ली थी।

कितना कठिन

तुम्हारा यह दावा कि
तुम देश की उन्नति के लिए
सबसे कठिन कार्य कर रहे हो—
मेरी नज़रों में कोई अर्थ नहीं रखता।
उन्नति-अवनति को छोड़ो,
मेरी तरह नौकरी की तलाश में लगकर
फिर बताओ, कौन काम कितना कठिन है !

कुछ और जला दो

सुना तुमने—
मेरी जिजीविषा ने
आत्महत्या कर ली है
रोज़गार दफ्तर की चौखट पर।
डेथ-सर्टिफिकेट नहीं मिल सकता,
आज मज़दूर-दिवस की आम छुट्टी है;
तुम चिता पर
कुछ और जला दो !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्ग और स्वर्ग

तू और किस स्वर्ग की बात करता है ?
मैं तो दो स्थलों को जानता हूं—
एक वह वटवृक्ष है जहां जलकर
मेरे पूर्वज स्वर्गवासी हुए,
दूसरा वह स्थान जहां
मेरा भविष्य मरकर वास कर रहा है।

सुरमई सुबह

जो सुबह दूधिया उजाला लिये
तेरे दर बिन बुलाए पहुंच गई है,
वह मेरे दर से होकर
अपनी सुरमई ओढ़नी को
मेरे दरवाज़े पर टांग गई है।

धांय-धांय

कहीं नियति की हाय-हाय
कहीं अभाव की झांय-झांय,
वहां कराहती सांसों की सांय-सांय,
यहां आक्रोश भरे मैना की-सी कांय-कांय
फिर शासन की गोलियों की धांय-धांय···

गंगा आंगन की

मेरे देश का मनमोहक समुद्र-तट
उस श्वेत आक्रमण को
तुमने सुपुर्द कर दिया—
व्यवसाय की भाषा में
जो सैलानी हैं,
अब गंगा-स्नान के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे आंगन में
बरसात का जमा पानी है।

उपयोग के बाद

ठण्ड के मौसम में
तुम सूरज को खरीद लेते हो,
गरमी में हवा को,
और उन्हें उपयोग के बाद
बारी-बारी से फेंक देते हो
मेरे आंगन में।

फेफड़ा और पुर्जा

ईख के खेतों का मज़दूर
सूखे फेफड़े पर हाथ रखे मर रहा—
एक भी डॉक्टर पास नहीं,
उधर पांच इन्जीनियर मिलकर
ईख के कारखाने के पुर्जे पर
चरबी लेप रहे।

हवा और हवा

बाकी तत्त्वों की समानता
मुझे ज्ञात नहीं,
पर इससे मैं अनभिज्ञ नहीं—
कि हवा तुम भी हो
और हवा मैं भी हूं।
तुम वह हवा हो जिससे
दीये बुझ जाते हैं,
मैं वह हवा हूं जिससे
आग
और भी धधक जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोपहर की धूप में

भय से
दोपहर की धूप में भी
तुम्हारी परछाईं भी नहीं दीख पाती
क्योंकि तुम्हारे देश के भूखे लोग
तुम्हारे साये की बोटी-बोटी को
खा जाने की ताक में
मुंह बाए खड़े हैं।

पंछी के पांव को बिजली नहीं लगती

मैं अपने सिर को
तुम्हारे पांव पर रख देता,
पर मैंने अपनी खिड़की से
बिजली के तार पर पैरों के बल खड़े
उस पक्षी को झुलस जाते देखा है,
जिसका सिर अचानक तार से छू गया था।
पंछी के पांव को बिजली नहीं लगती,
पर सिर को लगती है—
मुझे अपना सिर प्यारा है !

सफेद रात

अपनी चारपाई के सूखे
रक्तहीन खटमलों से मैंने
दोस्ती कर ली है,
उन्हें यह समझा चुकने के बाद
कि दोष मेरा नहीं उस महंगाई का है,
जिससे हर धमनी का ख़ून
बर्फ़ की तरह जम गया है।
फिर भी वह रात जो नींद लाती है,
अभी तक मेरे कमरे के भीतर नहीं पहुंची।
मैं खुली आंखों सपने में खो जाता हूं…

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा प्रणय ईख के पत्ते बटोरता
गांव की लड़की से हुआ था,
परिचय
सफेद रातों से हो गया है।

यही मेरी आजादी

मेरी मुट्ठी में बीमार शाम है,
आंखों में भरी हुई सुबह,
ज़मीन नहीं मेरे पांव के नीचे,
न मेरे सिर के ऊपर सूरज है—
यह मेरी आज़ादी है !

३ सितम्बर रात

इन्सान और इन्सान के बीच की
उस खूंख्वार सीमा से
सफेद कबूतरों का एक झुंड
मेरे आंगन में उतर आया है,
अपने-अपने डैनों में ले आए हैं सभी
खून की जमी बूंदें—
मेरी बच्ची उन्हें लालमुनिया,
मेरा बच्चा तितलियां समझ रहा है।

२६ सितम्बर आधी रात

मेरी मुंदी हुई आंखों में
कल सपना जीवन था,
आज खुली हुई आंखों में
जीवन सपना है,
छू न पाऊं फिर भी
सपना ही बस अपना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३० सितम्बर भिनसार

अपने उल्लासों को मैं गा नहीं सकता
क्योंकि वे मेरे ही थे—
कभी निर्णय नहीं कर पाया,
तुम्हारे दर्दों को तो
बस इसलिए गा लेता हूं
क्योंकि वे मेरे भी हैं—
इतना विश्वास है मेरा।

२ अक्टूबर सुबह

चौराहे पर की उस गांधी की मूर्ति को—
विमोचन जिसका नेता कर गया था,
माला जिसको नेता पहना गया था कल,
गांधी महात्मा की उस श्वेत मूर्ति को
किसी ने तीन गोलियां मार दीं।
खामोशी उड़कर ऊपर गयी
बादलों को खंजर मार दिया,
ज़मीन पर लाल बूंदें टपकने लगीं—
गांधी की मूर्ति जीवित न हो सकी,
वह भी मर गयी गांधी की तरह
रघुपति राघव राजा राम
पतित पावन सीता राम !

१२ अक्टूबर दोपहर

आदमी जनम से नहीं
करम से बनता था कुछ,
अब तो हो गयी बात पुरानी
आदमी जनम-करम से नहीं
तुम्हारे रहम से बनता है कुछ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४ अक्टूबर शाम

जब स्वतन्त्रता एक सत्य होती है
काले कागज़ पर काले अक्षरों में,
तब अभिव्यक्ति एक अधिकार होती है
सफेद कागज़ पर सफेद अक्षरों में।

१५ अक्टूबर शाम

एक छोटा-सा क्रॉस
मैंने तुम्हें दिया था
बैलट-पेपर के ऊपर,
जिससे तुमने अपना
अपने भाई-भतीजों का
कल्याण कर लिया,
वचन के नाते
मेरा भी खयाल रहा तुम्हें—
मेरे लिए भी एक
उपहार भेजा तुमने,
मेरी पीठ से दो गुना बड़ा
लोहे का एक क्रॉस—
उस छोटे से क्रॉस के बदले !

एक प्रेमगीत

रात के जाग जाने से पहले
चलो खामोश पगों से हम निकल चलें !
रात जागेगी
भेड़िये की मुस्कान का जादू चलेगा
हम फिर सम्मोहित हो जाएंगे
और भेड़िये की मुस्कान को बनाए रखने के लिए
नीलाम करते रहेंगे
अपने जनमनेवाले बच्चे की निर्मल मुस्कान—
चलो निकल चलें, खामोश पगों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे पहले कि बज उठें ये मन्दिरों के घंटे ।
आरतियां होंगी भेड़िये की लोलुपता की
दीर्घायु के लिए
तारीफ करेगी कविता
भेड़िये के शासन की ।
चांद बिक चुका है अन्धेरी रात के हाथों,
उसके मधुकलश से
छिटकती चांदनी
तोड़ चुकी वह पुराना रिश्ता प्रेमियों से,
चांद तो अब
अगवानी करता है खूबसूरत साजिशों की
चांदनी अमृत पिलाती
भेड़िये की मुस्कान को,
खामोश पगों से चलो निकल चलें—
रात के काले पंजों के जागने से पहले !

चलो, सुलझा लें
नागफनी में उलझी दूधिया को
उसे छुड़ा लें, अपने लिए न सही
अपने जनमनेवाले बच्चों के लिए ही,
चलो, नकार दें खामोश स्वरों में
घटाटोप रात की साजिशों को !

चौरंगे का कफन

'देश के चौरंगे' को
रात भर ओढ़े रहने के बाद
सुबह जब तुमने उसे
पार्टी में सजाने के लिए झड़वाया तो
उसका लाल रंग छिटककर
बड़े अफसरों की आंखों में फैल गया,
नीलेपन को थाम लिया अपनी आंखों में—
पर्यटकों को बहलाने वाली वेश्याओं ने,
हरे रंग को मालिकों ने बड़े इत्मीनान से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी तिजोरियों में बन्द कर लिया,
और पीलापन उसका दान में मिला
मेरे सुन्दर देश के अनेमियाग्रस्त मज़दूरों को—
ज़मीन के शहीद को
चौरंगे का कफन न मिला।

गूंगा इतिहास

एक हाथ में गन्ना
दूसरे में गंड़ासा
माथे पर पसीना
सिर पर अभाव की बोझिल गठरी
पीठ पर कोड़े से अंकित
मालिक का लाल हस्ताक्षर
आंखों में
प्रसुप्त ज्वालामुखी का धुंधलका
पेट में एक खाली कुआं
तार-तार हुआ फेफड़ा
उलझी हुई सांसें
गिरवी आत्मा
पैबन्द लगा वर्तमान···
बारह अध्याय का यह इतिहास
आज भी अकुला रहा
खेतों में पसीने की जमी हुई परत पर
जहां-तहां लाल बूंदें
चमक रहीं।
उस बैलगाड़ी के पहियों के निशान
अब भी हैं पगडण्डी पर
जो गुजर गयी ईख का बोझ लिये
शक्कर का खाली बोरा ओढ़े
इतिहास आज भी बोआई कर रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोझ

खेतों से लौटने वाले गाड़ीवान,
तुम्हारी गाड़ी खाली क्यों है,
मृगझुण्ड की तरह—
फसल के तुम्हारे हिस्से का
किस गराधिका ने
भीतर से खोखला कर दिया ?
इस पंकिल-पथरीले रास्ते में
खाली गाड़ी उलट जाती है,
याद है तुम्हें—
अर्जुन का रथ तो
हनुमानध्वज
और कृष्ण के साथ भी
उलटते-उलटते बचा था···

खैर !
अगर तुम्हारी गाड़ी को
मंजिल तक खाली ही जाना है
तो ठहर जा साथी,
मेरे पास एक बोझ है
उसे लाद ले;
इस बीच तुम्हारा बैल भी सुस्ता जायेगा
पगडण्डी के गड्ढे से उसे
थोड़ा पानी पी लेने दे
क्योंकि मेरा बोझ भारी है—
यह मेरी व्यथाओं की गठरी है
यात्रा लम्बी होगी,
इसे उतारने को
दूसरे हिरोशिमा पहुंचना है···
गाड़ीवान, तुम चुप क्यों हो गये ?
मालूम है तुम्हें कोई दूसरी जगह
जहां मैं वहां
मैं उतार सकूं अपने बोझ को ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लम्बी मृत्यु इतिहास की

इस द्वीप के
श्मशान के रास्ते में
दासता की प्रथम घड़ी से
मेरे कन्धे पर
वह मेरी ही अरथी होती है,
मैं जो कभी कुली था—
आज उसकी सन्तान हूं,
जिसे प्राप्त है विरासत में
लम्बा इतिहास,
जिसमें ये सभी घर अपने हैं
क्योंकि अपना कोई विशेष घर नहीं
कोई विशेष शरीर नहीं,
विशेष शव नहीं,
श्मशान के रास्ते
ये सभी लाशें
अपनी ही होती हैं,
जिनके कभी खाली पेट
नंगे बदन थे
माथे पर काली मुहर थी
गोरे मालिकों की,
कन्धों पर कोल्हू की रस्सी का
अमिट निशान था,
हथेलियां कोरी थीं,
चाट गयी थी उन हस्त-रेखाओं को
सरदारों की लोलुप जीभ ।
मेरे कंधे पर के सभी बोझ
मेरे अपने ही बोझ होते हैं,
खामोशी के ये चीत्कार भी
अपने ही होते हैं;
मैं वह लम्बा इतिहास हूं
जिसे अब याद नहीं रहे
वे पुराने दिन, लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने का मुड़िया पहाड़
अपना है, शत्रु भी सारे
शत्रु हमेशा अपने होते हैं,
मित्र और अनुयायी
सदा अपने नहीं होते।
हिन्द महासागर भी अपना है,
श्मशान के रास्ते मेरे कन्धे पर
मुड़िया पहाड़ की लाश है···
मुड़िया पहाड़ इतिहास है
वह अरथी मेरी है।
पर्यटकों की बांहों में
वह मेरी बहन है,
समुद्र किनारे के वे सारे बंगले
मेरी अपनी ही
भव्य समाधियां हैं,
जिनसे टकरा-टकराकर
पूर्वजों की आहें
दम तोड़ लेती हैं।

फिर भी

मेरा देश एक द्वीप है
समन्दर ही समन्दर
बालू ही बालू
इसके चारों ओर,
यही कारण है कि
यहां बालू के घरौंदे
बहुत बनते हैं!
यहां नियति
तरंगों से
आंख-मिचौनी खेलती हुई
ज्वार-भाटों की लपेट में
आ जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा देश एक द्वीप है
समन्दर में
बड़ी मछलियां
छोटी मछलियों को
खाती रहती हैं—
यह परम्परा
इतिहास बनी
फुदक रही
हर डाली पर,
समन्दर और द्वीप
के कानून में
कोई अन्तर नहीं होता !

मेरा देश एक द्वीप है
यहां गन्ने की उपज
बहुत अच्छी होती है,
चीनी की कड़वाहट अधिक हो जाती है
पर समन्दर का पानी
नमकीन होता है,
द्वीप में तूफानों का आना
होता ही रहता है,
आदमी की बुनियाद
झकझोरी जाती है
फिर भी
चट्टानों से टकराती लहरें
संघर्ष के गाने गाते
कभी थकतीं नहीं।
मेरा देश एक द्वीप है
मुझे अपने देश से
प्यार है !

अधगले पंजरों पर

भूकम्प के बाद ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरती के फटने पर
जब दफ़नाई हुई सारी चीज़ें
ऊपर को आएंगी,
जब इतिहास के ऊपर से
मिट्टी की परतें धुल जाएंगी,

मॉरीशस के उन प्रथम
मज़दूरों के
अधगले पंजरों पर के
चाबुक और बांसों के निशान
ऊपर आ जाएंगे,
उस समय
उसके तपिश से
द्वीप की सम्पत्तियों पर
मालिकों के अंकित नाम
पिघलकर बह जाएंगे।
पर जलजला उस भूमि पर
फिर से नहीं आता,
जहां समय से पहले ही
उसे घसीट लाया जाता है;
इसलिए अभी उन कुलियों के
वे अधगले पंजर
ज़मीन की गहराई में सुरक्षित रहेंगे
और शहरों की व्यावसायिक संस्कृति के कोलाहल में
मानव का क्रन्दन अभी
और कुछ युगों तक
अनसुना रहेगा।

आज का कोई इतिहास नहीं होता,
कल का जो था
वह जब्त है तिजोरियों में,
और कल का जो इतिहास होगा
वह इतिहास को नकारने का इतिहास होगा,
अधगले पंजरों पर
सपने उगने का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रश्न खरीदना है

मेरे हाथ की घिस गई भाग्य-रेखाओं पर
ये कैक्टस के उग आये पौधे
तुम्हारे अंगारों-से गुलमोहर के
अकुला आये फूलों से छूटती
पंखुड़ियों को
धूल में मिल जाने से बचाये जा रहे,
अपने मर्म कांटों के सहारे—
जिसे देख तुम्हारी आंखों से फूट आयीं
फौलाद की धधकती सलाखें,
तुम्हारे तन से छूटा भी
मेरा आभूषण बने
यह तुम्हें आज भी गवारा नहीं,
अन्तर कुछ पट जाएगा
यह तुम्हें स्वीकार नहीं
तुम भाग्य-निर्णायक हो,
तुम सौदागर हो इसलिए
तुमसे एक सौदा करना चाह रहा हूं—
मेरी मुट्ठी में
बहुत सारे प्रश्न हैं,
प्रश्न ही प्रश्न ! उत्तर एक भी नहीं ।
ये प्रश्न चांदी के नहीं,
फिर भी क्या तुम उनके बदले
मुझे कुछ उत्तर बेचोगे ?
मुझे उत्तर चाहिए,
अपनी भाग्य-रेखाओं पर उग आये
कैक्टस के फूलों में पराग भरने के लिए ।
तुम्हारे बहिष्कृत फूलों को
कांटों ने थाम लिया,
क्या सजा दोगे अपराधी कांटों को ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां दोपहर में रात हो गई

यहां दोपहर में रात हो गई,
गूलर का फूल खिलकर काफूर हो गया,
गिद्ध के डैनों के नीचे
गौरैया की जिन्दगी,
कानून का तकाज़ा हुआ—
कैक्टस के दांतों पर
खून का चमकता दाग,
पंखुड़ी से फिसलकर
चांदनी अटक गई
सेंहुड़ के कांटे की नोक पर,
ओस की लाल बूंद पर
काली रात तैरती रह गई,
उजाले के गलित तन पर
काला कुत्ता जीभ लपलपाता रहा,
गंधलाती रही सूरज की लाश
काली चादर की ओट में,
अंधे दूल्हे ने अंधे काजल से
भर दी मांग दुल्हन की—
यहां दोपहर में रात हो गई,
सुहागरात बन्द रह गई
सिंदूरौटे के भीतर।

प्रतिभा बौनी है

यहां आदमी के पांवों में ऊंची एड़ी के जूते हैं
चाहे आदमियत घुटने टेक चुकी है
अस्तित्व गिड़गिड़ाने लगा है चाहे,
ताड़ के नीचे बौने पौधे किसी तरह जी रहे हैं,
उधार की खामोशी को हलक के नीचे उतार-उतारकर
धमनियों की सूखरी की सिंचाई हो रही है,
बाजार की बासी महंगाई की तरह
जिजीविषा का मूल्य भी बढ़ गया है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगतिशील जीव है आदमी—
तरक्की की कतारें लम्बी होती चली जा रहीं,
स्तुति विद्रोह करके
मंदिरों की चारदीवारी के बाहर आ गई है,
वह चर रही है
पत्रिकाओं में
पुस्तकों में
दफ्तरों में
उत्सवों में
गोष्ठियों में···
छतनार के नीचे पहुंच जाने के वास्ते
कड़कती धूप की आपाधापी
तर हो चली है पसीने से।
यहां आदमी के पांवों में ऊंची एड़ी के जूते हैं,
सिर पर पगड़ी का फैशन लद चुका,
विश्व-मंडी की मुद्राओं की तरह
कुछ मूल्यों का भाव भी गिर पड़ा है,
छतनार के नीचे कुकुरमुत्ते उग गये हैं
कुकुरमुत्तों के पांवों में भी ऊंची एड़ी के जूते हैं।
तुमने शर्त लगायी थी—
हम एक-दूसरे के पसीने से
अपनी-अपनी रोटी बोरकर खाएंगे,
तुम बोरे जा रहे अपनी रोटी
मेरे पसीने के रस में,
मैं सूखी रोटी खा रहा—
क्योंकि तुम्हारा तो
पसीना बहता ही नहीं!

अजनबी रात

नदी में नहा रहा जंगल का सूरज,
शहर का सूरज फ्रीज में बन्द है—
अंधेरे में शहर और जंगल जुड़ गक।
लोमड़ी और शेर दफ्तरों में जा बैठे हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नुकीले दांत किटकिटाते
लम्बी जीभ लपलपाते
अफसर जंगल के बीच घूम रहा···

सफ़ेद कबूतर कांप रहा है भय से,
मांस के टुकड़ों की तरह
फ्रीज़ का सूरज सड़ने से बच गया,
आदमी की दबी हुई आवाज़
शहर में आ जमे
जंगली पेड़ की डाल पर झूल रही
और सांसें भुगत रही हैं
फांसी की सज़ा।

जंगल का सूरज नदी को दग्ध करके
पिघला ले गया चट्टानों को—
शहर का सूरज अब भी फ्रीज में बन्द है।
ठंड से पूरा शहर कांप रहा,
एक अजनबी रात—हमारी रातों से भिन्न
हर रात शहर में मंडरा रही है।

चेतावनी···दर्जा तीन

जंग लग आये सूरज से
उबलते पानी में गिर पड़े,
पक्षी के परों की तरह
किरणें झड़कर
बिखर जातीं,
घिस जाती धरती पर
उजाले की धार,
जीवन पिघलकर बह रहा—
पर कुत्ते और अंजीर का संबंध
अटूट रहा।

वह शत्रु खिड़की के पीछे है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और यहां खिड़कियां बहुत हैं—
उससे भी सीमित हैं
कुर्सियां बिजली की,
बेशुमार हैं नये आश्वासन—
अर्थ ढूंढनेवाले खुद खो जाते हैं।
दीवारों से अभी चोंइटे उतरे नहीं,
ईंट तेल में तली नहीं,
औरों के चमड़े से
लिपटा हुआ वह कल
बिन दिवस का होगा—
सूरज गलकर चू जाता है।

मुट्ठी में बंद क्राति
साबुन की फेनिल-बुलबुली बनकर रह जाती,
अकेला परी-तालाब का जल
सारे मैल को धो पाता नहीं,
लूले सूरज में नयी किरणें नहीं उगतीं,
बड़े वृक्षों के नीचे
छोटे वृक्ष बढ़ नहीं पाते,
इसलिए छोटे पेड़
कुल्हाड़ी से जा मिलते।
आदमी अपना ही गद्दार हो जाता है,
सूरज पिघल जाता है
अपनी ही गरमी से।

सफेद खून

मैं जानता हूं
मखमली दस्तानेवाले
तुम्हारे हाथों में छाले नहीं आएंगे
वे थककर, कांपकर, रक्तहीन होकर
रुक भी नहीं सकते—
मैं इसे जानता हूं,
मैं जानता हूं, वे रुक नहीं सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि मेज़ के नीचे से, परदे के पीछे से
उन्हें कई दूसरे हाथों का सहयोग है;
पर जो तुम नहीं जानते
वह केवल यह है कि
तुम्हारी रक्तरंजित चक्की
मुझे पीसते-पीसते
एक दिन एकाएक मेरी हड्डियों से टकराएगी,
और फिर
जिस तरह हलवा खाते हुए
किसी बूढ़े का आखिरी दांत
टूटता है—
उसी तरह तुम्हारी चक्की भी
टुकड़ों में छितर जाएगी।
तुम्हें तो नहीं पर लोगों को हैरानी होगी
पत्थर की धमनियों से बहते खून को देखकर।

रिस रहा समय

रिसती अंजलि से
स्याही टपकाती
सुबह दौड़ गई।

सूरज का लेप लिये अपने चेहरे पर
मैं और तुम दौड़ जाते हैं क्षितिज को, जहां
इन्द्रधनुष कुकुरमुत्ते की तरह उग आते हैं।
कट गए गन्ने के खेतों में
बिखरे मिल जाते हैं समय के पंजर,
मूल्यों को बिखेरा जा रहा नये अंकुरों के लिए,
बीच-बीच में उग आयी नागफनियों से
ढांप जाता है मेरे-तेरे हिस्से के पौधे,
उसके उफन आए खेतों में
छिद्रों भरे दिवस-से मेरे-तेरे दिन
रिसकर उसके हो जाते हैं
और पैबन्द पर पैबन्द लगाती हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी पीढ़ी पुरानी होती चली जा रही,
समय ठोप-ठोप रिस रहा समय से,
पत्थर के नीचे से मिला सोना
वन्द होता रहा उसी रिसे हुए समय की मुट्ठी में
जो न मेरी है, न तेरी है।
यह पीढ़ी जो नकार रही
वही चीज़ रह जाती है अपनी—
उलझी हुई सेंहुड़ के कांटों में।

२३ नवम्बर दोपहर

मैं ईख के खेतों का मज़दूर हूं,
जब पांच गाड़ियां गन्ने काट-लाद लेता हूं
और बिखर जाते हैं जब तीन-चार गन्ने
तो मालिक आंखें तरेरकर कहता है—
गधे की औलाद !

मैं मालिक के घर का रखवार हूं,
जब दिन-रात
उसकी ज़मीन-जायदाद की रखवाली करता हुआ,
एक दिन बीमार पड़कर
दूसरे दिन सेवा में पहुंचता हूं
तो मालिक चेहरा लाल करके कहता है—
कुत्ते की औलाद !

मैं मालिक का व्यक्तिगत विशेष नौकर हूं,
जब हर पल उसके आगे-पीछे रहकर
उसके लिए सुन्दर जांघों की व्यवस्था करने के बाद
एक दिन उसके जूठे गिलास से पीता हुआ
पकड़ लिया जाता हूं
तो मालिक गरजकर कहता है—
सांप की औलाद !

मैं मालिक का हिसाब-किताब रखनेवाला हूं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब उसके बही-खाते से विवृत
उसके इन्कम-टैक्स को सात गुना कम करके
उससे मांग करता हूं
अपनी तनख्वाह में दो रुपये की वृद्धि,
तो मालिक दांतों को किटकिटाकर कहता है—
सूअर की औलाद !

इसलिए हे भगवान,
अगली बार जब तुम मुझे जनम देना
तो मुझको बनाकर भेजना
आदमी की औलाद···

२६ नवम्बर भिनसार

तुम सैलानियों को मत कोसना
कि उन्होंने तुम्हारे देश की
सभी बेहतरीन चीज़ों को तुमसे ले लिया,
अब तुम्हारे बेटे को
यौन रोग नहीं होगा—
वेश्याएं अब उसके साथ सोएंगी,
तुम अपनी किस्मत को सराहो !
हां, अगर तुम्हारा बेटा
तुमसे पूछ बैठे—
पापा ! लाब्स्टर क्या होता है ?
तो तुम उसे लाब्स्टर और झींगे की
सैलानी मेनू पर अंकित
रंग-बिरंगी तस्वीरें दिखा देना,
फिर जब उसकी जीभ लपलपाने लगे
तो फिर उसे रोड्रिग से पहुंची
सूखी मछली के साथ
चीन से दान में मिले चावल परोस देना,
और जब दीवारों के फिल्मी पोस्टरों से
उत्तेजित वह जिद करे वेश्या के लिए
तो तुम गोपालन अहीर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेमिया-ग्रस्त बेटी को
उसके सामने ला खड़ा कर देना,
उससे कहना कि
उसकी गाय अब दूध नहीं देती,
क्योंकि बड़े-बड़े रहमदिल देशों से
डिब्बे का दूध बहुत आ जाता है।
अपनी गाय का खून गोपालन अहीर
पिला गया सैलानियों को,
अतिथि-सत्कार उसका धर्म था—
धर्म की लाज रख ली उसने,
लाज लेकर
सैलानी दे गये विदेशी मुद्राएं—
तुम सैलानियों को मत कोसना !

३० नवम्बर सुबह

मेरी मां ने मुझसे पूछा था—
तुम मेरी मौत पर उतने आंसू बहा सकते हो,
जितना मैंने तुम्हें दूध पिलाया ?
न बहा सका,
जिन्दगी भर नाकाम बेटा रहा।

मेरे गुरु ने मुझसे पूछा था—
मेरे लिए एकलव्य का अंगूठा ला सकते हो
तुम गुरु दक्षिणा में ?
न ला सका,
जिन्दगी भर नाकाम शिष्य रहा।

मेरी प्रेयसी ने मुझसे पूछा था—
तुम मेरे लिए मेरी साल गिरह पर
तोड़ ला सकते हो एक सितारा ?
न तोड़ सका,
जिन्दगी भर नाकाम प्रेमी रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे वतन ने मुझसे पूछा था—
तुम रेत के फूलों की माला गूंथकर
पहना सकते हो, चुनाव जीत गये नेता को ?
न पहना सका,
जिन्दगी भर नाकाम नागरिक रहा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्मरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविस्मरणीय

किसी को 'नहीं' कहने की शक्ति मुझमें हमेशा कम रही है, इसलिए वचन देना मेरे स्वभाव के तहत आ जाता है, लेकिन वचन का निर्वाह मेरे लिए हमेशा टेढ़ी खीर रहा है। और जब निर्वाह हो जाता है तो खुद को हैरानी होती है। उसी एक हैरानी को यहां प्रस्तुत कर रहा हूं। 'सारिका' के कभी कन्हैयालाल नन्दन सम्पादक थे। उन्होंने अपनी कहानियों की पत्रिका के लिए मुझसे संस्मरण भेजने की मांग की। यों तो आदेश और अनुरोध पर लिखना मुझे बड़ा कठिन लगता रहा है, पर नन्दन दोस्त थे, इसलिए उन्हें वचन दे ही डाला। एक संस्मरण छप पाया और दूसरे को पूरा करने में मुझे ग्यारह महीने लग गये, तब तक नन्दन 'सारिका' को तलाक दे चुके थे। जब संस्मरण के सारिका में छपने की सम्भावना नहीं रही तो पता नहीं अपने भीतर कौन-सी रौ पैदा हुई कि एक ही लगे कई संस्मरण लिख डाले। यह पहला अवसर था, जब किसी सम्पादक मित्र को दिये वचन का निर्वाह हो सका। यों तो संस्मरण बड़े और स्थापित लेखकों के हुआ करते हैं। खैर, इसी बहाने सही, कम-से-कम संस्मरण के बाद मैं भी बड़ा लेखक तो करार लिया जाऊं। यूं तो अपने सभी संस्मरणों का एक पौधा ही तैयार कर जाने की इच्छा है, पर उससे पहले आप बुद्धिजीवी के सामने नमूना तो पेश कर दूं। आज बिन नमूना देखे कौन बाजार से माल उठाता है। कम-से-कम संस्मरण तो एक ऐसी विधा है, जहां आप को मेरी ईमानदारी का विश्वास हो जाए। कहानी-कविता में ईमानदारी बरतकर तो कहीं का नहीं रहा। न मेरी कोई कहानी कोई पुरस्कार ला सकी और न कोई कविता। खैर, संस्मरण क्या पुरस्कार लायेगा—बस, ईमानदारी का ठप्पा तो मेरे ऊपर लगा दे। अगर ईमानदार सिद्ध हो गया तो फिर साहित्यकार होने में देर ही कितनी लगेगी। संस्मरण से पहले आपको अपनी ईमानदारी का एक नमूना पेश कर दूं—एक बार किसी ने कह दिया था कि अभिमन्यु अनत हरामजादा इधर-उधर से चुराकर लिखता है, और मैं बुरा मान गया था। जबकि बात सौ पैसे सही न भी हो तो भी लेखन की शुरुआत में मैंने फ्रेंच लेखक वेरकोर की कहानी 'सिलांस दे ला मेर' पढ़ी और उससे मिलती-जुलती एक कहानी लिख डाली—'पहाड़ी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खामोशी, तूफानी कोलाहल'। यही नहीं, यह पुस्तक जो आपके हाथ में है, यह भी नॉर्मन मैलर को पढ़ने के बाद ही तैयार की है—अतीत की धुंधली कंदरा से कुछ संस्मरण निकाल लाया हूं। चूंकि ये तहखाने से आये हैं, इसलिए धूल-मैल को पोंछ लेना आपका काम हो जाता है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१
प्रधान मन्त्री का वह उत्तर

यूं तो मॉरिशस के स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी और प्रथम प्रधानमन्त्री शिवसागर रामगुलाम हमारे फ़ैमिली डॉक्टर रह चुके थे, इस नाते हमारे घर से उनका एक आत्मीय सम्बन्ध तो था ही ! हमारे घर का सांस्कृतिक माहौल जहां पं० वसुदेव विष्णुदयाल से प्रभावित था, वहां राजनीतिक झुकाव डॉ० रामगुलाम की ओर था।

लेखक की हैसियत से मेरा अपना राजनीतिक रुझान व्यवस्था के साथ नहीं हो सकता था, इसलिए डॉ० रामगुलाम के प्रति आदर के उपरान्त भी मैं हमेशा अपने को सत्ता के साथ न जोड़कर समाज के साथ जोड़े रखने की कोशिश करता। इस प्रक्रिया के दौरान मुझे जन-जीवन के हित में जब भी देश के प्रधानमन्त्री और उसकी व्यवस्था के खिलाफ बोलना पड़ा, मैं खतरों की परवाह किये बिना बोलता रहा।

एक दिन आंस-ला-रे के सुहाने समुद्र-तट पर तीन दिनों के राइटर्ज़ वर्कशॉप के उद्घाटन समारोह के दौरान स्वागत भाषण के लिए मुझे खड़ा होना पड़ा था। मैंने इन शब्दों से अपनी तकरीर शुरू की थी कि हिन्दी-उर्दू लेखकों की उस शिल्पशाला में हमें न तो भारत सरकार का सहयोग मिल पाया था और न ही मॉरिशस सरकार की ओर से कोई विशेष मदद मिली थी। जिस फ्रांसीसी तंत्र के साथ हमारा सांस्कृतिक संघर्ष था, अगर वह नहीं होता तो देश के पचहत्तर लेखकों के बीच की वह शिल्पशाला सम्भव नहीं हो पाती। फ्रेंच एजेन्सी…ए० सी० सी० टी० और यूनेस्को के सहयोग से ही हम भारत से राजेन्द्र यादव, डॉ० विनय और मजरूह सुल्तानपुरी को उस आयोजन के लिए बुला पाये थे। उन्हीं दोनों संस्थाओं ने आयोजन का सभी खर्च भी वहन किया था।

मेरी बातों से घायल होकर प्रधानमन्त्री ने उत्तर में कहा था कि अभिमन्यु तो हमेशा की तरह उस वक्त भी शिकायत ही शिकायत की रौ में था। कुछ दिन पहले बम्बई की अंग्रेजी पत्रिका 'कॉमर्स' के सम्पादक के अनुरोध पर मैंने 'मॉरिशस में हिन्दी के लिए संघर्ष' विषय पर एक लेख लिखा था, जिससे यहां के माध्यमिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कूल के कुछ हिन्दी अध्यापक मेरे खिलाफ जेहाद छेड़े हुए थे। मेरा यह कह जाना उन्हें पच नहीं पाया था कि हिन्दी की दयनीय स्थिति का एक कारण उनकी गैर-जिम्मेदारी और अयोग्यता थी। प्रधानमन्त्री को मेरे खिलाफ बोलते पाकर उनकी पुरानी प्रतिशोध की भावना बढ़ आयी। उद्घाटन समारोह के बाद चाय-पानी के वक्त चार अध्यापक उनके साथ चिपक गये और पन्द्रह-बीस मिनट तक उनको मेरी अयोग्यता और मेरे लेखों तथा अन्य रचनाओं के सरकार विरोधी तत्त्वों की सूचना देते रहे।

मैं राजेन्द्र यादव और भारतीय उच्चायुक्त से बातें कर रहा था, जब प्रधान-मन्त्री ने किसी को भेजकर मुझे अपने पास बुलवाया। अपने को घेरे हुए चारों विद्वानों को लक्ष्य करके उन्होंने कहा, "इनकी शिकायत है कि तुम हमारे खिलाफ ज्यादा लिख रहे हो?"

मेरे मुंह से निकल पड़ा, "शिकार ही करना है तो चूहे और नेवले का क्यों किया जाए!"

मेरे इस उत्तर पर डॉ० रामगुलाम के ठहाके से वातावरण गूंज उठा। सभी लोग हमारी ओर ताकने लगे। मेरे चारों विद्वान मित्रों के चेहरे की रंगत जाती रही। तभी डॉक्टर रामगुलाम ने उन चारों में से दो के कन्धों पर अपनी बांहें डाल-कर उन्हें आश्वस्त किया, "तुम लोग चिन्ता मत करो! अभिमन्यु अनत के पूरे परिवार को तो मैं मुद्दत से जानता हूं। यह तो मेरे और सरकार के खिलाफ जो कुछ लिखता है, वह तो एक चौथाई ही होता है। इसके साथ पाबन्दी करेंगे या रोकने की कोशिश करेंगे तो यह हमारे खिलाफ चार पर चार लिखेगा।"

यह संस्मरण यहां इसलिए देना पड़ा कि मुझे बहुत बेबाक जाननेवाले यह जान लें कि मैं अपने इर्द-गिर्द की सच्चाई को सम्पूर्ण रूप से कभी नहीं दे पाया। लेखक के इस अधूरेपन का एहसास ही मुझे लिखते रहने को विवश करता है।

डॉ० रामगुलाम की उस बात में मेरे उन मित्रों ने, मेरे प्रति प्रशंसा का कसैलापन महसूसा था, लेकिन मैं आज भी मानता हूं कि उस बात से डॉ० रामगुलाम ने अनचाहे मेरे बौनेपन की ओर संकेत किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

आज भी शूद्र हूं

गुरु ने जनेऊ की रस्मों के दौरान मेरे कानों में ज्ञान का महामन्त्र फूंका था, उससे तो मैं कोई ज्ञानार्जन कर ही नहीं पाया था। नौ-दस वर्ष का रहा होऊंगा। न मन्त्र समझ में आये थे और न माड़ों का चक्कर काटकर काशी से क्षण भर में पढ़ आने की वह प्रक्रिया मेरी समझ में आयी थी। लेकिन गुरु शंकरनाथ चौबे के मन्त्र नहीं सही, गुरु के घर पर एक दिन मुझे एक बहुत बड़ी सीख मिली थी।

बहुत ही सुन्दर थी मेरी गुरु-बहन! मेरे शिक्षा पाने के कोई तीन-चार महीने बाद ही गुरु की उस सुन्दर बेटी मानता देवी का व्याह था। तब व्याह रात में हुआ करते थे और सप्ताह के किसी भी दिन लगन के आधार पर हुआ करते थे। आज तो वह पण्डितों की सहूलियत के लिए केवल दिन में और वह भी रविवार को ही होता है। रात में कभी मुहूर्त अच्छा हो पाता ही नहीं और रविवार के अलावा कोई भी दूसरा दिन 'लगन' का दिन होता ही नहीं! खैर···मुझे तो अपनी उस दिन की ज्ञान-प्राप्ति की बात आपको बतानी है।

मानता के विवाह का आयोजन बड़ा ही भव्य था। अपनी उस दस वर्ष की उम्र में पहली बार मैंने व्याह के लिए उतनी शानदार तैयारियां देखी थीं। पंडाल से सटकर एक अलग छावनी तैयार की गयी थी, जिसमें शाम के पांच ही बजे से निमन्त्रित लोगों को भोजन के लिए बैठाना शुरू हुआ था। छह-सात मित्रों की जो हमारी टोली थी, उसका मुखिया था विद्यानन्द। छह बजे से गानों की महफिल शुरू होनेवाली थी, इसलिए विद्यानन्द का यह सुझाव था कि हम पहले बैठाये जानेवालों के साथ ही खाना खा लें। जवाहर हमें पहले ही बता चुका था कि सात तरह की तरकारियां पकी हैं। ऊपर से इमली का टक्कर और अमड़ा का अचार भी था। मुंह में उसी वक्त पानी आ गया था। इन सभी ने विद्यानन्द की बात मान ली। दो व्यक्ति पंडाल से लोगों को चुन-चुनकर छावनी में भोजन पर बैठाने के लिए उठा रहे थे। हम सातों व्यक्ति बिन उठाये खुद उठकर छावनी में पहुंच गये। एक बार में कोई तीस-पैंतीस व्यक्तियों को बैठाने की व्यवस्था थी। हम सभी पहले से चटाई पर बैठे बीस-पच्चीस जनों के बीच जा बैठे। सोनित का बाप हम सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सामने केले के पत्ते और लोटे रख गया। एक मोटा-सा आदमी आया और मुझे तथा सुनुआ को उसने बांह पकड़कर उठा दिया। बोला कि हम लोगों की बारी आएगी, तब हम लोग खाएंगे! विद्यानन्द और जवाहर ने कहना चाहा कि हमें खा लेने दिया जाए, पर उस मोटे आदमी ने किसी का कुछ नहीं सुना। उसने कहा, "यह ब्राह्मणों के खाने की बारी है!"

बाहर आकर मैं सोचता रहा कि हमारे वे बाकी पांच दोस्त कैसे ब्राह्मण समझ लिये गये और हम दोनों क्यों नहीं समझे गये थे? मेरा ध्यान पहले सुनुआ के कपड़ों पर गया फिर अपने कपड़ों पर। हम दोनों के शरीर पर ऐसे कपड़े नहीं थे, जिनसे हम ब्राह्मण समझे जा सकते।

कोई घंटे भर बाद जब तीसरी टोली बैठी तो हम और सुनुआ जा बैठे। इस बार भी उस मोटे आदमी ने यह कहकर उठा दिया कि क्षत्रियों को हमसे पहले खाना है। मैंने कहा, "मैं पर्तिसिंह का बेटा हूं—क्षत्रिय हूं!"

मगर वह आदमी हमारी बांहें पकड़े हमें बाहर करके ही रहा।

क्षत्रियों के बाद वैश्यों को चुन-चुनकर बैठाया गया। फिर कोई दो घण्टे बाद जब बचे-खुचे लोगों की बारी आयी तो हम पहुंचे, उस मोटे आदमी ने हमें देखते ही कहा, "हां, अब बैठो! और भर पेट खाना खाओ!"

उस दिन अपने गुरु द्वारा अपने कानों में पढ़े गये मन्त्रों का सही ज्ञान अपने उस गुरु के द्वार पर ही पा सका। और वह यह था—कि फटे-पुराने कपड़े पहने गरीब को ब्राह्मण या क्षत्रिय होने का अधिकार नहीं होता!

कई वर्षों बाद, जब मैं महात्मा गांधी संस्थान में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर था, तो संस्थान के निदेशक ने एक दिन मुझे अपने दफ्तर में बुलाकर कहा, "सभी हेड ऑफ द डिपार्टमेंट्स कोट और टाई में होते हैं, तुम्हें भी ढंग के कपड़ों में होना चाहिए!"

मैंने मुस्कराकर कहा था,

"गांधी जी की दुनिया में तो शूद्रों को भी जगह नसीब है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३
ईंट की रोटी

आप भूख से तड़प रहे हों। रोटी की तलाश में गांव-बस्ती-शहर छान चुकने के बाद आंतों से आंतों के चिपक जाने की यातना को भुगतते हुए, अचानक आप को कोई ऐसा आदमी मिल जाए जो आपके हाथों में ईंट की एक रोटी रख दे। उस भूख की छटपटाहट में आप उसे सचमुच की रोटी समझकर जल्दी से मुंह तक पहुंचा लें, और तब उस आदमी का ठहाका गूंज उठे।

कुछ लोग इस तरह के मजाक तक कर जाने की हिम्मत रखते हैं। मैं अपने घर के सभी सदस्यों की भूख को अपने में लिये नौकरी तलाशता रह गया था। द्वीप के इस छोर से उस छोर तक लोगों से यह रिआयत मांगता फिरता था कि मुझे नौकरी करके अपने परिवार का पेट भरने का अवसर दे दिया जाए। तीन महीने पहले बस-कंडक्टर की जो नौकरी हासिल कर सका था, उसे एक भिखारी को दस सेंट कम का टिकट काटने के कारण गंवा बैठा था। सिर पर सब्जियों की टोकरी लिये पूरे गांव की खाक भी छान मारी थी। अपने बल-बूते पर कई तरह के छोटे-मोटे काम शुरू करके भी दो पैसे कमा पाने में असफल, इधर-से-उधर भटक रहा था कि गांव के परशतमवा नामक व्यक्ति ने कालीमाई के सामने रोककर कहा था—
"सुना है, तुम नौकरी के लिए मारे-मारे फिर रहे हो···अरे मुझसे कहा होता !"

"आप मुझे नौकरी दिला सकते हैं ?"

"मैं तुम्हें नौकरी दे सकता हूं, इसी वक्त ! क्यों दर्शन भैया, इसको हम वह नौकरी दे दें ?"

उसी गम्भीरता के साथ वह दर्शनवा नाम का मोटे पेटवाला अपने जनाने अंदाज में कह गया—

"अरे हां, यह तो होशियार लड़का है, कर सकता है···दे दो !"

जिस इमारत में हम लोगों की कभी सिगरेट की छोटी-सी दूकान थी, उसके दूसरे भाग में हबीब नाई की दूकान थी। राजकपूर, दिलीप कुमार को लेकर खड़े हो आए हंगामें के कारण वह अपनी दूकान छोड़ गया था। इधर दो-तीन सप्ताह से वह कमरा खाली पड़ा था। परशतमवा मेरे कंधे पर हाथ रखे, मुझे उस इमारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक ले गया। उसके मालिक से कहा, "चिंगरू बहनोई, ले आओ इसकी चाबी !"

उस कमरे को खोला गया। परशतमवा अपनी उसी गम्भीरता के साथ बोलता गया, "शहर में मजदूरों के यूनियन का जो दफ्तर है, उसकी एक शाखा मैं और दर्शन भैया मिलकर यहां खोलने जा रहे हैं। इसकी जिम्मेवारी हम तुम्हीं को सौंपना चाहते हैं। एक-दो सप्ताह के भीतर यहां टाइपिस्ट भी आ जाएगी—फोन भी लग जाएगा। और खैर, तुम सम्भाल सकोगे···कर सकोगे यह काम ?"

"मुझे जो कुछ करना होगा, बस आप लोग एक बार बता देंगे फिर तो मैं कर लूंगा !"

"सबसे पहले यहां पर एक मेज-कुर्सी की जरूरत पड़ेगी। उधर से सारे सामान के आने में दो-तीन सप्ताह तो लग ही जाएंगे ! हम चाहते हैं कि दफ्तर का काम आज ही से शुरू हो जाए। आज मंगल का दिन है, पहली तारीख भी है।"

मैं दौड़ गया था अपने घर को। अपनी बहन से इतना बोलकर कि मुझे नौकरी मिल गयी है, मैं घर की पुरानी मेज को सिर पर उठाये चला आया था। दूसरी बार मैं कुर्सी भी उठा लाया।

परशतमवा ने कहा, "पर देखो, शुरू-शुरू में हम तुम्हें सौ रुपये से ज्यादा नहीं दे पाएंगे। तीन-चार महीने बाद हम तुम्हारी तनख्वाह बढ़ाएंगे। मंजूर है ?"

मन मांगी मुराद के लिए 'नहीं' कैसे कहता ! मैं तो पच्चीस-पचास की नौकरी के लिए फिर रहा था। सौ की बात तो मैंने कभी सोची ही नहीं थी !

मैं तो मन-ही-मन खुशी से मरा जा रहा था।

"कल तुम्हें कागज-कलम सभी कुछ मिल जाएंगे।"

कोई आध घंटे तक दर्शनवा की गवाही में परशतमवा अपनी सभी योजनाओं के बारे में बोलता रहा, और दोनों जब मुझे कुर्सी पर बैठाकर बाहर हुए तो सन्नाटा परशतमवा के ठहाके से झनझना उठा।

मैं सपने बुनता रहा। सोचा—भगवान ज़ब देता है तो छप्पर फाड़कर देता है ! कहां मैं गली-गली नौकरी के लिए भटक रहा था और कहां ओरियानी में ही नौकरी थी मेरे लिए !···

कोई पांच-दस मिनट बाद करीम मामू मेरे पास पहुंचकर बोला—

"सलाम साहब ! यह तो बहुत अच्छी नौकरी मिल गयी तुम्हें।···"

"परशतम और दर्शन भैया की कृपा है, मामू !"

"तुम पढ़े-लिखे होकर भी मूर्ख हो ! पति बहनोई का बेटा इतना बुद्धू ? अरे, तुम्हें परशतमवा और दर्शनवा ने बेवकूफ बनाया है। यहां कोई दफ्तर-अफ़्तर खुलने को नहीं !"

मैं स्तब्ध रह गया।

"लेकिन मामू, यह कमरा तो चिंगरू···"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह कमरा चिंगरू से किराये पर इसलिए लिया गया है, ताकि परशतमवा अपने तम्बाकू के पत्ते यहां सुखा सके।"

मैं अपने हाथ की ईंट की रोटी को हाथों में जकड़े रहा। सोचा—इस मजाक से परशतमवा और दर्शनवा को क्या मिला होगा ?…

खैर, उन्हें कितना आनन्द मिला होगा—कह नहीं सकता, लेकिन मुझे उससे कुछ-न-कुछ जरूर मिला था !

उसी परशतमवा को जिस दिन अपने बेटे को हिन्दी अध्यापक की नौकरी दिलाने के लिए मेरे सहयोग की आवश्यकता पड़ी थी, उस दिन मैंने उसकी ख्वाहिश पूरी हो जाने के बाद केवल इतना कहा था—

"यह लम्बे जीवन भर की नौकरी होगी, केवल घंटे भर की नहीं !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४

मैं जब 'चरित्रहीन' पढ़ रहा था

वर्तमान अतीत को मारकर जीता है और भविष्य के लिए वर्तमान की मृत्यु जरूरी होती है। उन दिनों मैं ऐसा ही सोचने को विवश था। मैं सोलह पार कर चुका था। घर में अभाव और मोहताजी इस कदर बढ़ आये थे कि मेरी मां मुझे पढ़ा-लिखाकर कुछ बनाने के अपने प्रण को भी तिलांजलि दे देने को विवश हो चली थी। आस-पास के सारे जंगलों के खेतों में परिवर्तित हो जाने के बाद गाय पालकर परिवार का पालन-पोषण एकदम कठिन हो चला था। ऊपर से कर्जा···गुलामी ! मेरा बाप भी चारपाई पर बीमार पड़ा हुआ था।

रात देर तक यह सोचते रह जाने में कि मैं किस तरह घर के छह सदस्यों का पेट पालने में मां की मदद कर सकता था, सुबह जब सूरज के उग आने तक भी खाट पर पड़ा रहता तो मां मेरे ऊपर बरस पड़ती थी—

"जांगरचोर अभी तक सो रहा है ! मैं कब तक तुम्हारी उम्र के लड़के के लिए खुरी घांसती रहूंगी।"

वह पास-पड़ोस के मेरी उम्र के लड़कों के नाम गिनती हुई कहती जाती— "तुमसे छोटे हैं ये लोग ! कमा रहे हैं। तुम कब तक घर में महाराजा बने बैठे रहोगे ?"

घर की गरीबी और मेरी परित्यक्ता बहन, उसका बच्चा और मेरे छोटे भाई की दयनीयता को देखकर मां मेरे प्रति उतनी कड़वी हो जाती थी। छह महीने से मैं लगातार इन उलाहनों को सुनता आ रहा था, और उन्हें भी पचा लेता रूखे-सूखे भोजन के साथ। शाम को भी मां की खीझ ! रूखा-सूखा खाने से पहले भी अपनी बेकारी के लिए मैं कोसा जाता। मां को हक था कोसने का। आधा पेट खाने वाली एक गाय और दो-तीन बकरियों के बल पर वह कब तक मुझे घर पर बैठाये खिलाती रह सकती थी ! और फिर मैं अकेला मुंह थोड़े ही था !

उस वर्तमान से मैं अकुला उठा था। वह जब तक रहता, मेरा कोई भविष्य नहीं हो सकता था; पर उस वर्तमान को मार सकना भी तो उतना आसान नहीं था ! मैं उसे गिजता रह जाता। साधन के अभाव में मेरी पढ़ाई अधूरी थी। अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमजोर शरीर से बगन कोठी के गन्ने के खेतों में जो काम शुरू किया था, उसे तो कुछ दिन पहले ही छोड़ दिया था, कोठी के मालिक की उस गाली के उत्तर में उस पर गंड़सा चला देने के बाद।

मेरे कई मित्र अच्छे खाते-पहनते दिखते थे। मैं भी उनकी तरह होना चाहता था। कोशिशों से चूकता नहीं था। उस दोपहर को मैं अपनी मां और बहन से तीन बार खाना मांगकर भी पेट को भारत बाबू के 'चरित्रहीन' से दबाये रह गया था। भूख को भुला देने के लिए मैंने फिर से उपन्यास में अपने को डुबो दिया। मेरी बहन न जाने कब मेरी बगल में खाना रखकर चली गयी थी।

कुछ देर बाद जब मेरी मां ने थाली को उसी तरह पड़े पाया और मुझे पुस्तक में डूबा हुआ देखा तो बोल उठी—

"दाल और सहजन की भुंजड़ी है! अब और कौन तरकारी लाऊं तुम्हारे लिए?"

मां की उस बात में कोई ऐसा चोट पहुंचा जाने वाला भाव तो था नहीं, फिर भी न जाने क्यों, मेरी आंखों से टप्-टप् कई बूंदें पुस्तक के पन्ने पर टपक पड़ी थीं।

उधर दूसरे कमरे से मां की वह कोसाई जारी थी—

"न काम न धंधा, पढ़वा बना बैठा है!···वाल्मीकि बनकर दिखाना है न!"

मेरे आंसू फिर बह आये थे। वे सावित्री की व्यथा पर नहीं बहे थे। मैंने पुस्तक बन्द करके उन आंसुओं को पन्नों के बीच संजो लिया।

पुस्तक जिस पुस्तकालय से ली गयी थी, वहीं लौटा दी गयी; लेकिन वे आंसू जहां से टपके थे, वहां नहीं लौटाये जा सके!

उस मानसिक यातना के कई वर्ष बाद शहर की उस इंस्टीट्यूट-लाइब्रेरी में जाने का अवसर मिला। वहां हिन्दी की इनी-गिनी पुस्तकों के बीच 'चरित्रहीन' की वह प्रति महीनों से अनपढ़ी रखी हुई थी। मैंने पन्ने उलटे और वर्षों पहले उसके भीतर टपक आये मेरे आंसू के पीले दाग, बेकारी की उन यातनाओं को संजोये हुए थे। मन में आया था, उस पुस्तक को चुरा लूं! फिर उसे छोड़ दिया, संस्थान की सम्पति के रूप में।

वर्तमान की हत्या करके मैंने उसकी लाश पर आंसू बहाये थे, उस भविष्य के लिए जो आज मेरा वर्तमान है, जो कल मेरा अतीत नहीं होगा—मेरा वर्तमान ही रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५
हिन्दी जगत का वह पहला उपहार

रूसी कहावत है कि जो कलम से लिखा गया है, वह कुल्हाड़ी से नहीं काटा जा सकता ! लेकिन यह बात कहने वाले को शायद यह मालूम नहीं कि हिन्दी जगत में ईर्ष्या की धार इतनी पैनी होती है कि जिसे कुल्हाड़ी नहीं काट सकती, उसे वह काट जाती है।

उन दिनों मैं अध्यापक था। लिख लेता था और भारत की पत्र-पत्रिकाओं में छप जाता था, जिसके कारण मैं बड़ा ही विवादास्पद चरित्र था। हिन्दी वाले यह मानने को तैयार नहीं थे कि वे चीज़ें मेरी ही लिखी हुई होती थीं। अगर मैं किसी की हत्या कर देता या किसी बैंक में दिन-दहाड़े डाका डाल आता, तो भी लोग मेरे खिलाफ उतना कुछ नहीं बोलते ! लगा था कि साहित्य-सृजन बहुत बड़ा अपराध और बहुत बड़ा पाप था। मगर मैं उसे करता रहा।

मेरी पहली पुस्तक 'और नदी बहती रही' राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित होकर आयी थी। भारत से प्रकाशित होने वाला वह मॉरिशस का पहला उपन्यास था। इसकी चर्चा गैर-हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में हुई और शाम को मेरे दो मित्र जो गांव के ही एक दूसरे स्कूल में काम करते थे, मेरे घर आ गये। अंग्रेजी-फ्रेंच के उन दोनों शिक्षकों ने मुझे बधाई दी, फिर उपन्यास पर हम तीनों की लम्बी चर्चा हुई। दोनों ने चाहा कि मैं उनको पुस्तक की तीस प्रतियां सौंप दूं, ताकि वे उन्हें अपने स्कूल के अध्यापकों के बीच बेच सकें।

मैंने उन्हें तीस पुस्तकें, पन्द्रह-पन्द्रह की गठरियों में बांधकर थमा दीं।

दूसरे ही दिन स्कूल के बाद वे फिर घर पहुंच आये। मैं उस दिन स्कूल नहीं गया था। सुबह से हल्के बुखार में अपना नया उपन्यास पूरा करने में लगा हुआ था। उनका उस तरह टपक पड़ना मुझे थोड़ा-सा खटका जरूर, लेकिन एक दिन पहले जो लोग उतनी आत्मीयता के साथ बधाई देने पहुंचे थे, उनके लिए उठना ही पड़ा। हम लोग घर के भीतर नहीं बैठे, आंगन में आम का जो पुराना पेड़ था, उसी के नीचे चले गये। तब आम के पेड़ से सटकर आज वाली दीवार नहीं थी। उसकी बगल में दो बड़े-बड़े पत्थर थे, कमर तक ऊंचे। हम तीनों उन्हीं पर बैठ गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठते ही आनंद ने चार रुपये के हिसाब से तीस पुस्तकों के एक सौ बीस रुपये मेरे हाथों पर रख दिये। उनके इतने जल्दी पुस्तकें बेचकर पैसे ला देने पर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ। लगा कि हिन्दी की अब कदर होने लगी थी, कि तभी आनन्द ने कहा—

"अभि ! तुम जानते हो, हमारे स्कूल में तीस अध्यापक हैं, जिसमें हिन्दी पढ़ाने वाले भी हैं···"

"जानता हूं।"

"एक बात नहीं जानते ?"

"बताओ !"

"हमारे स्कूल के अंग्रेजी-फ्रेंच पढ़ाने वाले हर एक अध्यापक ने तुम्हारी पुस्तक खरीदी।"

"तुम लोग पीछे पड़ गये होगे !"

"नहीं, सभी ने खुशी से खरीदी ! उनके अलावा स्कूल के तीनों चपरासियों ने भी एक-एक प्रति ली। हमारे यहां की अंग्रेजी-फ्रेंच पढ़ाने वाली एक चीनी अध्यापिका ने तो आठ रुपये देकर दो पुस्तकें ले लीं—उसकी एक सहेली है हिन्दी जानने वाली, एक उसके लिए। और एक अपने लिए हमारे यह कहने पर कि वह खुद तो हिन्दी नहीं जानती, तो फिर अपने लिए भी एक प्रति क्यों ली ? उसने कहा कि मॉरिशस का साहित्य है, अपने संग्रह में काम तो आएगा !"

यह कहकर आनन्द ने 'और नदी बहती रही' की एक प्रति मेरे सामने कर दी थी—

"हमारे लिए बाद में करना। यह उसी चीनी लड़की की प्रति है—उसने इस पर तुम्हारे हस्ताक्षर की मांग की है, हिन्दी-अंग्रेज़ी दोनों में !"

मेरे हस्ताक्षर के बाद मेरे उस दूसरे साथी ने कहा—

"अब एक बात कहनी है, जिससे शायद तुम्हें दुख हो ! हमारी पाठशाला के चारों हिन्दी अध्यापकों में से किसी एक ने भी तुम्हारी पुस्तक नहीं खरीदी। चारों ने पुस्तक देखते ही नाक सिकोड़ ली थी।"

और वह थी मेरे हिन्दी लेखक होने की पहली पीड़ा !

वह आखिरी नहीं थी।

मैं भी गांव के ही महेश्वरनाथ स्कूल में काम करता था। दो मंजिला भवन था, जिसमें रविवार के दिन गांव की एक हिन्दी संस्था की ओर से छात्रों को माध्यमिक हिन्दी-शिक्षा दी जाती थी। वह सोमवार का दिन था। मैं छठी कक्षा में पढ़ाने पहुंचा। पढ़ाई शुरू करता कि तभी कक्षा की सबसे मेधावी लड़की ने खड़े होकर कहा—

"गुरुजी, आप उस खिड़की के उस पार देखिए न !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्यों, क्या है ?"

"आप देखिये न !"

मैंने खिड़की के पास पहुंचकर बाहर की ओर देखा—किसी हिन्दी पत्रिका के बेशुमार छोटे-छोटे टुकड़े ज़मीन पर, रात की झीसी की वजह से धूल के साथ चिपके हुए पड़े थे। गौर से देखा तो कुछ ही दूरी पर मेरे चित्र के दो टुकड़े भी दिखाई पड़े ···और फिर समझते देर नहीं लगी कि वह 'आजकल' पत्रिका का वह अंक था, जिसमें मेरे उपन्यास 'चौथा प्राणी' की पहली किश्त छपी थी।

मैंने अपनी उस छात्रा से पूछा—

"किसने फाड़ा ?"

"यह पत्रिका मैं अपने यहां से ले आयी थी···बड़े गुरुजी को बताकर बोली थी कि देखिये, इसमें हमारे अनत गुरुजी की कहानी छपी है। बड़े गुरुजी ने वह पत्रिका मेरे हाथ से ले ली थी और यह कहकर उसे टुकड़े-टुकड़े कर दिया था कि छात्रों को केवल अच्छा साहित्य पढ़ना चाहिए !"

'आजकल' के उस अंक में सोहनलाल द्विवेदी के साथ-साथ माइकेल शोलोख़ोव, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', अंचल और सावित्री देवी वर्मा की रचनाएं थीं, जो उस दिन मेरे कारण घटिया साहित्यकार घोषित किये गये।

खैर, कुछ यातनाएं ऐसी भी होती हैं जो बांटी नहीं जाती !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६

कारण प्रमाण-पत्रों के अभाव का

नगीने का न तो मैं कभी मूल्य समझ पाया और न उसके प्रति कभी आकर्षित रहा। एक चीज़ हमेशा मेरे लिए नगीने से भी अधिक आकर्षण की वस्तु रही है—वह है पुस्तक! और जब उसे नगीना समझकर अपनाने की चेष्टा की थी तो आठ-नौ वर्ष का रहा होऊंगा। आज भी उसे नगीना ही समझकर संस्थाओं को बांटता रहता हूं। द्वीप भर की संस्थाओं को हर तीसरे-चौथे महीने पचास-साठ पुस्तकें भेंट करके यही सोचता हूं कि उन लोगों को मैंने पचास-साठ नगीने भेंट किये···लेकिन पुस्तकें बांटने की इस प्रक्रिया में प्रायश्चित्त का बोध भी उतना ही गहरा है। यह नियमित प्रायश्चित्त है, उसी आठ-नौ वर्ष की उम्र में कर गयी एक करनी का।

हमारे घर के पास ही मेरे बाप की एक छोटी-सी सिगरेट की ताबाज़ी थी। बहुत ही कम आमदनी की दूकान थी वह, जिसके बारे में मेरी मां कहती थी—इससे तो घर का आटा भी गीला हो जाता है! वास्तव में आमदनी उतनी बुरी तो नहीं थी, लेकिन मेरे बाप को उधार खानेवालों से उधार के पैसे मांगने में बड़ी झिझक होती थी।

खैर! सड़क के उस पार गुलमोहर के दो पेड़ थे, जिनके नीचे गर्मी के मौसम में लाल पंखुड़ियां घनी बिछी रहती थीं। ऊपर डालियों पर सूरज की किरणों से दीपित पंखुड़ियां अंगारे-सी प्रतीत होती थीं, लेकिन नीचे शीतलता होती थी। वहीं की चट्टानों पर गांव के तीस-चालीस लोग बैठे, मेरे बाप से अखबारों के समाचार सुनते थे।

उस दिन मैं भी वहां था। मेरा बाप जब लोगों के लिए अखबार पढ़ता होता था, तो मैं दूकान की रखवाली करता था। उस समय यातायात का कोई भय तो होता नहीं था, इसलिए मैं कभी सड़क के उस पार होता, कभी इस पार। मेरा बाप लड़ाई की जो खबरें फ्रेंच से पढ़कर भोजपुरी में सुना रहा था, उसके प्रति मेरी भी दिलचस्पी बढ़ आयी थी। मैं भी भूमि पर पसरकर बैठ गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक आदमी सिर पर गठरी लिये बीच में आ खड़ा हुआ था। वह आदमी हर महीने पुस्तकों की अपनी मोटी गठरी के साथ गांव में पहुंचता था। सभी पुस्तकों को अपने साथ की चादर पर बिछा देता था। मेरे बाप की उपस्थिति उस आदमी के लिए बड़े लाभ की होती थी, क्योंकि हिन्दी की उन बिखरी हुई पुस्तकों के बीच से सबसे पहले तो मेरा बाप ही पुस्तकें चुनकर खरीदता था, लेकिन साथ ही देखा-देखी और भी लोग छोटी-मोटी पुस्तकें खरीद ही लेते थे।

उस दिन मेरे बाप ने जो पुस्तक पसंद की, वह किसी इतिहास-प्रेमी द्वारा लिखा हुआ भारत का इतिहास था। पुस्तक मोटी थी और उसका दाम ढाई रुपये था। पुस्तक के पैसे चुकाकर मेरे बाप ने वह पुस्तक मेरे हाथों में थमा दी थी। तब तक और भी कई लोग उन पुस्तकों के चारों ओर आकर इकट्ठे हो गये थे। मेरा बाप कोई दूसरी मोटी-सी पुस्तक देखने में लगा हुआ था। और भी कई लोग अपने-अपने हाथों की छोटी-मोटी पुस्तकों में खोये हुए थे। मैं भी उन पुस्तकों के बीच से बाल-कथाओं की एक छोटी-सी पुस्तक उठाकर उसके भीतर की तस्वीरों को देख रहा था। अपने बाप से मैंने उसे अपने लिए खरीद देने का अनुरोध किया। मेरे बाप ने यह कहकर बात टाल दी कि अगली बार उसे मेरे लिए खरीद देगा।

लोग उस पुस्तक वाले से दाम-दूकानी करते रहे। मैंने अपने हाथ की उस पुस्तिका के पन्नों को उलटते हुए कनखी से चारों ओर देखा और धीरे से उसे इतिहास की उस बड़ी-सी पुस्तक के भीतर रख लिया।

वह व्यक्ति जब अपनी गठरी बांधने लगा तो मैं इतिहास की पुस्तक और उसके भीतर चुराकर रखी हुई बाल-पुस्तिका को दोनों हाथों से दबाये घर को दौड़ गया। मैं बहुत खुश था। वह खुशी चोरी की नहीं थी, एक नगीना पा लेने की थी।

रात के खाने के बाद मेरे बाप की नजर उस पुस्तिका पर पड़ गयी। उसने मेरी कलाई पकड़कर अपने पास खींचा और डांटकर कहा—"तो तुम चुरा लाये इस पुस्तक को!"

मुझे निरुत्तर पाकर मेरे बाप ने मेरे गालों पर दो थप्पड़ जड़ दिये। मुझे चुप कराती हुई मां बोली थी—

"चोरी नहीं करनी चाहिए! पुस्तक चुरानेवाला बच्चा तो परीक्षाओं में असफल रह जाता है।"

शायद यही कारण रहा हो, मेरे पास परीक्षा के प्रमाण-पत्रों के अभाव का! खैर···अभी तो उस एक पुस्तक के बदले न जाने कितनी पुस्तकें भेंट करनी हैं और कितनी लिखनी है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७

जन्म-बधाई

यह तो मुझे याद नहीं कि वह किसके जन्मदिन के अवसर पर मेरे बाप ने हम सभी को खरी-खोटी सुनायी थी; लेकिन किसलिए सुनायी थी, यह मुझे याद है। उस रस्म के दौरान जब हम लोगों ने बर्थ-डे केक पर के जलाये प्रकाश को एक ही फूंक में बुझाकर जन्म-दिन की शुभकामनाएं अर्पित की थीं, तब मेरे बाप ने हम सभी को डांटकर कहा था—

"तुम लोग जन्म-दिन की शुभकामनाएं दे रहे हो या मृत्यु की आकांक्षा व्यक्त कर रहे हो ? हमारे धर्म में दीये जलाकर शुभ की कामना की जाती है, न कि दीये बुझाकर ! दीये बुझाने का मतलब आरम्भ नहीं, अन्त होता है। उजाला नहीं, अंधकार होता है !"

और शायद तभी से हमारे घर में जन्मदिन मनाना बन्द-सा हो चला था। इसके बावजूद अगर हमारे घर में कभी-कभार जन्म-दिन मनाने की नौबत आयी भी तो एक ही व्यक्ति के कारण। और वह व्यक्ति है साहेबा। मैं खुद तो इतना भुलक्कड़ हूं कि अपने घर का फोन नम्बर कई अवसरों पर मुझे मित्रों से पूछना पड़ा है। ऐसी हालत में मुझे अपना जन्मदिन याद रह पाना बड़ा ही कठिन था। और अब अपना ही जन्मदिन याद न रहे, तो फिर घर के दूसरे लोगों का जन्मदिन याद रखना तो और भी कठिन था !

इधर कुछ वर्षों से, जन्मदिन की तिथि याद न रहने पर भी अगर हमारे यहां घर के सभी लोगों के जन्मदिन मना लिये जाते हैं तो केवल इसलिए कि उनकी याद कोई तीन-चार दिन पहले साहेबा के द्वारा दिला दी जाती है। उसे ये तिथियि कैसे मालूम हैं, यह कह पाना बड़ा कठिन है; पर वह अपने पास जो डायरी रखती है, उसमें शायद मेरे परिवार के सभी सदस्यों के जन्मदिन की तारीखें अंकित रहती हैं।

वह पहली हैरानी मुझे उस समय हुई थी, जब एक बार उसने मेरे जन्मदिन की याद दिलाकर मेरे हाथों पर तोहफा रखा था। लेकिन वह हैरानी उस वक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने आप मिट गयी थी, जब यह पता चला था कि साहेबा का अपना जन्मदिन मेरे जन्मदिन से दो दिन पहले ही आता था। वह सात अगस्त को जन्मी थी, मैं अपनी जन्मपत्री के अनुसार नौ अगस्त को। मैं उससे कोई सोलह साल पहले जनम गया था, यह दूसरी बात थी। अपने जन्मदिन के साथ उसे मेरे जन्मदिन की याद आ जाना तो शायद स्वाभाविक था, लेकिन···

लेकिन वह थी कि मेरे घर के सभी सदस्यों के जन्मदिन की याद रखे रहती थी। मैंने उसे उन सभी जन्मदिनों के बारे में कब बताया था, यह तो दिमाग पर लाख जोर देकर भी नहीं याद कर पाता हूं। उसे ये तिथियां कैसे मालूम हुईं, यह बताना तो और भी कठिन है।

सबसे बड़ा आश्चर्य तो मुझे उस समय हुआ था, जब एक दिन रोशन्वार के दहाड़ते समुद्र के किनारे उसने मेरे सामने चॉकलेट और तोहफे का एक बंडल रखकर कहा था—

"कल तरुण का जन्मदिन है। तुम मेरी ओर से यह तोहफा देकर उसे शुभकामनाएं भेंट कर देना!"

मेरे आश्चर्यचकित रह जाने का वह पहला अवसर नहीं था। वह तो मेरे घर के सभी बच्चों और मेरी मां तक के जन्म-दिन की याद दिलाकर मुझे वे रस्में पूरी करने को हर बार मजबूर करती रही है।

वह रस्म उस दिन मुझे एक अजीब उधेड़बुन में डाल गयी, जब अपनी सालगिरह के अवसर पर आठ वर्षीय तरुण यह सवाल कर बैठा—

"पापा, यह कैसा जन्मदिन है?"

"क्यों, क्या बात है?"

"फिल्मों में तो बच्चे मोमबत्तियों को एक ही फूंक से बुझाते हैं, फिर सभी लोग कहते हैं—हैप्पी बर्थ डे टु यू!"

और तब से, बम्बई की हिन्दी फिल्मों की कृपा से मेरे अपने घर, मेरे बाप के उस उसूल के खिलाफ, जन्मदिन की शुभकामनाएं चिराग जलाकर नहीं बल्कि चिराग बुझाकर दी जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८

डॉक्टरों का मुर्दा

तब मैं बारह-तेरह का रहा होऊंगा, जब घर के पिछवाड़े के आम के पेड़ से आम तोड़ते हुए मैं कोई पन्द्रह फीट की ऊंचाई से नीचे गिरा था। गुलैची की एक सूखी हुई खूंटी से मेरी छाती टकरायी थी। अस्पताल में मैं दो दिनों तक बेहोश रहा था। उसी क्षण से मुझे खून की जो उल्टी शुरू हुई थी, वह समय-समय पर होती रही। मेरे मां-बाप डॉक्टरों और दवाइयों से थक गये थे। डॉक्टर तक तंग आकर कह गया था कि उस दौरे को रोकने के लिए ओझाई ही आखिरी उपाय बचा था। मनौतियां, पूजा, सभी से थक चुके थे घर के लोग। हर छह महीने या दस महीने बाद वह दौरा शुरू होकर रहता था।

मेरी शादी का वह तीसरा महीना था। बहुत दिनों के बाद मुझे फिर से एकाएक हीमोपटीजिस का दौरा शुरू हो गया था। सबसे भयंकर दौरा था वह। खून की उतनी अधिक उल्टी पहले कभी नहीं हुई थी। बहाव नाक से भी होता रहा। चार दिनों के भीतर तीन डॉक्टर अन्दरूनी हेमोरेज को रोकने के लिए विटामिन के और ओड्रोनोक्जील के इन्जेक्शन देकर थक चुके थे। डॉक्टर शिवसागर रामगुलाम के आदेश पर मुझे कांदोस के अस्पताल में दाखिल कराया गया।

वहां भी तीन डॉक्टरों ने मेरा मुआइना किया। एक्स-रे के दूसरे ही दिन बाद मेरी ब्रांकोस्कोपी भी हुई। कहीं किसी को बीमारी नजर नहीं आयी। खून की उल्टी जारी रही। मेरे साथ लगे हुए तीन डॉक्टरों में दो थे डॉक्टर मालेक और डॉक्टर एंगलन। दोनों में से एक ने मेरी मां और पत्नी से कहा कि बड़ी रहस्यमयी बीमारी थी और ऑपरेशन के बाद ही उसका पता चल सकता था। उस ऑपरेशन के लिए मेरी पत्नी और मां के हस्ताक्षरों की जरूरत थी। दोनों ने जब जानना चाहा कि ऑपरेशन के बाद मेरे अच्छे हो जाने की कितनी सम्भावना थी, तो दोनों डॉक्टरों ने कोई उत्तर नहीं दिया।

उसी शाम वे डॉक्टर शिवसागर रामगुलाम से मिलीं। उन्हीं के सुझाव पर वे दोनों मेरे डॉक्टरों से दोबारा मिलीं। मैं बहुत ही कमजोर था, लेकिन बेहोशी इतनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं थी कि सामने की बातों से अनजान रहता। मैंने जब मां और सरिता से कहा कि ऑपरेशन की इजाजत दे दें, तो दोनों ने यही कहा कि वे मेडिकल प्रयोग के लिए मुझे डॉक्टरों के हवाले नहीं कर सकतीं।

दोनों डॉक्टरों में से एक ने यह कह दिया कि ऐसी स्थिति में मैं बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकता। मुझे दूसरे ही दिन बाद घर लौटा लिया गया। घर पर तो रोना-पीटना शुरू हो चुका था। मुझे सभी कुछ बड़ा विचित्र-सा लगा। मगर तीन ही चार दिन बाद मेरी हालत सुधरने लगी।

तब से आज तक, डॉक्टरों की भविष्यवाणी के बावजूद मैं जीवित हूं। इन बीस सालों में वे दौरे भी कभी-कभार पड़ते रहते हैं, और मैंने हर बार खून की उस उल्टी को रोकने के लिए कभी न तो डॉक्टर देखा और न दवा ली। दौरे पड़ते हैं, दो-तीन दिन बाद अपने आप समाप्त भी हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९

जब चीफी मुझे बुलाने आयी थी

तब मैं अध्यापक था। पिताजी की रहमदिली और हरिश्चन्द्री स्वभाव के कारण घर के वे अच्छे दिन गायब हो चुके थे। यहां तक कि जिस जमीन पर हम रह रहे थे, वह भी घर के सभी हकदारों की न रहकर बड़े भाई की जायदाद बन गयी थी। शहर जा बसे मेरे भाई से मोहलत पाकर हम लोग वहीं पर टिके हुए थे, कि १८० मील प्रति घंटे की रफ्तार से आया हुआ तूफान पूर्वजों के उस भव्य घर को भी धराशायी कर गया था। वक्त की उस प्रथम चुनौती को स्वीकारते हुए, किसी तरह मैं अपने ही बाप की जमीन को अपने बड़े भाई से खरीद सकने में सफल रहा। फिर उसी ज़मीन को गिरवी रखकर छह व्यक्तियों के लिए दो कमरों का एक घर बना पाया था। मां-बाप और मेरे छोटे भाई के साथ तब मेरी एक टुअर भांजी भी साथ रहती थी, और सरिता घर में नयी-नयी आयी थी।

उस तंगी में भी रीति-रिवाजों को परिवार में बरकरार रखना पड़ता था। पिताजी से कहीं अधिक मां को परम्पराओं आदि की चिंता रहती थी। अच्छे दिनों में मेरी बहनों के सभी बच्चे हमारे घर में पैदा हुए थे। मां के लिए यह हमारे परिवार की मर्यादा थी, जिसे बुरे दिनों में भी बनाये रखना था। चीफी मेरी बहनों में सबसे छोटी होती हुई भी मुझसे तीन-चार साल बड़ी थी। अपने पांचवें बच्चे को जन्म देने के लिए वह नैहर आयी हुई थी। उस छोटे घर में दिक्कत तो थी, पर किसी तरह पार पा लेते थे। थोड़ी-सी असुविधा हमें उस समय महसूस हुई, जब मेरी बहन के अधिक बीमार हो जाने की खबर पाकर मेरे बहनोई भी आ गये। मां ने दोपहर में ही, रात काटने के लिए एक कमरे में मर्दों के बिछौने लगवा दिये और औरतों के लिए एक दूसरे कमरे में। शाम होते-होते मेरी बहन की स्थिति अधिक नाजुक होती गयी। मैंने जब डॉक्टर से बात की तो मां ने मुझे डांट दिया। फिर थोड़ी देर बाद बड़े कोमल स्वर में बोली कि चिन्ता की कोई बात नहीं, थोड़ी ही देर के बाद सब कुछ ठीक हो जाएगा! पर न जाने क्यों, मां की वह सांत्वना मुझे खोखली प्रतीत हुई थी। अंधेरा छाते ही मेरी बहन दर्द से चिल्लाने लगी। मां और दाई की बातों से पता चला कि रात तक बच्चे को जनम जाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी बहन का क्रंदन बढ़ता ही गया। मां उधर से आ-आकर हमें धीरज बंधाती रही। मेरे बहनोई की हालत बड़ी दयनीय थी। दो दिन पहले मैंने हेमिंग्वे की वह कहानी पढ़ी थी, जिसमें एक रेड-इंडियन महिला को बच्चा जनमने वाला था। डॉक्टर उसकी बगल में ही थी, पर तंबू से बाहर उस महिला का पति उस प्रसव-पीड़ा से व्याकुल होकर आत्महत्या कर लेता है।

मैंने अपने जीजाजी से कहा—"चलिए, थोड़ा घूम आते हैं!"

हम लोग घूमने निकल गये। एक मील के फासले पर था आनन्द सिनेमा भवन, जिसमें दो फ्रेंच फिल्में चल रही थीं। फिल्म शुरू हो चुकी थी, फिर भी समय काटने के इरादे से मैंने दो टिकट लिये और बहनोई के साथ भीतर चला गया। पहली फिल्म स्पेंसर ट्रेसी की थी। वह उसमें लूला था। मेरा बहनोई उस फिल्म में अपने को रमा सका था या नहीं—यह तो मैं नहीं जान सका, पर मैं स्पेंसर ट्रेसी के अभिनय से मुग्ध था। कुछ ही देर बाद फिल्म अपने सस्पेंस की चरम सीमा पर पहुंच आयी। उसका लूला नायक अपने शत्रु आक्रमणकारियों का डटकर सामना कर रहा था। अपने एक हाथ से रेल के डिब्बे की बगल में वह कॉक्टेल-मोलोटोव तैयार कर चुका था और फिल्म अपनी चरम सीमा पर आ गयी थी, तभी एकाएक मेरे भीतर एक झटका-सा लगा। लगा कि मेरी बहन मेरे कान में कुछ कह गयी हो। सिनेमा हाल के उस अंधेरे में मैंने अपने जीजाजी की ओर देखा और मेरे मुंह से निकल पड़ा—

"···चलिए, घर चलें!"

मेरी बात उनकी समझ में नहीं आयी। अभी तो पहली ही फिल्म चल रही थी। कठिनाई से घंटा भर ही हुआ होगा! फिल्म अपनी पराकाष्ठा पर थी। उन्होंने मुझसे पूछा कि कहीं मुझे नींद तो नहीं आ रही थी। दूसरे क्षण फिर मुझे अपनी बहन की आवाज़ सुनने का वहम-सा हुआ। मैंने फिर बहनोई साहब को घर चलने को कहा। फिल्म में खोये होने के कारण उन्होंने अनसुनी कर दी। दो मिनट बाद फिल्म को उसके हिचकॉकी सस्पेंस पर छोड़कर मैं खड़ा हो गया। अपने बहनोई के कंधे को झकझोरा और बाहर आ गया। मजबूरन मेरे पीछे-पीछे आकर मेरे बहनोई ने पूछा—"क्यों, क्या बात है?"

"हमें घर चलना चाहिए!"

बाहर झीसी शुरू हो गयी थी। हम दोनों घर की ओर झपट पड़े।

मेरी चार बहनों में चीफी ही मुझे सबसे ज्यादा प्यार करती थी। उसकी शादी द्वीप के दूसरे छोर पर हुई थी। उसकी ससुराल समुद्र के किनारे थी, इसलिए मैं अपनी प्रायः सभी छुट्टियां उसी के यहां बिताता था। उसके हाथों का खाना मैं खबोर की तरह खाता था।

वह चीफी ही थी, जिससे पहली बार मैंने नाजमा के बारे में बताया था, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर की वही एक थी जो मुझे समझ पाती थी।

पंद्रह मिनट लगे होंगे हमें रास्ता तय करने में। अध-भीगी हालत में हम दोनों घर पहुंचे। भीतर पहुंचते ही पता चला कि कोई पंद्रह-बीस मिनट से मेरी बहन लगातार मुझे ढूंढ़ रही थी। मैं उसे सभी की सुनासुनी चीफी ही कहकर पुकारता था। उसके एकदम करीब जाकर मैंने पूछा—"क्या बात है, चीफी ?"

वह बच्चे को जनम दे चुकी थी। दाई उसके हैमोरेज को रोकने की कोशिश कर रही थी। दर्द से कराहती-चीत्कारती चीफी ने—जिसका नाम सावित्री था, पर जिसे उस नाम से कभी किसी ने नहीं पुकारा—मेरी बांह पकड़ ली। पकड़े रही, फिर काफी प्रयत्न के बाद टूटे-फूटे शब्दों में बोली—"तुम सुनील को अपने जिम्मे ले लेना···"

मेरे 'हां' कहते ही वह बोली—"अब मैं चलती हूं !"

और दूसरे ही क्षण उसने मेरी बांहों में दम तोड़ दिया। मैंने अपनी बहन की उस मौत को अपने सीने से टकराकर आते हुए महसूसा था।

दो घंटे बाद जब लोग सिनेमा से लौट रहे थे, सावित्री की देह बर्फ की तरह ठंडी थी और एक वर्षीय सुनील मेरी बांहों में था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०

भीख का वह आधुनिक तरीका

१९७४ में मैं मॉरिशस के सांस्कृतिक प्रतिनिधि के रूप में जिस फ्रेंच-भाषी युवा-समारोह में भाग लेने कनाडा के क्यूबेक में पहुंचा था, वहां के कई संस्मरण मेरे जेहन के भीतर से अपने ताजेपन को कभी भी मिटा नहीं पाते। यहां पर उन सभी अविस्मरणीय क्षणों में से एक याद आपके सामने रख रहा हूं।

क्यूबेक के ग्रांड तेआत्र में मेरे संगीत रूपक का रिहर्सल हो रहा था। उस लम्बे रियाज से थकान महसूस कर मैं कैम्पस को लौट आया। हम लावाल विश्व-विद्यालय के जिस कैम्पस में ठहरे हुए थे, वहां हमें पहले ही बता दिया गया था कि क्यूबेक में गरीब और भिखारी नहीं मिलते। हमें यह मान लेने में कठिनाई हुई थी, लेकिन अपने सामने की भव्यता को देखते हुए चुप रह गये थे।

काफेतोरिया के प्रांगण में घूमता हुआ मैं एक बेंच पर कुछ मित्रों के बीच बैठ गया। कांकॉर्ड होटल का वह रईसी खाना मेरे भीतर पचने में समय ले रहा था। उस बोझिलता को भुगत रहा था कि एक आदमी हमारे बीच आकर खड़ा हो गया। मेरे हाथ में एक कार्ड थमा दिया उसने।

यह वही कार्ड था जो दो दिन बाद पाबियों पालोक के सामने दोबारा मुझे देखने को मिला। एक रेड-इंडियन लड़की के साथ मैं टहल रहा था, जब दो अत्यन्त सुन्दर लड़कियां हमारे सामने आकर खड़ी हो गयी थीं। मेरी बगल की रेड-इंडियन लड़की की अवहेलना-सी करके वे दोनों मुझसे इस तरह बातें करने लगीं, गोया मैं अकेला था।

दो ही तीन मिनट की बातचीत के बाद, दोनों में कम बोलने वाली लड़की ने एक कार्ड मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने कार्ड देखा। उस दो दिन पहले वाले व्यक्ति के कार्ड से थोड़ा छोटा, पर उससे अधिक साफ और स्पष्ट अक्षरों वाला था। शिष्टा-चार से भरे फ्रेंच के वे वाक्य भी लगभग वे ही थे—'मैं गरीब, बेघर, बेकार हूं। अगर यह कार्ड आप मुझसे खरीद लेंगे तो मुझे एक जून रोटी मिल जाएगी।'

नीचे कार्ड का मूल्य लिखा हुआ था—

'एक डॉलर!'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अलावा आइडेंटिटी कार्ड केव रावर के उस गत्ते के टुकड़े पर कुछ भी नहीं था। मैं अभी उस कार्ड को निरख ही रहा था कि दूसरी लड़की ने भी मेरे हाथ पर वैसा ही दूसरा कार्ड रख दिया।

एक डॉलर और !

मैंने दोनों की मुस्कानें देखीं। दो डॉलर बहुत अधिक महंगे नहीं प्रतीत हुए। मैंने एक-एक डॉलर दोनों की हथेलियों पर रख दिया।

दोनों ने एक ही साथ कहा—

"मेरसी मेस्ये ! वू जेत त्रे ज्ञाचि !"

मुझे धन्यवाद और नेक कहकर दोनों एक-एक हाथ में एक-एक डॉलर का नोट और दूसरे में एक-एक नया कार्ड थामे, दूसरे नेक आदमी की तलाश में चल पड़ीं।

मेरी बगल की मेरी वह दोस्त जोर से हंस पड़ी। मुझसे पूछा—

"क्यों, तुम्हारे देश में भी इतनी ही शिष्टता और आधुनिक तरीके से भीख मांगी जाती है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-रिपोर्ताज-निबन्ध

लेख, रिपोर्ताज या निबन्ध, ये चीज़ें शायद ही मैंने कभी अपनी पसन्द से लिखी हों। हर बार सम्पादकों के अनुरोध पर ही यह कठिन काम कर पाया हूं।

जहां तक अपनी पसन्द और नापसन्द की बात है, उस पर यहां एक छोटी-सी घटना की चर्चा किये देता हूं। मॉरिशस का राज्यपाल एक दिन घूमता-घामता अपनी फुलवारी के बूढ़े माली के घर पहुंच गया। माली की झोंपड़ी के सामने गुलाब के जो चार-पांच पौधे थे, उनके चटकीले रंग के उन बड़े-बड़े फूलों को देख-कर वह चकित रह गया। तुरन्त माली से पूछा, "यह क्या बात है कि तुम्हारे आंगन के ये फूल हमारे बाग के फूलों से दोगुने बड़े, सुन्दर और चटकीले हैं ?"

माली ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "बस, एक छोटा-सा कारण है, साहब !"

"कौन-सा कारण ?"

"आपके यहां मैं उन फूलों की देखभाल आपकी पसंद और आपके आदेश पर करता हूं, जबकि यहां इन्हें अपनी पसन्द, अपने आदेश से करता हूं।"

बस यही थी वह छोटी-सी घटना।

मेरे ये लेख भी मेरे सभी लेखों-रिपोर्ताजों की तरह मेरी अपनी पसन्द की उपज कभी नहीं रहे। इससे ज्यादा सफाई और क्या दूं !

आप इनके लिए जो भी कीमत दे जाएं, स्वीकार है !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१
उपभोक्ता संस्कृति अब गांवों में

आज जब हिन्द महासागर का 'तारा' और 'कुंजी' तथा मार्क ट्वेन के शब्दों में 'धरती का स्वर्ग' समझा जाने वाला यह जजीरा इतिहास की अपनी अत्यंत चिंताजनक स्थिति से गुजर रहा है, तब उसके गांव भी अपनी पहचान और संस्कृति खोते चले जा रहे हैं। अब तक मॉरिशस के गांव चार पैसे कमाकर दो पैसे बचाये चले आ रहे हैं, और उसी के बल पर देश की समृद्धि में गांवों का अपना विशेष सहयोग रहा। आज जो स्थिति सामने आ गयी है, उसे अर्थशास्त्र कोई भी नाम दे सकता है; लेकिन वास्तविक रूप से यह भी उन तमाम साजिशों में एक और साम्राज्यवादी षड्यन्त्र है, जिसका शिकार आज मॉरिशस का प्रत्येक गांव है।

आज से दस साल पहले सेडविक रिपोर्ट के अंतर्गत यहां के नागरिकों की तनख्वाह में एकाएक चौंका देनेवाली जो वृद्धि हुई थी, उस समय मैं युवा मंत्रालय में नाट्य-प्रशिक्षक के पद पर था। मैं और मोहन महर्षि जब इस अकस्मात् बढ़ोतरी पर विचार करने बैठे तो लगा था कि वह आम आदमी के लिए अधिक कमाकर अधिक खर्च कराने की औपनिवेशिक साजिश अधिक थी। यह जानी हुई बात थी कि इस देश के गांवों में चार पैसे कमाकर उसमें से आगे के लिए दो पैसे बचा सकने की आदत ऐसी संस्कृति बन गयी थी, जिससे आम आदमी की अपनी हैसियत से उसकी स्थिति बेहतर होती दिखने लगी थी। मानव-मूल्यों की नीलामी करनेवाले बनियों को यह कब तक गवारा होता! उस सादगी और उससे बेहतर बन रही गांव की जिन्दगी को तोड़ने के लिए वह बड़ा ही वैज्ञानिक और गीदड़ी तरीका था। मजदूरों के हाथों में एकाएक उनकी उम्मीद से अधिक थमाकर उन्हें एक दूसरा जीवन जीने को बाध्य कर दिया जाना। उस सेंडविक रिपोर्ट के बाद से ही मॉरिशस के जनजीवन का बजट चकनाचूर होना शुरू हुआ था। आज स्थिति यह है कि आम आदमी जिस उपभोगी आदत को अपना चुका है, उसमें जीने के लिए उसके पास साधनों का अभाव होने लगा है। क्योंकि अब केवल बाजार के माल के भाव बढ़ रहे हैं, आदमी का पारिश्रमिक नहीं। आज स्थिति यह है कि आदमी आठ कमाकर बारह खर्च कर रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछले साल से यह उपभोक्ता सस्कृति अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गयी है। देखते ही देखते गांवों में जितने शराबखाने खुलने शुरू हुए, उसे देख इस देश को गरीब और विश्व मुद्राकोष के सामने हाथ फैलाये रहनेवाला राष्ट्र मानना असंभव हो जाता है।

'डिस्को वेव' अब केवल शहरी युवकों की सनक नहीं रही। वह सभ्यता तो अब गांवों में भी अपने डैने फैला चुकी है। रईसी ठाट अब गांव की गलियों पर भी हावी हो चले हैं। मॉरिशस के गांवों में आज पाश्चात्य हवा शहरों से अधिक तांडव भंगिमा लिये बह रही है। फैशन का बुखार भी चरम सीमा पर है। यहां गांवों में आज वीडियो की जो सरगर्मी है, वह जहां बच्चों की अध्ययन प्रवृत्ति को निगल रही है, वहां मजदूरों की श्रम-क्षमता को भी खत्म करती दीख रही है। जो फिल्में अभी भारत में रिलीज नहीं हुई, वे यहां के गांवों में धड़ाधड़ चल रही हैं। यहां के लोग इस मनोरंजन और औकात से बाहर होकर सुविधाओं को भोगनेवाले देश की सही स्थिति और अपनी वर्तमान हालात से अनभिज्ञ रहने का स्वांग रचे हुए हैं।

इधर १० जनवरी से देश में जिस बिक्रीकर को लागू किया जा चुका है, वह किसे निचोड़ छोड़ेगा—मुनाफाखोर को या ग्राहक को ? इस सप्ताह एक और चौंकानेवाली बात यह भी तो हुई कि इस वामपंथी व्यवस्था के सहयोग के लिए अब अमेरिका हितैषी बनकर सामने आ रहा है, ताकि अमेरिका की इस हातिमताई जैसी नीयत से यह देश डियेगो गार्सिया की त्रासदी को भूल सके। कल तक जिस भीख को अभिशाप करार दिया गया था, आज उसे गौरवान्वित किया जा रहा है। तीसरी दुनिया के मसीहा फ्रांज फैनन का तो यह नारा था कि समृद्ध देशों से प्राप्त हर विदेशी सहयोग इन छोटे राष्ट्रों के लिए नवसाम्राज्यवाद प्रमाणित होगा। खैर, अब तो फैनन भी आउट-डेटेड हो गया ! मॉरिशस में जिस रफ्तार से उपभोक्ता संस्कृति पसर रही है, उससे तो ऐसा नहीं लगता कि बड़े-से-बड़ा कर्ज भी यहां की बेकारी, महंगाई और आर्थिक तथा मानसिक दीवालियेपन को मिटा सकता है। कोई मजदूर या चपरासी वही कमीज पहनकर दफ्तर पहुंचे जो अफ़सर पहने हुए हो, इससे तो देश की खुशहाली सामने आती है; लेकिन जब मजदूर और चपरासी औकात से बाहर जाकर अफसरवाली कमीज केवल इसलिए पहनता है, क्योंकि उसे यह बताना है कि जो तुम कर सकते हो, वह मैं भी कर सकता हूं तब तो यह खुशहाली का प्रतीक न रहकर पूंजीपति की साजिश का नशा प्रमाणित होता है। शोषण का तो बस तरीका बदलता रहता है। कभी भूखा मारने का कानून था, अब नरेटी (गले) तक खिला-पिलाकर मारने का रिवाज शुरू हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

प्रेमचन्द और भारतीय उपन्यासों में भारतीयता

वह भारत जिसे हम दूरदेशी देख और महसूस कर एक आनन्द और शान्ति का अनुभव करते हैं, वह शहरों में न होकर भारत के गांवों में बसता है। यही अभिव्यक्ति प्रायः हर भारत-प्रेमी विदेशी की निश्छल अनुभूति है। शायद यही वजह भी है कि भारतीय उपन्यासों की भारतीयता सबसे अधिक उन्हीं गांवों की कथाओं में झलकती है, और चूंकि भारतीय गांवों के सही जीवन-संघर्ष का पहला सफल चितेरा प्रेमचन्द है, इसलिए यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि प्रेमचन्द परम्परा ने भारतीय उपन्यासों में भारतीयता को कायम रखा। इस परम्परा के सभी उपन्यासों की चर्चा तो यहां नहीं की जा सकती, फिर भी रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरत्‌चन्द्र और प्रेमचन्द्र के बाद जैनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा, विष्णु प्रभाकर, अमृतलाल नागर, नागार्जुन तथा रांगेय राघव—इन सभी की रचनाओं ने इस भारतीयता को अपने-अपने ढंग, अपनी-अपनी शैली, अपने-अपने चित्रण-सृजन में बरकरार रखने की पूरी कोशिश की। लेखक आविष्कार करनेवाला होता है, इसलिए इन लेखकों में कुछ ने कई स्थानों पर गांवों से आगे आकर भी जिस संसार का आविष्कार किया, वह भारत की मिट्टी की निर्मलता, उसकी सोंधी गंध और तमाम कल्याणकारी तत्त्वों से ही भरा हुआ था। शहरी जीवन की आपाधापी और वहां के आम आदमी के जीवन के कथाकारों ने भी उस पहचान को बनाये रखने की ही कोशिश की है।

जैसाकि हमने कहा, उन सभी रचनाओं की चर्चा तो यहां नहीं की जा सकती फिर भी चन्द ऐसी रचनाएं हैं, जिनमें गांव की कहानी और उसकी भारतीयता अपनी सारी ईमानदारी के साथ जीवित है। भारतीयता को संजोये रखनेवालों और भारतीयता को नये अर्थ, नये आयाम देनेवाले कुछ उल्लेखनीय उपन्यासों में 'गोदान' ही शायद सबसे पहले आता है, और इस कड़ी का सबसे ताजा न भी सही तो सबसे महत्त्वपूर्ण उपन्यास, मेरे अपने ख्याल में—'मैला आंचल' है। इसके बीच और इसके बाद भी हिन्दी उपन्यास ने अपने को इस प्रतिमान से जोड़े रखा। फ़ेहरिश्त लम्बी हो सकती है, इसलिए अन्य हिन्दी उपन्यासों का यहां उल्लेख न करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम भारत की उन अन्य भाषाओं के उपन्यासों के नाम लेना चाहेंगे,जिनकी भारतीयता विश्व कथा-साहित्य में अपनी विशेष पहचान देती है। उनमें से कुछ के नाम देना चाहूंगा, जिनकी थोड़ी-बहुत झलक हिन्दी के माध्यम से मिलती रही है। कन्नड़ के साहित्य में गुलाडी वेंकटराव के पहले उपन्यास के सारस्वत समाज की कथा से लेकर शिवराम कारन्त के 'मरलि मण्णिगे' के कृषि जीवन की गाथा तक तथा उसके बाद के उपन्यासों में भी जिस जीवन के चित्रण मिलते हैं, वह भारतीय जीवन से ओत-प्रोत हैं। मरलि मण्णिगे के पात्र न तो जोला के 'लातेर' के पात्र हो सकते हैं, न पर्ल बक के 'गुड अर्थ' के, न जॉन स्टेनबेक के 'ए ग्रेप ऑफ राथ' के। वे पात्र कन्नड़ की धरती के अपने चरित्र हैं। उड़िया साहित्य में कालिन्दीचरण पाणिग्रही के बहुचर्चित उपन्यास 'माटीर माणिष' जिस भारतीय ग्रामीण जीवन को सामने लाता है, वह जीवन एर्सकीन कॉल्डवेल के 'टोबाको रोड' के ग्राम-जीवन से एकदम भिन्न है। यही बात गोपीनाथ महान्ती के उपन्यास 'अमृतर सन्तान' में भी है। इस उपन्यास की वर्णन-शैली एक निजी शैली है। बंगला साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव बनाये जाने से बंगला साहित्य अपनी भारतीयता से कट नहीं जाता। बंकिम के दुर्गेशनंदिनी की कथा वाल्टर स्कॉट के 'तालिस्मान' की कथा नहीं हो सकती, न ही रवीन्द्रनाथ की 'नाव दुर्घटना' पुश्किन की 'ब्लीजार्ड' हो सकती है। शरत्चन्द की 'सावित्री' अपने समूचे चरित्र में भारतीयता लिये हुई है। शरत्चन्द अगर अखिल भारत का लेखक रहा है तो बस इसलिए कि उसकी रचनाओं की भारतीयता, भारतीय पाठकों की धमनियों में दौड़नेवाली भारतीयता थी। इससे आगे चाहे वह विमल मित्र का उपन्यास रहा हो, चाहे ताराशंकर वन्द्योपाध्याय का 'गणदेवता' या आशापूर्णा देवी का उपन्यास, सभी जुड़े रहे उस सोनल माटी के साथ!

मराठी उपन्यासों में, चाहे वरेरकर का उपन्यास हो चाहे दाण्डेकर का 'आमी भगीरथां जे पुत्र' या खांडेकर का बहुचर्चित 'ययाति'—सभी अपने लोकजीवन की पहचान लिये हुए हैं। गुजराती उपन्यास की भी अपनी निजी पहचान उसे भारत का अभिन्न अंग बनाती है। 'सरस्वतीचन्द' एक ऐसा उपन्यास रहा है, जिसने महात्मा गांधी तक को प्रभावित किया था। उसमें निहित मानवधर्म और सदाचार पाश्चात्य उपज नहीं हो सकते। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के उपन्यासों की अखिल भारतीयता सर्वविदित है ही पन्नालाल पटेल का 'मलेलाजीव' जिस ग्रामीण जीवन की झांकियां प्रस्तुत करता है, वह भारतीयता से ओतप्रोत है। मलयालम का 'चिमिन' हो या तमिलनाडु का 'चित्रप्रिया'—इन सभी उपन्यासों में विश्व के श्रेष्ठ उपन्यासों के बीच खड़े होने की शक्ति तो है ही, साथ ही अपनी भारतीय पहचान भी उनमें मौजूद है। उर्दू के क्षेत्र में वह उपन्यास चाहे राजेन्द्रसिंह का हो चाहे कृशनचन्दर का, उपन्यासों की प्रगतिवादी आवाज हिन्दुस्तान की सर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जमीन के लोगों के दुख-दर्द, मुहब्बत और संघर्षों की ही रही है। नानकसिंह और बलवन्त गार्गी के उपन्यासों में आदमियत का स्वर पंजाब का होकर पूरे भारत की मानसिकता को अपने साथ लिये हुए होता है। यही बात बाकी भारतीय भाषाओं के उपन्यासों में भी है। उनके नये प्रयोगों और चित्रण के तरीकों तथा मूल्यांकन में जो ताजगी है, वह किसी दूसरी जमीन की न होकर भारत की अपनी है।

भारतीय भाषाओं के ये उपन्यास अपनी भाषा की आंचलिकता, प्रयोग, कथा, चरित्र और वर्णन कला से अपनी मौलिकता को बनाये रखने की छटपटाहट लिये हुए हैं, और यही मौलिकता इनकी भारतीयता को भी जीवित रखे हुई है। इन सभी रचनाओं ने अपनी अलग-अलग अभिव्यक्तियों, शैलियों और शिल्पों में जो भी कहानियां कही हैं, सभी में भारत की विविधता और उस विविधता की एकता और उसमें अपनी निजी पहचान ही अधिक बुलन्द है। भारतीय संगीत और कला की तरह ही भारतीय उपन्यास भी अपने सभी बाहरी प्रभावों के बावजूद भारतीयता से ही भरपूर है।

आज भारतीय संगीत में अगर भारतीयता लड़खड़ायी है तो विसंस्कृतीकरण, आत्मविश्वास के अभाव और आधुनिकता की खोखली नकल की वजह से। साहित्य में भी यही हुआ है। भारतीय उपन्यासों में, जहां आधुनिकीकरण का लबादा ओढ़े चरित्र अपनी धरती के साथ जुड़ नहीं पाते। छिछली नकल से प्रबुद्धता की प्रदर्शनी करने वाले लेखकों के कारण भारतीय उपन्यास दिशाहीन होते-होते बचा है। भारतीय भाषाओं के कुछ उपन्यासों में द्वितीय विश्वयुद्ध की त्रासदी के रोदन को रोकर पाठकों को मोहने का जो प्रयत्न किया गया, उसमें वे असफल रहे, क्योंकि वह रोदन अपना रोदन नहीं था, किराये में लिया हुआ रोदन था वह। कुछ उपन्यासों ने अस्तित्ववाद का ढीला जामा पहना, कुछ ने तंग आंवागार्डिज्म का, कुछ ने कई खोखले वादों को सिर पर ढोया; पर इनमें से कोई भी अपनी धरती का उपन्यास नहीं बन पाया। कुछ उपन्यास अपनी पारम्परिक भारतीय कथा-प्रथा को एकदम से नकारकर मात्र अपने भोगे हुए सत्य की दुहाई देकर असत्य बने रहे। कथाकार अगर मानव मस्तिष्क का इंजीनियर और आविष्कारक है, तो फिर वह सिर्फ अपनी लाश का ही पोस्ट-मार्टम करता क्यों रह जाए ! उसे तो तरीका आविष्कार करना पड़ता है, जिससे वह आदमी और आदमी के बीच के रिश्तों के लिएं पुल बना सके। चाहे वह भारत हो या विश्व का कोई भी साहित्यिक जगत, सभी के साहित्यकारों ने वही मानव मस्तिष्क के इन्जीनियर वाला काम किया है, न कि बस अपनी कुंठाओं को ही रोता रह गया है।

प्रेमचन्द अपने साहित्य में कहां तक भारतीय थे ? उसमें भारतीय उपन्यास की भारतीयता कहां तक उजागर हुई है ? इसे तो उसके उपन्यासों पर के तथाकथित पाश्चात्य प्रभावों के बावजूद साफ और स्पष्ट देखा जा चुका है। प्रेमचन्द की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरी रचना-प्रक्रिया में भारतीयता की प्रमुखता को अपने देश के संदर्भ में संक्षिप्त रूप से यहां प्रस्तुत करना चाहूंगा।

मॉरिशस में, जहां लगभग पचहत्तर प्रतिशत भारतीय वंशज के लोग रहते हैं, वहां रामचरितमानस के बाद प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों को जो लोकप्रियता मिली, वह बेमिसाल है। मॉरिशस के भारतीय वंशजों ने जिस भारतीयता को महाभारत और रामचरितमानस में पाया, उसी को कुछ और नजदीकी के साथ प्रेमचन्द की कहानियों और उपन्यासों में पाया। मॉरिशस की आत्मा—उसके ईख के खेतों से जुड़े हुए वहां के भारतीय मजदूर और छोटे किसानों ने गोदान के होरी और गोबर में अपने सभी द्वंद्वों और संघर्षों को तो पाया ही, साथ ही उन मूल्यों को भी पाया, जिनसे वे दूर आ गये थे।

उन सभी में वह भारत मौजूद था, जिसे कई साल पहले इन लोगों के पूर्वज रोटी-रोजी की तलाश में छोड़ आये थे। गोदान और प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों में इन लोगों ने उसी बिछड़ी हुई भारतीयता को स्पन्दित होते पाया। उन उपन्यासों के पात्रों को उन्होंने खेत-खलिहानों, आंगन बैठकों में हर जगह मौजूद पाया। उनके संघर्षों-द्वंद्वों, उनकी सहनशक्ति, उनकी अहिंसात्मक प्रवृत्ति, सहिष्णुता, उनकी मेहनत, उनके पसीने की बूंदों की शीतलता—इन सभी में मॉरिशस ने भारतीयता के उन गुणों को पाया, जिनकी उन्हें आवश्यकता थी।

मॉरिशस में जब प्रेमचन्द साहित्य का आगमन हुआ था, उस समय मॉरिशस से दासता तो मिट गयी थी, लेकिन जमींदारी-शोषण नया मुखौटा लगाये एक दूसरे रूप में विराजमान था। दासता के उस नये शिकंजे में मॉरिशस के भारतीयों को अपना अभियान जारी रखने के लिए प्रेमचन्द साहित्य ने ही वह नयी दृष्टि दी, नयी शक्ति दी। मंदिरों में जब गीता और रामचरित मानस के पाठ होते थे, तो बैठकों में गोदान और प्रेमचन्द की अन्य रचनाओं की भी चर्चा होती थी।

उन रचनाओं के भीतर की भारतीयता ने वहां के लोगों को अपनी अस्मिता बनाये रखने के लिए अपनी भाषा और साहित्य की ओर भी खींचा। मॉरिशस में अगर आज भारतीयता और भारतीयता का सर्वश्रेष्ठ वाहन-साधन हिन्दी जीवित है तो इसमें प्रेमचन्द के साहित्य का बहुत बड़ा श्रेय मानना चाहिए।

प्रेमचन्द के प्रायः सभी पात्र दैहिक बल से निर्बल होते हुए भी जिस अन्तःकरण की शक्ति को अपने में संजोये हुए मिलते हैं, वह भी भारतीयता का ही द्योतक है। उन्होंने उसी मानव-शक्ति और मानवता का स्वर बुलन्द किया है, जिसे भारत वर्षों से करता आया है।

प्रेमचन्द की रचनाओं में अगर हमें मार्क्स, लेनिन, गोर्की, टालसटॉय जैसे मनीषियों का प्रभाव नजर आता है तो केवल इसलिए कि उन मूल्यों में प्रेमचन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने अभारतीयता नहीं पायी थी, बल्कि उसमें कहीं-न-कहीं उसे भारतीयता की ही अनुगूंज मिली थी···उसी मानवतावाद की, जिसका युगों से भारत प्रचारक रहा। श्रीकृष्ण की समृद्ध घरों से दूध-दही चुराकर अभावग्रस्तों के बीच बांट देनेवाली भावना की अनुगूंज ही प्रेमचन्द ने उधर से सुनी थी। साम्यवाद की इतनी पुरानी जड़ उन्हें और कहां से मिल सकती थी! भारत के मानवतावाद की कसौटी पर पाश्चात्य मनीषियों के वे सारे विचार किसी-न-किसी मोड़ पर तिलक, दयानन्द, लाजपतराय और महात्मा गांधी के विचारों से मेल खाते ही थे। यही कारण है कि प्रेमचन्द के सभी उपन्यास इस विचारधारा को साथ लिये वहे।

प्रेमचन्द का अपना सिद्धान्त भी तो उसी परम्परागत भारतीयता का ही एक स्वरूप था कि धन और विलास को जीवन का लक्ष्य बना लेने वाला कभी सार्थक साहित्य नहीं लिख सकता। यही बात उनकी रचनाओं में झलकती रही। पात्रों की सादगी, उनकी जीवट भाग्यवादी संतोष तथा जीवन की सच्चाइयों की स्वीकृति प्रेमचन्द का हर कथापात्र जीता था।

प्रेमचन्द की रचनाओं की तरह उनके बाद सभी अच्छे उपन्यास भारतीय चिन्तन का अपने में समावेश किये रहे। समय के साथ शिल्प-शैली को नवीनता प्रदान करते हुए भी भारत के सभी अच्छे उपन्यास पारम्परिक साहित्यिक मूल्यों से अपने को जोड़े रहे। भारतीय उपन्यासों के लिए सत्य साहित्य का अनिवार्य आधार रहा। सत्य ही में यथार्थ और यथार्थ ही में जीवन के स्पन्दन को ढूंढ़ा गया और पाया भी गया। सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् को भारत के सभी श्रेष्ठ उपन्यासों ने स्वीकारा और स्वीकारते हुए भी ठीक प्रेमचन्द ही की तरह सुन्दरता की कसौटी को बदलने की कोशिश भी की। उसी तरह सुख और आनन्द का भी सही मूल्यांकन इन उपन्यासों में मिलता है। गांवों में, वहां की झोंपड़ियों में जिस सत्य को तलाशा गया, जिस सौन्दर्य को वहां पाया गया, जिस आनन्द की अनुभूति इन उपन्यासों में होती है वह अद्भुत है। ये कृतियां शिव की परिभाषा करती हुई सार्वभौमिकता का तकाजा करती हैं और आह्वान करती है—वसुधैव कुटुम्बकम् का!

अपनी समस्याओं में भी भारत के उपन्यास भारतीयता को लिये रहे, वे कहीं उससे कट नहीं पाये। यह दूसरी बात है कि भारत की कुछ समस्याएं विश्वव्यापी भी हो सकती हैं। पर इन उपन्यासों की समस्याएं प्रायः भारतीय रहीं···ज़मींदारी प्रथा, बाल-विधवा, अनमेल विवाह की समस्या, रूढ़िवाद, राष्ट्रीय चेतना, साम्प्रदायिकता, नारी की दशा, दहेज-प्रथा, बहु विवाह, जाति भेद, संयुक्त परिवार की समस्या, ये सभी समस्याएं मूल रूप से भारतीय रहीं।

साहित्य पर प्रभाव के प्रश्न को लेकर बड़े-बड़े ग्रंथ लिख दिये जाते हैं। कुछ लोगों को यह अपच भी दे जाता है और साहित्यिक उक्टापैंची भी शुरू हो जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा गया है। यह प्रभाव कहां नहीं रहा है । प्रश्न तो यह होना चाहिए कि प्रेमचन्द की 'सोफिया' थाकरे की 'अमेलिया' से क्यों मिलती-जुलती है ? यही सवाल फिर आता है, शेक्सपियर की 'मिरांडा' कालिदास की 'शकुंतला' से क्यों मिलती-जुलती है ?

यह सही है कि भारत में जब उपन्यासों की शुरुआत हुई, उस समय केवल कादम्वरी को मॉडल के रूप में नहीं रखा गया, बल्कि पाश्चात्य उपन्यासों को भी ध्यान में रखकर ही उस कला ने अपने को आगे बढ़ाया। यह प्रक्रिया एकदम उसी तरह की रही, जैसी कि मार्टिन लूथर किंग का गांधीवादी से प्रभावित होकर अमेरिका का अश्वेत आंदोलन चलाना। गांधी से प्रभावित मार्टिन लूथर का आंदोलन जिस तरह विशुद्ध रूप से अमेरिकन ही रहा, उसी तरह पाश्चात्य उपन्यासों से प्रेरित भारतीय उपन्यास भी भारतीयता से कटकर आयात की हुई किसी परदेशी संस्कृति के रूप में हमारे सामने नहीं आया। वह आया तो अपनी धरती की सोंधी गंध, अपनी जमीन के मजदूरों के पसीने की बूंदों की चमक लिये हुए आया। अपने देश के रहन-सहन, आदर्श-सिद्धान्त और जन-जीवन को साथ लिये हुए ही विकसित हुआ।

भारतीय उपन्यास का पाश्चात्य उपन्यासों से प्रभावित होना उतना ही स्वाभाविक है, जितना कि टाल्सटॉय, आल्डस हक्सले, जीद, मारलो स्टेनबैक, रोलां आदि उपन्यासकारों का भारतीयता से प्रभावित होना !

आज के एक-दो नये उपन्यासों में यौनाचार के जो चित्रण आ रहे हैं, उन्हें हम 'मलर, जॅकलीन सूजान या फिलिप रोथ के सेक्स के साथ क्यों जोड़ें ? उन्हें कामसूत्र, विद्यापति खजुराहो या गीत-गोविन्द की ज़मीन की रचना क्यों नहीं मानते ?

अपने इस वक्तव्य में मैंने जान-बूझकर आज के आधुनिक भारतीय साहित्य की चर्चा इसलिए नहीं की, क्योंकि उसके लिए तो फिर अलग से सोचना पड़ता, इसका यह मतलब नहीं हो जाता कि भारती, कमलेश्वर, राकेश, यादव की रचनाओं में भारतीयता का अभाव है—हां, मूल्यों का समयानुसार परिवर्तन दूसरी बात है !

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों से भारतीय मजदूरों, किसानों और स्त्रियों में जो चेतना जगायी, अगर वह भारतीयता लिये हुए न होती तो उससे मॉरिशस के मजदूर किसान उस तरह न तो प्रभावित होते और न ही अपनी अस्मिता को बरकरार रख सकते !

मॉरिशस में हिन्दी साहित्य के एक-दो मिट्टी के धुंधले चिरागों के जलते रहने को अगर भारतीयता मान सकते हैं तो फिर उसे प्रेमचन्द और भारतीय उपन्यासों की भारतीयता से पायी प्रेरणा ही समझना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत से बाहर जिस किसी भी देश में, भारतीय प्रवासियों के द्वारा भारतीय भाषाओं में उपन्यासों का सृजन हुआ है, उनमें प्रेमचन्द का प्रभाव निर्विवाद और स्पष्ट है। और यह भी प्रेमचन्द की रचनाओं में भारतीयता का एक जीता-जागता प्रमाण है !

[यह भाषण साहित्य अकादमी की ओर से मुझे अंग्रेजी में देने को विवश होना पड़ा था।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३

देशी भाषाओं के विरुद्ध साम्रज्यवादी षड्यन्त्र

मॉरिशस तूफानों का देश रहा है। ये तूफान जो मोजांबिक कनाल से उठते रहे हैं, उनसे हमारे खेत-खलिहान, घर-द्वार, जान-जायदाद तबाह होते रहे हैं, पर हमारे संकल्प और आत्मशक्ति उन्हें संवारती भी रही है। अभी कुछ ही दिन पहले एक भीषण तूफान उठा। इस बार मोजांबिक कनाल से नहीं, बल्कि साम्राज्यवादी हस्तियों के अहाते से—जिससे हमारी अपनी पहचान, अपनी अभिव्यक्ति, अपनी संस्कृति, अपनी बुनियाद सहित डगमगा गयी। अगर यह आंधी प्रचंड रही तो डेढ़ सौ साल पूर्व की संपूर्ण अस्मिता भी धराशायी हो जाएगी, जिस तरह रियूनियन, मुयाना तथा अन्य जगहों में हो चुकी है। इस औपनिवेशिक तूफान और कुछ अपने ही लोगों की साजिश की यहां चर्चा करें, इससे पहले मुल्क में हिन्दी के अस्तित्व और उसकी जिजीविषा को जान लें!

हिन्दी डेढ़ सो साल पुरानी

१५० वर्ष से हिन्दी मॉरिशस की मिट्टी के साथ जुड़ी रही है। मजदूरों के सारे संघर्षों की वह अभिव्यक्ति रही है। सांस्कृतिक आंदोलनों से लेकर पहचान को बरकरार रखने की स्वर-बुलंदी भी हिन्दी की ही है। अगर ऐसा न होता तो मॉरिशस आज एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में अपनी पहचान न बना पाता! डेढ़ सौ साल से हिन्दी इस धरती की सांस्कृतिक, सामाजिक, औद्योगिक और राजनीतिक गतिविधियों और विकास के साथ जुड़ी रही है। उस पर कोड़े भी बरसे हैं और उसने सामंती गालियों को भी झेला है। बहिष्कृत हो-होकर भी हिन्दी ने इस देश के स्वतन्त्रता अभियान में जो भूमिका निभायी, उसे भी बिसार देने की कृतघ्नता सामने आ ही गयी।

हिन्दी के साथ अन्य भारतीय भाषाओं का जो बहिष्कार और अपमान हुआ है, उससे तो यही प्रतीत होता है कि यहां भाषा-नीति जैसी कोई चीज अब है ही नहीं। अगर है भी तो नपुंसकता की स्थिति में है, अन्यथा यह स्थिति नहीं होती। हिन्दी के बलबूते प्राप्त राष्ट्रीयता, विकास, पहचान और स्वतन्त्रता के दस्तावेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को नकार जाने की मनोवृत्ति सामने न आती।

कुछ दिन पहले हमारे देशके शिक्षामंत्री ने मॉरिशस इंस्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन के सहयोग से एक ऐतिहासिक और वैज्ञानिक कदम उठाया, ताकि आधुनिक शिक्षा सिद्धान्त के नाम पर हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को भी लगभग वही स्थान प्राप्त हो सके जो हमारे बच्चों पर थोपी-लादी दो गैर भाषाओं को प्राप्त था। प्रारंभिक पाठशालाओं में उतने लंबे अरसे से पढ़ायी जाने पर भी परीक्षा में हिन्दी का कोई स्थान था ही नहीं। देर से ही सही, पर इस गंभीर समस्या पर शिक्षा-मंत्रालय ने विचार किया और इसी कारण मन्त्री ने छठी कक्षा की परीक्षा के लिए एक नये फॉर्मूले को सी० पी० ई०—'सर्टिफिकेट ऑफ प्राइमरी एजूकेशन' के रूप में कैबिनेट के सामने प्रस्तुत किया। मंत्रिमंडल ने उस नये सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि 'कोएलिशन' के नेता और गिरजाघर के प्रमुख पादरी ने उस पर आपत्ति की थी। राजनीतिक ब्लैकमेलिंग और गिरजाघर की झिड़कियों के सामने सत्ता भीगी बिल्ली बनकर रह गयी। मंत्रिमंडल के प्रायः सभी सदस्य वे ही लोग थे जो चुनावों के दौरान हिन्दी की दुहाई देते फिर रहे थे।

आखिर यह सी० पी० ई० थी क्या, जिसकी चर्चा देश की सभी पूंजीपति पत्रिकाओं में सुर्खियों में हुई? उनकी बेचैनी इतनी क्यों बढ़ी? उसका कारण बस इतना ही था न कि परीक्षा की उस नयी रूपरेखा से, भारतीय भाषाओं में सफल होनेवाले छात्रों को अच्छे कॉलेजों में दाखिल होने का पहला अवसर मिलता! अब तक होता यही रहा है कि भारतीय भाषाएं पढ़नेवाले ये छात्र जो करीब दो-तिहाई हैं, फ्रेंच में असफल रहकर छात्रवृत्ति से वंचित रह जाते थे और सरकारी कॉलेज की सीटें मुट्ठी भर धनवान गोरे और चीनियों से भर जाती थीं।

एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में शिक्षामंत्री का यह कदम ठोस कदम था, जिससे शिक्षा को औपनिवेशिक शिकंजों से मुक्त करके सभी को बराबर का अवसर मिलता। सी० पी० ई० के अस्वीकृत हो जाने पर विरोधियों ने इन नारों से जय-जयकार की—"वह मर गयी, दफन हो गयी" और आम आदमी के वे सारे प्रति-निधि मौन व्रत धारण किये रहे। सत्ता और अपनी कुर्सी को बचाये रखने की प्रवृत्ति में डेढ़ सौ साल की उपलब्धि को चिता के हवाले कर दिया गया। दो शहरों की तुलना में सैकड़ों गांवों के विद्यार्थियों के अधिकारों को रौंद दिया गया। शियासती सौदेबाजी की कीमत नयी नस्ल को चुकानी पड़ी। कुर्बानी उनकी रही। राष्ट्रभक्तों की संतानें स्वतन्त्रता के खिलाफ लड़नेवालों के आगे, अपने राष्ट्रीय हक और मानवीय अधिकार से वंचित रह गयीं। वैचारिक क्रांति घुटने टेक बैठी। राज-नीतिक उठापटक के बीच गरीब बच्चों का भविष्य अंधकारमय ही बना रहा।

इस साजिश के शिकार लोगों ने स्वतन्त्रता की लड़ाई इसीलिए लड़ी थी कि उनके अधिकारों की रक्षा हो सके। पर इस निर्णय से उनकी आस्था को चोट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुंची है। यह सवाल सिर्फ़ भाषा तक ही सीमित नहीं था। हिन्दी के प्रति ऐसा व्यवहार देखकर अब लोग अपने बच्चों को इसे पढ़ने के लिए प्रोत्साहित नहीं कर रहे हैं। हिन्दी समेत अन्य भारतीय भाषाओं को पंगु बनाने के लिए यहां सुनियोजित षड्यन्त्र चल रहा है। आजकल माध्यमिक स्कूलों में हिन्दी की कक्षा ऐसे वक्त चलती है, जब अंग्रेजी, विज्ञान या गणित की कक्षाएं अन्यत्र चल रही होती हैं। इसके पीछे यह मनोवृत्ति है कि हिन्दी पढ़नेवाले छात्र चाहकर भी न पढ़ पाएं।

गिरजाघरों द्वारा भारतीय भाषाओं के विरुद्ध कुप्रचार में अब विश्व बैंक भी साथ हो गया है, जिसका मानना है कि इन भाषाओं की पढ़ाई से समय और धन की बर्बादी होती है। यह है आज मॉरिशस में हिन्दी की स्थिति और आजादी का मूल्य! जबकि गुलामी के समय से ही बार-बार यह मांग होती रही है कि मातृ-भाषा के माध्यम से ही प्रारंभिक स्कूल में बच्चों को पढ़ाया जाए।

ईमानदारी के साथ यह सवाल किया जाय कि आखिर हिन्दी की इस वर्तमान स्थिति के जिम्मेदार क्या सिर्फ पूंजीपति-शोषक ही हैं? या हमारे अपने लोग भी इसमें सम्मिलित हैं? चुनावों के दौरान हिन्दी और भाई-भाई की दुहाई दे-देकर वोटों की भीख मांगनेवाले वे राजनीतिज्ञ आज खामोश क्यों हैं?

भाषा सिर्फ अभिव्यक्ति का साधन नहीं हुआ करती। वह तो एक पूरी जाति, एक पूरे राष्ट्र की अपनी अस्मिता—अपनी गरिमा होती है। उसके बिना संस्कृति विकलांग और गूंगी होती है। राजनीतिक शक्ति का स्रोत भी भाषा होती है। हम इस साम्राज्यवादी नारे को कैसे भूल सकते हैं कि अगर एक जाति को मिटाना हो तो पहले उसकी भाषा को मिटा दो। इस साम्राज्यवादी षड्यन्त्र से हमें मानसिक स्तर पर गुलाम बनाने की प्रक्रिया आरंभ हुई है। यहां पर गांधी संस्थान की नींव भारत सरकार के सहयोग से, भारतीय भाषाओं की रक्षा एवं उनके विकास के लिए डाली गयी थी। उसकी आज क्या भूमिका रह गयी है?

राजनीति के पांवों को अपनी पीठ देकर यह भाषा अपाहिज की स्थिति में पहुंच गयी है। मॉरिशस में आयोजित द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर अपने-अपने व्यक्तित्व को चमकाने और हिन्दी पर सवार होकर सत्ता की दौड़ जीतनेवालों ने हिन्दी के लिए क्या किया? कहां गयीं वे सारी योजनाएं और संकल्प?

आजादी से पहले यहां की सभा-संस्थाओं को, अपने कार्यक्रमों के विवरण आदि सभी कुछ भारतीय भाषाओं में लिखने-रखने की पूरी आजादी थी। अब तो आजादी के बाद यह आजादी भी नहीं रही। हर सप्ताह हिन्दी के जो दर्जनों कार्यक्रम होते रहते थे, वे सब निराशा की लपेट में आकर लुप्त होते जा रहे हैं। आजादी से पहले हर दूसरे-तीसरे महीने हिन्दी की कोई-न-कोई नयी पुस्तक प्रकाशित होती ही रहती थी। अब तो साल भर से कोई नयी किताब देखने को नहीं मिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही। भारतीय परिवारों के शादी-ब्याह की चिट्ठियां हिन्दी में निकलती थीं, अब तो पूजा-पाठ का निमंत्रण भी फ्रेंच में मिलता है। स्वतंत्रता से पहले हिन्दी की चार पत्र-पत्रिकाएं निकलती थीं। इस देश के विकास और आजादी के सभी गाने हिन्दी में गाये गये; पर अब लाभ मिल रहे हैं औपनिवेशिक भाषाओं को।

भारतीय भाषाओं की रक्षा हेतु यहां एक आंदोलन शुरू हुआ है। इस आंदोलन को विश्व भर के हिन्दी-प्रेमियों का सहयोग चाहिए। फ्रांस सरकार का यहां पर फ्रेंच प्रचार के लिए जो सहयोग प्राप्त है, उसकी चर्चा हम नहीं करना चाहेंगे, लेकिन फ्रांसीसी जनता और संस्थाओं के सहयोग को इस क्षेत्र में हम सबसे महत्त्वपूर्ण मानते हैं। भारत की तरह यहां भी हिन्दी आम आदमी और गरीबों की अभिव्यक्ति की भाषा है। इस अभिव्यक्ति को यहां के मुट्ठी भर लोग एक शक्ति बनने से रोक रहे हैं।

मॉरिशस में हिन्दी के प्रचार-प्रसार को बनाये रखने के लिए, उसके स्तर और अधिकारों को कायम रखने के लिए, उसे आम आदमी का सशक्त हथियार बनाये रखने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता एक हिन्दी पत्र की है; एक सार्थक-सशक्त हिन्दी पत्र ही इस देश को दफनाये जाने से रोक सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४

भारत कब हिन्दी बोलेगा ?

२६ अप्रैल, श्रीमती विद्या चौधरी का पत्र—'ये दिखावे का शहर और गांव की लड़की' पढ़ने को मिला। बिहार के गांव से आयी हुई उस नवेली की व्यथा को मैं भी दिल्ली में कई बार झेल चुका हूं। उस पत्र को पढ़कर उस दर्द को फिर से मानसिक स्तर पर भुगत रहा हूं। सच पूछा जाए तो यह दर्द सिर्फ दिल्ली ही नहीं देती, बल्कि भारत के सभी शहरों से मैंने यह सौगात पायी है। भारत की नयी संस्कृति की इस चुभन को वे सभी विदेशी भी झेलते रहे हैं, जो अपने देशों से हिन्दी में बात करने की चाह लेकर भारत पहुंचते हैं।

श्रीमती विद्या चौधरी की तरह इस नरक को भारत के बेशुमार लोग जी रहे हैं। लाखों लोगों के प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते। उनकी फरियाद, अधिकारों की मांग, सभी कुछ अनसमझी चली जा रही है। बड़े लोग जो अधिकार बख्शते हैं उन्हें अगर हिन्दी आने लग जाए तब तो इसका यह मतलब हो जाएगा कि सर्वहारा की हर मांग समझी जा रही है और उसके पूरे किये जाने की संभावना पैदा हो जाती है। हिन्दी को स्वाभाविक रूप से विकसित होने देने का अर्थ होगा—आम आदमी की आवाज़ को बुलंदी देना। पूंजीवादी यंत्र को यह कैसे स्वीकार हो सकता है !

लगता है, विद्या चौधरी के आजाद देश को अभी सचमुच आजाद होने में समय लगेगा। भारत की अपनी हाल की यात्रा के बाद मैं अपने देश लौटा हूं, भारत के संदर्भ में एक नये प्रश्न के साथ—क्या भारत में हिन्दी बोलने वालों को अपने सुने-समझे जाने और बोलने का अधिकार है ?

हम मॉरिशस वालों को भारत में हर ठौर पर यह दाद मिलती रही है कि वाह-वाह, आप लोग मॉरिशस में हिन्दी की बहुत सेवा कर रहे हैं। यह शाबाशी बंबई, दिल्ली, पटना, आगरा, बनारस, कलकत्ता, यहां तक कि मद्रास में भी मिलती रही है। अपनी हाल की यात्रा में इस कपटी अभिनंदन से ऊबकर मैं हिन्दी के उस महारथी से पूछ ही बैठा कि ठीक है, हम तो वहां हिन्दी के लिए जी-भर रहे हैं, पर आप लोग यहां क्या कर रहे हैं ? यह प्रश्न मैं इसलिए कर बैठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि बनारसी अंदाज में पान चबाता हुआ वह आदमी मेरे हर हिन्दी वाक्य का उत्तर अंग्रेजी में दिये जा रहा था। बाद में पता चला कि हिन्दी की बदौलत वह व्यक्ति विधान सभा का सदस्य बन बैठा था।

'साहित्य अकादेमी' की दावत पर मैं 'प्रेमचन्द की भारतीयता' पर एक अंतरराष्ट्रीय गोष्ठी में अपने विचार व्यक्त करने के लिए आमंत्रित था। प्रेमचन्द की भारतीयता को मुझसे अंग्रेजी में कहलवाया गया। वह केवल राजेन्द्र यादव थे जो उसी भाषा में बोल गये, जिसमें उनकी मर्जी रही। जीवन में पहली बार मुझे अतिथि होने का दुख हुआ। उस सम्मेलन में कोई दस देशों से हिन्दी विद्वान बुलाये गये थे—अंग्रेजी में बोलने के लिए। सभी विदेशी जब आपस में बोल रहे थे तो उनके लिए संपर्क और अभिव्यक्ति की भाषा हिन्दी थी, पर जब उनको भारतीय प्रतिनिधि से बोलना पड़ रहा था, उस वक्त अंग्रेजी का सहारा लेना उनके लिए अनिवार्य हो जाता था। इससे करारा व्यंग्य और हो ही क्या सकता है! इस मनोवृत्ति का एक दूसरा रूप और भी है—मॉरिशस में शायद ही दस आदमी मिले जो रूसी, चीनी या अफ्रीकी भाषा समझ पाते होंगे, लेकिन जब भी इन देशों के कोई नेता या प्रतिनिधि अपने देश की आजादी या किसी ऐसे ही अवसर पर स्थानीय रेडियो-टेलीविजन पर बोलते हैं, तो अपने देश की भाषाओं में। बस एक भारतीय प्रतिनिधि ही ऐसा होता है, जिसे अपने देश की भाषा में बोलते हुए लाघव भावना महसूस होती रही है। वे जब भी बोले हैं, आत्मगौरव अनुभव करनेवाली बोली में बोले हैं। भला एयर इंडिया वाले हिन्दी क्यों बोलें! बस, हाथ जोड़कर व्यावसायिक नमस्कार और मुस्काने ही में उनकी पहचान और पूरी भारतीयता निहित है। इससे यात्रियों का कल्याण ही होता है। पिछली बार—'थोड़ा-सा पानी ला दीजिए' के अनुरोध पर मुझे तीन सवाल मिले थे—"बेग योर पार्डन, एक्सक्यूज मी, सॉरी।" मेरे अपने देश में मुट्ठी भर चीनी हैं, सभी की दूकानें हैं, पर एक भी ऐसी दूकान आपको नहीं मिलेगी, जिसपर दूकान का नामपट्ट चीनी भाषा में न हो। सात समन्दर पार, गैरभाषियों के बीच भी अपनी राष्ट्रीय पहचान को बनाये रखने का इससे बड़ा संकल्प और हो ही क्या सकता है!

हिन्दी से अपनी जीविका पानेवाले ये हिन्दी फिल्मवाले हिन्दी बोलते हैं क्या? इन्हें तो हिन्दी से उबकाई आती है। ये चाहे बेटे किसी महान हिन्दी रंगकर्मी के हों, चाहे महान् हिन्दी कवि के—बोलते तो अंग्रेजी में ही हैं। हिन्दी तो बस 'डायलॉग' बोलने के लिए है। एक बिहारी अभिनेता ने तो मुझसे यहां तक कहा कि हिन्दी बोलने से आउट-डेटेड होने का खतरा होता है।

हिन्द के नाम पर करोड़ों खर्च करके विश्व-परिक्रमा कर लेना आसान हो सकता है, पर हिन्दी को अपना सही दर्जा दिला सकना शायद बड़ा कठिन है। तभी तो आज हिन्दी के वोट लेकर भी हिन्दी की दुहाई देनेवाले हिन्दी को पत्नी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेयसी और मां वाला प्यार न देकर उसे वेश्या का क्षणिक प्यार दिये जा रहे हैं।

मैंने भारत में हिन्दी को आज भी फुटपाथ पर सोते पाया। रेडियो-टेलीविजन के हिन्दी विभाग से लेकर बैंक, दफ्तर, सांस्कृतिक केंद्रों में हर जगह अंग्रेजी बोली जाती है। अंग्रेजी शायद इसलिए भी बोल ली जाती होगी, क्योंकि अपने से छोटों पर उन्हीं की भाषा बोलकर धाक जमाना शायद कठिन हो; और फिर अपने को थोड़ा-सा अलग बताना भी तो जरूरी होता है।

भारत के हिन्दी परिवारों में भी मैंने किसी भी पति की पत्नी नहीं देखी, न किसी भाई की बहन, न चाचा, न चाची। सभी पतियों की वाइफ है, भाइयों की सिस्टर और भतीजों के अंकल-आंटी। चाय में दूध और चीनी भी नहीं डाली जाती, मिल्क और शुगर से काम चला लिया जाता है। और फिर क्यों नहीं, विदेशी माल का 'क्रेज' भारत की विशेषता भी तो है! अब तो हिन्दी बोल लेनेवाले होटलों के बेयरे और चपरासी भी अंग्रेजी की रट लगाये रहते हैं—'साब, गुड मॉर्निंग! साब, ब्रेकफास्ट? साब, लंच? साब सर्विस? शू शाइन, साब''···।

अंग्रेजी का यह मोह केवल हिन्दी का बहिष्कार नहीं है, यह गांधी, नेहरू, रवीन्द्र ठाकुर तथा पूरी भारतीय मानसिकता की अवहेलना है—अपनी अस्मिता, अंदरूनी शक्ति और गरिमा की नीलामी है यह। विश्व के दस कोनों से भारत पहुंचे हुए हम विदेशियों ने एक-दूसरे से विदाई ली, यह कहकर—"उम्मीद रखें, हमारी अगली भारत-यात्रा तक भारत हिन्दी बोल पाएगा!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघु कथाएं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघु कथाएं

एक बार श्रीमान बुद्धू अपने नये घर के लिए एक दीवार-घड़ी खरीदने घड़ियों की दूकान में पहुंचे। एक सौ पचपन रुपये में एक बड़ी-सी दीवार-घड़ी खरीदने के बाद उनकी नजर कलाई-घड़ियों पर पड़ी। अपनी खरीदी हुई बड़ी-सी दीवार-घड़ी के पैसे चुकाने के बाद उन्होंने दूकानदारों से कहा—

"मैंने इतनी बड़ी घड़ी आपके यहां से खरीदी है, इसलिए 'आप यह छोटी-सी घड़ी मुझे भेंट कर सकते हैं ?"

दूकानदार ने हंसकर कहा—

"भाई साहब, इस छोटी घड़ी की कीमत सात सौ पचास रुपये है !"

बस, इसी छोटी-बड़ी के अन्तर में मेरी कुछ लघु कथाएं भी आ जाती हैं। यहां अपने लघुकथा-संग्रह 'इंसान और मशीन' से कुछ छोटी कहानियां दे रहा हूं जो सही माने में उस छोटी-सी घड़ी के समान हैं, जिसे कोई भी भोलाभाला ग्राहक मुफ्त में पा लेने की प्यास लगाये होता है। 'इंसान और मशीन' की अपनी कुछ लघु कथाएं तो मैं मुफ्त में कई सम्पादकों और प्रकाशकों को दे चुका हूं। लेकिन उन्हें वे ही कथाएं दी हैं जो चुटकुले से आगे नहीं बढ़ीं। ये जो चन्द कथाएं चुनकर आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूं, इन्हें आप बड़ी घड़ी के सामने छोटी घड़ी समझें !

लघु कथाओं का इससे लम्बा विज्ञापन और क्या चाहिए !

हां, तो एक बात के लिए आपको सावधान कर दूं। इन्हें आप खुली आंखों से पढ़कर सुस्त दिमाग से इनकी जुगाली कर लेंगे तो ये हजम हो जाएंगी, लेकिन अगर आप आंखें बन्द करके दिमागी चेतना के साथ इसे चबाएंगे तो ये तेजाबी प्रमाणित होंगी।

बस, पसन्द आपकी है !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१

अखबार

वह अखबार मन्त्रीजी के पैसों से निकलता था। खपत कम होने के कारण हर महीने मंत्रीजी को कुछ पैसे जेब से निकालने ही पड़ते थे। इस बात का उन्हें दुख नहीं होता था, क्योंकि 'स्वराज्य' मन्त्री के लिए अपनी प्रतिष्ठा थी। वह तो जेब से कुछ और भी खर्च करके पत्र को चलाता। पाठशालाओं के वार्षिकोत्सवों और गांवों की मीटिंगों में वह चिल्ला-चिल्लाकर कहता कि बहुत भारी हानि के बावजूद वह 'स्वराज्य' को बंद नहीं होने दे रहा है। वह खुद पूछता—क्यों? और खुद उत्तर देता—क्योंकि हिन्दी हम सभी की भाषा है। इस भाषा के पत्र को घर का आटा गीला करके भी चलाना ही मर्दानगी है। लोग गद्‌गद होकर ताली बजा उठते। मंत्री का स्वर और भी ऊंचा हो जाता—'स्वराज्य' के माध्यम से हमें मानव अधिकारों को सुरक्षित रखना है। मजदूरों के हक के लिए आवाज़ लगानी है।···

उस दिन गांव के चार-पांच युवक मंत्री से मिलने के लिए तीन घंटों से आंगन में खड़े थे। आधा घंटा तो उन चारों को चपरासी को यह विश्वास दिलाने में लगा था कि पिछले चुनाव में उन्होंने मंत्री के लिए खून-पसीना एक कर दिया था।

उस युवक को ज़ोर की प्यास लगी और वह डरते हुए फुलवारी की ओर बढ़ा, जहां नल के पानी से कैक्टस सींचे जा रहे थे। उनका वहां तक पहुंचना था कि मंत्री का वह अल्लशेसन कुत्ता उस पर झपट पड़ा। इससे पहले कि युवक पीछे को हटता, कुत्ते ने अपनी बत्तीसी को उसकी जांघ में धंसा ही दिया। दर्द से चिल्लाकर युवक ने अपने पैर को इस तरह झकझोरा कि कुत्ता सामने के कैक्टस में जा गिरा। इधर युवक की जांघ से खून की धारा बह चली, उधर कुत्ते की आंख में कैक्टस का एक कांटा चुभ गया।

'स्वराज्य' का एक सम्वाददाता मंत्रीजी से इण्टरव्यू के लिए वहीं उपस्थित था। उसने झट कुत्ते की तस्वीर ले ली। दूसरे दिन स्वराज्य के प्रथम पृष्ठ पर वह तस्वीर आयी और उसके साथ के लेख का सार कुछ इस तरह था—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मंत्री के भोले-भाले कुत्ते को गांव के एक जंगली युवक ने बेरहमी के साथ लात मारकर उसकी एक आंख फोड़ डाली।'

उस लेख की बगल में था मंत्रीजी का चित्र और इन्टरव्यू का मोटा-सा शीर्षक—पानी की समस्या हल होकर रहेगी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

मशीन की मृत्यु

ईख की कटाई के वक्त खेतों की रमणीयता पराकाष्ठा पर होती है।

इस समय भी वही बात थी। कोलाहल में अंगारे की पुलियां बटोरने वाली औरतों की आवाज़ें अधिक तेज़ थीं। सोनालाल को हमेशा बहुत अच्छा लगनेवाला कोलाहल आज तनिक भी नहीं भा रहा था। पसीने की मोटी बूंदें उसके माथे पर चमक-चमककर गाल के रास्ते बही जा रही थीं। पसीने का नमकीन स्वाद उसकी प्यास को बढ़ाये जा रहा था। कल वह अपनी पत्नी को अस्पताल में दाखिल करवा आया था। डॉक्टर ने सोनालाल को भी अनेमियाग्रस्त बताया था। इस पर सोनालाल हंसकर रह गया था। उसे कैसे अनेमिया हो सकता था ! इस बार तो खेतों में इस छोर से उस छोर तक हरियाली छायी हुई थी। ईखों का रंग हद से ज्यादा रस के कारण अधिक जामुनी दीख रहा था। भला सोनालाल को अनेमिया कैसे हो सकता था ! पिछले वर्ष जब पूरे खेत में अनेमिया था, जब गन्ने के पत्ते पीले थे, गन्ने रसहीन, दुबले-पतले थे, उस वक्त जब सोनालाल को अनेमिया नहीं हुआ तो इस बार की हरियाली में उसे ऐसा क्यों होने लगा ! उसने मन-ही-मन सोचा डॉक्टर की आंखों में ही पीलापन होगा !···

सभी इस वर्ष को समृद्धि का वर्ष बता रहे थे। दो दिन पहले खेत के मज़दूरों की एक बैठक में यह बात चल पड़ी थी कि मालिकों और पूरे देश की समृद्धि हमारे लिए भी समृद्धि क्यों नहीं बन पाती ? हमारे लिए गहन हरियाली भी सुखारी होती है, ऐसा क्यों ? उनका जो पारिश्रमिक सुखारी में कम हो जाता है, वह हरियाली में बढ़ क्यों नहीं पाता ? इन प्रश्नों का उत्तर कहीं-न-कहीं जरूर होगा, पर उनको वहां उठाये तो कौन ! पन्द्रह मिनट पहले सरदार के बाद कोठी का मालिक भी स्टेरियो-टाइप खरी-खोटी सुनाने के बाद सामने से निकल गया था। आज की उसकी एक बात सोनालाल को लग गई थी।

सूरज सिर के ऊपर आ चुका था। थकान कोलाहल को शिथिल कर दिया था। ईख की कटाई की रफ्तार बराबर चल रही थी। हड्डियों तक को चुभ जाने वाली गर्मी थी। सोनालाल का पूरा शरीर पसीने से लथपथ था जो उसके शरीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को कुछ ठंडक पहुंचा रहा था। उस कड़ाके की धूप में अकुलाहट पैदा कर देनेवाली गर्मी में सोनालाल को अनायास ही ठंड लगने लगी। उसके हाथ की स्फूर्ति कम होती गई। ईख काटने वाले बाकी मज़दूर आगे निकल चुके थे। निस्तब्धता छाने लगी थी। सोनालाल को अपनी अनेमिया से पीड़ित राधिका की याद आयी फिर तीन महीने पहले मरे हुए उसके बच्चे की भी याद आयी···उसे कई यादें आयीं।

लोगों को सोनालाल का ख्याल नहीं रहा। ईख के घने खेतों के बीच वह कटे हुए जामुनी गन्नों पर पड़ा रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३

जीवित मुर्दा

यमराज को आश्चर्य हुआ। मन्त्री के उसकी कुर्सी के साथ पहुंचने पर वह आश्चर्य नहीं हुआ था, बल्कि मन्त्री के साथ-साथ एक चपरासी को भी यमलोक में देख उसने दूत से प्रश्न किया—

"यह क्या अनर्थ कर दिया तुमने! मन्त्री अपनी मृत्यु के बाद भी अपनी कुर्सी को न छोड़ना चाहता हो, इस बात को तो मैं समझ रहा हूं। हालांकि यमलोक का यह कानून नहीं है कि मरनेवाला अपने आसन को भी लिये यहां पहुंचे; पर मन्त्री के साथ यह रिआयत हो जाती है, कोई हर्ज नहीं! लेकिन···

"लेकिन क्या, महाराज?" दूत ने घबराये हुए स्वर में पूछा।

"इस चपरासी को तुम उसकी मृत्यु से पहले क्यों उठा लाये?"

"बेबसी थी, महाराज!"

"बेबसी कैसी? इस चपरासी के आयु-पत्र के अनुसार तो अभी इसे और तीन वर्ष धरती पर रहना है।"

"मैं जानता हूं, यमराज!"

"तो फिर जानकर भी इतनी बड़ी भूल तुमने कैसे की?"

"बात यह है यमराज, कि अगर आप आयु-पत्र को नीचे तक पढ़ेंगे तो बात साफ हो जाएगी।"

"तुम बताओ, बात क्या है?"

"बात यह है यमराज, कि इस चपरासी की मृत्यु मन्त्रीजी की कुर्सी के उस पर गिर जाने से लिखी हुई है। मन्त्रीजी की कुर्सी तो यहां आ गई। लाख चाहकर भी हम उसे वहां नहीं छोड़ सके। अब आप ही बताइए, अगर कुर्सी यहां और चपरासी वहां रहता है तो विधि का लिखा झूठ नहीं हो जाएगा! जब चपरासी को मरना ही है तो यहां भी मर सकता है।"

"तुम्हारा मतलब है कि मन्त्री और उनकी कुर्सी के कारण इस गरीब को तीन वर्ष जीवित मुर्दा रहना होगा?"

"धरती पर तो ऐसा ही होता है, महाराज!"

यमराज से कोई उत्तर नहीं बन पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४

एकलव्य

यह पढ़कर हैरानी जरूर हुई होगी कि एक जंगली लड़के ने किसी की मूर्ति से धनुष-विद्या का ज्ञान पा लिया था और फिर खुशी-खुशी उसने अपना अंगूठा उस गुरु को भेंट कर दिया था। आपकी हैरानी सही है, क्योंकि कथा के सही रूप को आपसे छिपा लिया गया है, इसलिए कि बेचारा एकलव्य एक राजनीतिक षड्यन्त्र का शिकार हो गया था। सही कहानी यूं है—

एक दिन युद्ध-प्रशिक्षण के दौरान अर्जुन का अंगूठा कट गया। पाण्डवों के बीच खलबली मच गई, क्योंकि दूसरे दिन धनुष-विद्या की प्रतियोगिता होनेवाली थी। द्रोणाचार्य के सामने अंधेरा छा गया···अगर अर्जुन प्रतियोगिता में अव्वल नहीं आया तो प्रश्न मानहानि का था। इमर्जेन्सी बैठक लगी। तय हुआ कि दस घंटे के भीतर अर्जुन के हाथ पर कहीं से अंगूठा लाकर जोड़ देना चाहिए। अंगूठा एकदम उसी तरह का और सही नाप का होना चाहिए था। घंटे भर की दौड़-धूप के बाद तीन अंगूठे मिले जो सही उतरे। एक तो खुद द्रोणाचार्य का था, दूसरा दुर्योधन का अंगूठा और तीसरा था एक जंगली लड़के का, जिसका नाम एकलव्य था। प्रश्न खड़ा हुआ—द्रोणाचार्य की पोजीशन और पाण्डवों की इज्जत के लिए कौन अपना अंगूठा देने को तैयार था? दुर्योधन ने तो साफ कह दिया कि उसका अंगूठा इतना सस्ता नहीं कि वह दूसरे के लिए उसे कटवा दे। द्रोणाचार्य ने कहा—

"मैं तो बूढ़ा हो चला हूं। अंगूठा देने को तैयार हूं, परन्तु मुझे इस अंगूठे से आगे चलकर बहुत बड़ा काम करना है। इसी अंगूठे से मतदान देकर मुझे राजनीतिक पलड़े को संतुलित रखना है।"

बस, अब तो एक ही अंगूठा रह गया था सामने—एकलव्य का। काफी देर तक सोचते रहने के बाद द्रोणाचार्य ने दलील पेश की—

"अशिक्षित लोगों के पास अंगूठे का होना राज्य के लिए बहुत बड़ा खतरा होता है। मतदान के वक्त वे इससे अनर्थ कर जाते हैं!"

लोग तुरन्त जंगल में पहुंचे। द्रोणाचार्य ने आगे बढ़कर एकलव्य से कहा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"राज्य के नाम पर हमें तुम्हारा अंगूठा चाहिए।"

"मैं अपना अंगूठा क्यों देने लगा ?"

"तुम्हारे अंगूठे पर राज्य का पूरा अधिकार है !"

दो आदमी आगे बढ़े और देखते-ही-देखते एकलव्य का अंगूठा काट लिया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५

उद्घाटन

रावण ने आदेश देकर मेघनाद और कुंभकर्ण को अपने पास बुलवाया। आंखों से अंगारे बरसाते हुए उसने चिल्लाकर कहा—

"किस काम के लिए तुममें से एक मेरा बेटा, दूसरा मेरा भाई होते हुए भी मेरे सेनापति बनाये गए हो?"

दोनों सिर झुकाये खड़े रहे।

"तुम्हारे होते हुए वानरों ने सागर पर कन्याकुमारी से लेकर लंका तक सेतु बना डाला। अब राम को यहां पहुंचने से कौन रोक सकेगा? तुम उन्हें रोक न सके तो क्या सबोटाज भी नहीं आता तुम्हें? मैं चाहता हूं कि इसी वक्त उस बांध को उड़ा दिया जाए। इसके लिए अगर लंका के सभी डाइनामाइट का उपयोग करना पड़ जाए तो भी कोई हर्ज नहीं, बशर्ते कि बांध उड़ा दिया जाए!"

आदेश पाकर मेघनाद और कुंभकर्ण सेना सहित बांध की ओर दौड़ पड़े। तीन दिन के भगीरथ प्रयत्न के बाद हांफते हुए दोनों रावण के दरबार में पहुंचे।

"बांध क्यों नहीं उड़ा?" रावण ने कड़ककर पूछा।

"यह नितान्त असम्भव है, महाराज!" मेघनाद ने सहमकर कहा।

"असम्भव क्यों?"

"यह बांध कुंभकर्ण के कॉन्ट्रेक्टर ने नहीं बनाया, बल्कि नल और नील ने अपनी देखरेख में बनवाया है। और फिर इसमें जिस सीमेंट का प्रयोग हुआ है। उसमें किसी तरह की मिलावट नहीं।"

यह सुनकर रावण और भी आग-बबूला हो गया। अपने पैरों को जमीन पर पटकते हुए उसने पूछा—

"तो फिर किसी भी हालत में इस बांध को चकनाचूर नहीं किया जा सकता?"

"बस एक ही उपाय था···"

"वह क्या?"

"अगर सुग्रीव का कोई मंत्री उसका उद्घाटन कर देता, तब तो वह एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही विस्फोट के धमाके के साथ सागर में मिल जाता।"

"तो फिर यह उद्घाटन कब हो रहा है?"

"राम के कह देने पर कि प्रजा के सिर किसी भी तरह की फिज़ूलखर्ची अन्याय है, यह प्रश्न उठता ही नहीं!"

"उद्घाटन नहीं होगा?"

"अब क्या होगा, जबकि राम वानर-सेना के साथ उस पर चल पड़ा है।"

रावण चिल्लाता हुआ खड़ा हो जाता है और दोनों महारथी सहमकर सिर झुका लेते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६

दूध

उसका नाम धनिया था, पर वह गरीबों में गरीब थी। जिस बड़े घर मे उसे नौकरी मिल पायी थी, वह इलाके का सबसे धनी ज़मींदार था। नौकरी उसे इस शर्त पर मिली थी कि वह उसी घर में रहकर काम करे और महीने में केवल एक बार अपने घर जाए। उसे शर्त माननी ही पड़ गयी थी, क्योंकि अपने छोटे-से परिवार को भूख से बचाने के लिए उसके सामने कोई दूसरा चारा था ही नहीं। उसके पति की अकस्मात् बीमारी ने उस परिवार को कहीं का नहीं छोड़ा था।

उस बड़े-से घर में उसे छोटा-सा जो काम करना था, वह कुछ अजीब-सा था। ज़मींदार के बड़े बेटे की पत्नी शारीरिक लावण्य में बेमिसाल थी। उसका पति, जिसका सारा समय सेक्स सम्बंधी पुस्तकें पढ़कर बीतता था, अपनी पत्नी को उन सभी औरतों से कुछ अधिक ही प्यार करता था, जिनके साथ खेतों की तनहाई में वह मनमानी करने और उनकी बेबसी का नाजायज फायदा उठाने का आदी था। अपनी खूबसूरत पत्नी को कुछ अधिक चाहने के कारण वह यह नहीं चाहता था कि किसी हालत में उसका शारीरिक लावण्य घट जाए। वह तो यह भी नहीं चाहता था कि उसका कोई बच्चा पैदा हो; पर होनी को कौन रोक सकता है! चांद पर पहुंचनेवाले और हृदय का प्रतिरोपण करनेवाले भी ऐसा नहीं कर पाते। बच्चे के जनम जाने पर भी उसे अपनी पत्नी के शरीर और उसकी सुन्दरता का ख्याल बना रहा। उसे यह तनिक भी गवारा नहीं था कि बच्चे को दूध पिलाकर उसकी पत्नी अपने गोल-सख्त उरोजों को विगाड़ डाले, इसीलिए धनिया को नौकरी पर रख लिया गया था। धनिया के उरोज दूध से भरपूर थे। उसका काम बच्चे को पांच वक्त दूध पिलाना था—अपना दूध। क्योंकि जमींदार के बेटे को डिब्बे के दूध पर कभी विश्वास नहीं था।

जमींदार के बच्चे को दूध पिलाते समय उसे हर वक्त अपने बच्चे की याद तड़पा जाती, जिसे वह अपनी सास की गोद में छोड़ आयी थी। उसे केवल बच्चे को प्यार न कर पाने का दुख था, उसको दूध न पिला पाने का नहीं। क्योंकि वह जानती थी कि उसका बच्चा तो गरीब घर में जनमा है। और गरीब बच्चे तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साबूदाने और इधर-उधर के पानी से भी पेट भर लेते हैं। जिस गैर बच्चे को तीस रुपये माहवार के लिए वह दूध पिलाती थी, वह दिन-ब-दिन स्वस्थ डील-डौल और गुलाबी रंग का होता गया था। वह सोचती—उसका अपना बच्चा भी, जोकि इसी बच्चे का हमउम्र था, इसी तरह का हो गया होगा!···

महीने बाद वह घर लौटी। अपनी बावली ममता को न रोक पाने के कारण उसने किसी पागल की तरह अपने बच्चे को सीने से चिपका लिया। उस गर्मी का आदी न होने के कारण बच्चा रो पड़ा। धनिया ने अपने चूसे हुए स्तन को उसके मुंह में पहुंचाया, पर उस स्वाद से अनभिज्ञ बच्चे ने मुंह हटा लिया। धनिया अपने बच्चे को सांवला छोड़ गयी थी। उसके चेहरे के पीलेपन को गोरापन समझ वह अगाध प्यार के साथ उसे देखती रही—कल जो अनहोनी होनेवाली थी, उससे एकदम अनभिज्ञ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७

भय की खोज

"भय ? भय क्या है ? कैसा होता है ?"

ये प्रश्न वह अपने आप से पूछता और लोगों से भी। कुछ लोग सचमुच ही उसे भोला जान, उसके हाथों में वेम्पायर, ड्रॉकुला, फ्रॉकिंइस्टन की पुस्तकें रख देते। वह उन्हें पढ़ता और उनमें भी कहीं भय नामक चीज न पाकर वह उसे ढूंढ़ने आधी-आधी रात खण्डहरों और श्मशानों की ओर दौड़ जाता। वही निराशा उन स्थानों पर भी होती। एक दिन वह पुस्तकों के शब्दों में खोकर भूत और डर को अपने ही मस्तिष्क के अंधेरे कमरों में ढूंढ़ता रहा। पर कहीं भी भय का नामोनिशान उसे न मिला।

वह चित्रकार था। वह जीवन की प्रायः सभी क्रिया-प्रतिक्रियाओं को अपने कैनवस पर ला चुका था। कमी थी तो केवल भय की। वह इस कमी की पूर्ति के लिए बावला था। मुड़िया पहाड़ की एक बस्ती में छोटा-सा घर था। उस घर के कारण लोग पूरी जगह को भूतिया-खाड़ी कहते थे। बहुत-से लोग उस बस्ती को छोड़कर चले गये थे और कुछ लोग वहां की चीज़ों से आदी होकर अब भी वहां रह रहे थे। सभी घरों से अलग उस घर में अठारह वर्ष की एक जवान लड़की ने फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली थी। लोग कहते कि उस घर में साक्षात् भय का निवास है। यही कारण था कि वह अपनी चित्रपटी और रंग-तूलिकाएं लिये उस वीरान घर में पहुंचा था।

उसे यह भी सुनने को मिला था कि इस घर में रहनेवाले आधे लोग रात को उठ भागते हैं। किरोसिन लैम्प की क्षीण ज्योति में वह अपने हाथ में तूलिका और रंगों का पातेल लिये ईज़ल के सामने खड़ा रहा। वह आशा रखता था कि इस घर की चारदीवारी में वह भय को देख सकेगा और आज उसका चित्र बनाकर ही रहेगा। दीया धूमिल प्रकाश के साथ जलता रहा। बाहर से हवा की सांय-सांय की आवाज़ आती थी। बाहर शायद वर्षा भी हो रही थी। वह ईज़ल के सामने खड़ा प्रतीक्षा करता रहा। ठीक सामने दीवार पर धूमिल शीशा था। रात बीतती गयी।

रात बीतती गयी और बीतकर रही।

सुबह कुछ लोगों ने दरवाज़ा खोलकर भीतर प्रवेश किया। फ़र्श पर कलाकार का शव था और कैनवस पर था उसका अपना ही चेहरा—भय की अमर कृति !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८

फार्मूला

उसके लिए ऑपरेशन अनिवार्य था; पर हर बार उससे यही कहा जाता था कि ऑपरेशन-लिस्ट में उससे पहले के बहुत नाम हैं, उनके बाद ही उसकी बारी आएगी। उसने अपने दर्द को सहते हुए बात मान ली थी और अपनी बारी की बेसब्री से प्रतीक्षा करता रहा। अस्पताल की चारपाई पर उसका तीसरा महीना होने को था। एक दिन जब उसने एक मरीज को दाखिल होने के दूसरे ही दिन ऑपरेशन-रूम को जाते पाया तो हैरत में पड़ गया।

"यह मरीज तो कल पहुंचा है। तो फिर लिस्ट में इसका नाम मेरे से पहले कैसे आ गया?" वह बेसब्री में बोल उठा।

परिचारक ने अपने होंठों पर अंगुली रखकर उसे चुप रहने का इशारा करते हुए कहा, "तुम्हें मालूम नहीं, यह व्यक्ति मंत्रीजी का दामाद है!"

इसी तरह दो और आदमी आते ही ऑपरेशन को चले गये थे। लखन सभी कुछ देखता-सहता चुप रहा।

इस बार एक मरीज के दाखिल होने के तीसरे ही दिन जब उससे ऑपरेशन के लिए तैयार होने को कहा गया तो लखन अपने पेट के दर्द से चिल्ला रहा था। किसी तरह नये मरीज के पास पहुंचकर उसने कहा।

"भैया, तुम मिनिस्टर साहब के कुछ लगते हो, मेरे ऊपर भी कृपा करवा दो।"

और जब उसे मालूम हुआ कि वह आदमी मिनिस्टर का कोई नहीं लगता था, तो उसने यह जानना चाहा कि आखिर किस उपाय से वह लिस्ट में अव्वल आ गया। नये मरीज को उसकी हालत पर दया आ गयी, उसने उसे उपाय बता दिया।

शाम को काले फ्रेम की ऐनकवाले डॉक्टर के आने पर लखन ने हंसकर कहा कि अब वह अच्छा हो चला है, उसे घर जाने की आज्ञा चाहिए। एक चारपाई पर दो मरीज लेटे हुए थे, इसलिए डॉक्टर ने आनाकानी नहीं की, झट डिस्चार्ज-पेपर पर दस्तख़त कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे दिन लखन काले फ्रेम की ऐनकवाले डॉक्टर के घर पहुंचा, जहां पहले ही से मरीजों की भीड़ थी। डॉक्टर ने उसे देखा। उसे हैरानी हुई, फिर भी मुस्करा दिया। लखन ने जेब से दो लिफाफ़े निकाले। एक में पच्चीस रुपये की फीस थी, जिसे लखन ने गिना, फिर दूसरे बन्द लिफाफे के साथ डॉक्टर के हाथों पर रख दिया। डॉक्टर ने तुरन्त एक कोरे कागज पर कुछ लिखा और उसके हाथ पर रखते हुए कहा, "कल नौ बजे अस्पताल के कन्सलटेशन-रूम में आ जाना।"

ठीक नौ बजे लखन वहां था। दस बजे वह अस्पताल के उसी वार्ड में दाखिल हुआ, जिसमें पहले तीन महीने रह चुका था। दूसरे दिन ठीक दस बजे पहियेवाली आरामकुर्सी पर बैठाकर उसे ऑपरेशन-थिएटर की ओर ले जाया जा रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९

नचिकेता

मन्त्री को सोफे पर झपकियां आ रही थीं कि तभी दरवाजे पर जोरों की खट-खटाहट हुई। उसने संभलकर बैठते हुए पूछा, "कौन है?..."

कोई उत्तर न पाकर वह सोफे से उठा, दरवाजे तक पहुंचा। उसके खुलने पर उसने अपने सामने एक नवयुवक को खड़े पाया। झुंझलाहट के साथ उसने पूछा, "कौन हो तुम?"

"आपकी प्रजा।"

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"नचिकेता!"

"क्या चाहिए?"

"मैं आपसे मृत्यु का रहस्य पूछने आया हूं।"

"तुमने मुझे यमराज समझा है?"

यह कहकर मन्त्री ने दरवाजा बन्द कर लिया।

खटखटाहट फिर से हुई। उसने उसी झुंझलाहट के साथ दोबारा दरवाजा खोला। सामने नचिकेता उसी तरह दीन हालत में खड़ा था।

"कहा न, मैं यमराज नहीं! मृत्यु के बारे में कुछ नहीं बता सकता।"

"तो फिर जीवन के बारे में ही कुछ बता दीजिए।"

मन्त्री ने नचिकेता को ध्यान से देखा—

"ठीक है, भीतर आ जाओ!"

एक मिनट बाद।

"तुम करते क्या हो?"

"मैं कुछ भी नहीं करता, बस पढ़ता हूं।"

"इस समय क्या पढ़ रहे हो?"

"कठोपनिषद् के बाद सॉमरसेट मॉम का रेजर्ज एज पढ़ रहा था। दोनों की कथाएं एक हैं।"

"दुनिया की सभी कथाएं एक हैं। हां, तो तुम जीवन के बारे में जानना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहते हो ?"

"बड़ी कृपा होगी !"

"जीवन का मतलब है आगे बढ़ना—मतदाता से उम्मीदवार, फिर नेता, फिर मन्त्री···प्रधान मन्त्री···फिर···जीवन का मतलब है उससे प्यार, पूरी घनिष्ठता के साथ···जैसेकि अगर कोई सामने की इस कुर्सी को चाहने लगे तो आखिरी दम तक साथ-साथ अपने लोगों का हित···दामादों का···भाई-भतीजों का···जीवन का मतलब है···।"

नचिकेता जोकि सात दिन से मंत्री के यहां प्रवेश पाने के लिए दरवाजे पर बिन खाये-पिए खड़ा था, जीवन के तात्पर्य की सम्पूर्णता को नहीं सुन सका। उसके पैर जवाब दे चुके थे। वह मरकर जमीन पर लुढ़क चुका था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०
समय

यह उस समय की कहानी है, जब किसी दिन एकाएक विश्व की सभी घड़ियां रुक सकती हैं, किसी बहुत भारी धमाके से। यह धमाका प्रशान्त महासागर में किसी बम के विस्फोट से हो सकता है, तो किसी उपग्रह के खण्डित हो जाने से भी। इसके कभी न होने का अति-विश्वास तो किया जा सकता नहीं ! बस उस सम्भावना की ही यह कहानी है, जिस तरह रामराज्य और समाजवाद की सम्भावनाओं पर कई कहानियां हैं।

घड़ी क्या रुक गयी थी, विश्व की प्रगति रुक गयी थी।

मन्त्री अपने कमरे में चहलकदमी करता रहा। भोज में उसे सभी अतिथियों के दो मिनट बाद और गवर्नर से दो मिनट पहले पहुंचना था। क्या करे !

बिजली की भट्ठी के भीतर जो रोटी पक रही थी, उसे दस मिनट में बाहर निकल जाना चाहिए—एक सेकेण्ड इधर या एक सेकेण्ड उधर का मतलब होगा, रोटी कच्ची रह जाना या ज्यादा पककर काली हो जाना।

दफ्तर के उच्च अधिकारी ने अपनी रुकी हुई घड़ी की ओर देखा, फिर देर से आनेवाले अफसरों को पर उन्हें यह कहकर डांटने की हिम्मत नहीं हुई कि वे पूरे आधा घंटा देर से आये थे। घड़ी ठीक होने पर तो वह एक मिनट लेट के लिए भी उन्हें खरी-खोटी सुना जाता था।

क्रांतिकारियों के टाइम बॉम्ब का विस्फोट भी नहीं हुआ। बच्चे सुबह खेलते रहे, किसी ने उन्हें यह नहीं कहा कि स्कूल जाने का समय हो चला था।

रेडियो-टेलीविजन से बासी खबरें प्रसारित नहीं हुईं।

जिन दुकानों पर खुलने का नियत समय लिखा हुआ था, वे पट्टियां हटा दी गयीं।

अस्पताल के ऑपरेशन-थियेटर में मरीज को क्लोरोफार्म सुंघाते हुए डॉक्टर को हिचकिचाहट होती रही।

मस्जिद में अजान नहीं हुई। गिरजाघर में सात बजे की प्रार्थना भी नहीं हुई। मन्दिर के घंटे भी नियत समय पर नहीं बजे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन खूनियों की फांसी नहीं हो सकी।

मजदूरों के हित में जो विल पास होनेवाला था, वह नहीं हो सका, क्योंकि ठीक समय पर कोरम पूरा नहीं हुआ।

घड़ी रुकी रही। शिथिलता बनी रही।

फिर भी बच्चे जनमते रहे, मृत्यु होती रही।

मजदूर अपने खेतों में सूरज को देखता हुआ अपने कामों में लगा रहा। उसकी घड़ी को रुकने में अभी समय था। हमेशा की तरह वह नियत समय पर खेत पहुंचा था, नियत समय पर रोटियां खायीं और नियत समय पर ही घर को लौटा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११

प्रमाण-पत्र

अब उसे यह बताया गया कि उसके सभी प्रमाण-पत्रों से अधिक शक्तिशाली एक खरगोश हो सकता है तो बात उसकी समझ में नहीं आयी। यह कैसे हो सकता है? उसने अपने मित्र से पूछा। मित्र ने उसके कानों में बोलते हुए बात उसे समझा दी। इतने पर भी वह उधेड़बुन में पड़ा रहा तो उसके मित्र ने धीरे से कहा—"अरे मुझे अपने प्रमाण-पत्र के बल पर नहीं, खरगोश के बल पर नौकरी मिली है। अन्य लोगों के पास मेरे प्रमाण-पत्र से भी अच्छे प्रमाण-पत्र थे, लेकिन इन सभी से पहले मुझे नौकरी मिल गयी। बस, मैं तो खरगोश को अपना भाग्य-विधाता मानता रहूंगा!"

मित्र की बातों को ध्यान से सुनने के बाद दूसरे दिन से वह खरगोश की तलाश में निकल पड़ा। बहुत दौड़-धूप के बाद उसे खरगोश मिला। दो दिन उसे अपने पास रखकर वह खिलाता-पिलाता रहा। तीसरे दिन उसे लिये मैनेजर के पास पहुंचा। वाक्वा के पत्तों की टोकरी में खरगोश को रखकर उसने टोकरी को ऊपर से पकड़ लिया था। खरगोश भीतर से खुर-खार करता रहा।

चपरासी ने जब उसे रोकने की कोशिश की तो उसने टोकरी के ऊपर से हाथ को थोड़ा-सा हटा दिया और चपरासी ने उसे भीतर जाने दिया। मैनेजर फोन पर किसी से बातें कर रहा था। जिस आदमी को तीन बार दफ्तर से यह कहकर निकाल दिया था कि उस वक्त उसके कारखाने में कोई नौकरी नहीं थी, उसे फिर से ढिठाई के साथ सामने पाकर वह आपे से बाहर हो गया। फ़ोन रखते ही वह उस पर बरस पड़ा, "तुम्हें कितनी बार कहना पड़ेगा कि यहां नौकरी नहीं!"

वह चुप रहा। मैनेजर ने चिल्लाकर कहा, "निकल जाओ यहां से!"

"साहब, मैं नौकरी के लिए नहीं आया…"

"नौकरी के लिए नहीं आये?"

"नहीं।"

"तो फिर?"

"सुना है, आप खरगोश का गोश्त बहुत पसंद करते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"और क्या सुना है तुमने ?"

"मैं आपके लिए एक बहुत सुन्दर खरगोश लाया हूं।"

मैनेजर एक क्षण चुप रहा।

अपनी टोकरी को थामे, कुछ हिम्मत पाकर वह मैनेजर के कुछ अधिक निकट पहुंचा। मैनेजर की आंखें टोकरी के भीतर की चीज को देखने के लिए कुछ ज्यादा ही खुल गयी थीं। वह अपने स्थान से उठकर टोकरी के पास पहुंचा। उसकी आंखें और चेहरे पर एक हल्की-सी मुस्कान आ गयी थी।

"देखूं, कहां है खरगोश ?"

उसके हाथ से टोकरी को पूरे अधिकार के साथ लेकर मैनेजर ने उसके भीतर झांकना चाहा कि तभी खरगोश मौके का फायदा उठाकर बाहर कूद पड़ा।

स्थिति दोनों की समझ में आती कि इससे पहले सामने की खिड़की को फांदता हुआ खरगोश शहर की गलियों में पहुंच गया था।

"यू गेट आऊट फ्रॉम हीयर !"

"मेरी नौकरी साहब ?"

"तुम्हारा खरगोश तो भाग गया।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२

मुट्ठी में बन्द उजाला

उस शाम हमारे घर बिलकुल चावल नहीं था। मां ने कहा था—नहीं हुआ, अच्छा ही हुआ ! उसके लिए तो चूल्हा जलाना ही पड़ता—फिर तो दियासलाई की भी जरूरत होती और…

इसीलिए मां ने खुशी-खुशी मेरे लाये हुए—जंगल से पायी चीजों को चुराना तो नहीं कहा जा सकता—पपीते के चार टुकड़े पहले ही कर दिये थे, हम चारों के लिए।

मेरी बहन नौ साल की थी—मुझसे एक वर्ष बड़ी। उसे पपीता तनिक भी पसन्द नहीं था, पर जोरों की भूख से सताये जाने पर वह कच्चा पपीता भी खा लेती है। मेरा बाप पपीते को हाथ में लिये कहता—भूखे पेट में हवा भर जाने से पपीता तो अमृत का काम करता है। गणेशी महतो भी यही कहते थे कि पपीता स्वास्थ्य के लिए बहुत ही लाभदायक होता है।

छह वर्ष से मेरा बाप चारपाई पर था। इधर कई दिनों से लगातार पपीता खाकर भी उसके स्वास्थ को कोई लाभ नहीं पहुंचा था।

मां का यह सोचना कि चावल के न होने के कारण दियासलाई की कोई जरूरत नहीं थी—गलत प्रमाणित होकर रहा। मेरे बाप को चारपाई पर पड़े-पड़े अंधेरा खलने लगा और उसने रोशनी के लिए आवाज दी। मेरी मां ने खीझते हुए दिया-सलाई के लिए मुझे पड़ोस में भेजा।

पड़ोस में गणेशी महतोजी रहते थे। गणेशी महतो हमको बहुत चाहते थे, मेरी मां को भी। उसके घर का दीया अपनी आखिरी सांस लेता-सा प्रतीत हो रहा था, जब मैं भीतर पहुंचा। मेरे दियासलाई मांगने पर गणेशी महतो ने इधर-उधर देखा। जो डिबिया मिली वह खाली थी, झुंझलाते हुए उसने कोने की बड़ी-सी अलमारी खोली। वह बड़ी-सी अलमारी भी खाली थी, उसमें कुछ भी नहीं था। जब दियासलाई नहीं मिली तो मैंने गणेशी महतो से पूछा, "चाचा, इतनी बड़ी अलमारी ?…"

वह मुस्करा दिया। दीये की टिमटिमाहट-सी थी उसकी मुस्कराहट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"गरीबी रखने के लिए, बेटे ! गरीबी बड़ी चीज होती है। वह छोटी अलमारी में नहीं समा पाती। गुदड़ियों की तरह वह बाहर झांकने लग जाती है।"

गणेशी महतो के उत्तर को अपनी मुट्ठी में लिये मैं अपने अंधेरे घर को लौट आया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्राएं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी यात्राएं

भारत की अपनी पहली यात्रा के दौरान ही मन में आया था कि यात्रा-विवरण लिखने बैठ जाऊं; फिर सोचा कि भारत को पूरा देखना और समझना तो अभी हुआ नहीं, इसलिए इरादे को अगली यात्रा तक के लिए टाल दिया। दूसरी यात्रा के बाद भी सारे विवरणों के साथ लिखने बैठ गया, पर फिर उसी अधूरेपन के एहसास से उस ख्याल को स्थगित कर दिया। ऐसा छः यात्राओं तक होता रहा। बार-बार मेरे सामने यही प्रश्न उठता रहा कि क्या ताजमहल को अद्भुत कह देने से, खजुराहो को कलात्मक घोषित कर देने से और गंगा को पावन-निर्मल करार देने से मेरी यात्रा-पुस्तक पूरी हो जाती है ? सुन्दर को सुन्दर कहते रहने, कलात्मक को कलात्मकता की दुहाई देते रहने और पवित्र के साथ पवित्रता का विशेषण जोड़ते रहने से क्या विशेष हो जाता है ?

इस बीच मैंने कनाडा की यात्रा की; रास्ते में फ्रांस, केन्या, एथेन्स आदि स्थलों पर रुका और इस यात्रा के कुछ संस्मरण जहां-तहां लिख डाले। भारत को यात्राओं पर भी तो वैसा कर सकता था, लेकिन नहीं कर पाया तो केवल इसलिए कि वह बहुत कठिन प्रमाणित हुआ। सातवीं यात्रा के बाद से मैंने कुछ लिखना शुरू किया है। मगर अभी सात यात्राएं और करनी पड़ेंगी, तब जाकर अपनी भारत-यात्रा की पुस्तक को पूरा कर सकूंगा। भारत को समझ पाने की मेरी असफलता का कारण उसका पराया होना नहीं, बल्कि उसका एकदम अपना होना है, और इसी अपनेपन की हैसियत से मैं कोई भी ऐसी बात कहने से चूकना भी नहीं चाहता जो शिष्टता की द्विविधा लिये हुई हो।

मेरे अपने भारत की महानता, उसकी इस महानता के मात्र गुणगान से कहीं अधिक उस महानता के इर्द-गिर्द मंडराते उन दीमकों की कतारों की चर्चा में भी है।

खैर, उसके पूरे होने में तो अभी सात यात्राओं का फासला है।

यहां जिस पहले अध्याय को प्रस्तुत कर रहा हूं, वह भारत के एक शहर का आंशिक वर्णन है, जहां भारतभूमि का पहला स्पर्श मुझे मिला था। और फिर भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में दर्शनीय स्थलों से अधिक सुन्दर मुझे भारत के लोग लगे हैं। सुन्दरता के वणन में मेरे चूक जाने का अर्थ, सुन्दरता में कोई खामी नहीं समझा जाना चाहिए।

सम्बद्ध लोगों से क्षमा-याचना के साथ उन्हीं को भेंट है, सात भावी यात्राओं के अतीत-गर्भ में रूप ले रही पुस्तक का यह पूर्वविज्ञापन !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१

मेरी क्यूबेक-यात्रा

बहुत अधिक लम्बी यात्रा के बाद हम क्यूबेक पहुंचे। उस समय वहां पतझड़ शुरू होने में पन्द्रह दिन बाकी थे। हरियाली अपनी गहराई को धीरे-धीरे खोने लगी थी और फूलों के रंग अपनी अन्तिम घड़ियों को जी रहे थे, फिर भी क्यूबेक का सौन्दर्य अपनी पराकाष्ठा पर था। बर्फ अपने अछोर विस्तार से उस सुन्दरता को ढांप जाती, इसमें अभी पूरे दो महीने बाकी थे। हम जिस विश्व युवा समारोह में भाग लेने गये थे, वह वहां पहुंचने पर कुछ और था। जब आयोजकों में एक से यह प्रश्न किया गया कि इस विश्व युवा समारोहों का नाम यहां 'सुपर फ्रांको फेत' कैसे पड़ गया, तो उसने कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया।

सांस्कृतिक साम्राज्यवाद : असलियत और घोषणाएं

कनाडा के इस भव्य शहर में यह समारोह अपने ढंग का प्रथम था, जिसमें तीस राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। विश्व भर के हर फ्रांकोफोन—जहां फ्रांसीसी भाषा बोली जाती हो—देश से साठ प्रतिनिधि पहुंचे। प्रतिनिधियों की पूरी संख्या दो हजार के करीब थी। अफ्रीकी जातियों के अधिक होते हुए भी वियतनाम, लेबनान, लाओस, ट्यूनीशिया, मोनाको, ग्वादेलूप जैसे देशों ने भी इसमें भाग लिया था। प्रतिनिधियों में ऐसे बहुत कम थे जो सचमुच फ्रांसीसी बोल पाते। समारोह का आयोजन फ्रांस की सांस्कृतिक एजेन्सी की ओर से था, जिसका यह दावा था कि फ्रांकोफोनी का तात्पर्य नवसाम्राज्यवाद नहीं है। फ्रांस की नेशनल असेम्बली के प्रधान ने इसे स्वतन्त्रतावाद बताया था। फ्रांकोफोनी शब्द को सबसे पहले १९६२ में सेनेगल के राष्ट्रपति सेंगोर जनता के सामने लाये थे। यह बात समझ में नहीं आती कि सम्बन्धित लोग चिल्ला-चिल्लाकर यह सफाई क्यों देते रहे कि फ्रांकोफोनी उपनिवेशवाद नहीं, और उसका उद्देश्य सांस्कृतिक साम्राज्य नहीं है। वे तीसरी दुनिया को अपनी भाषा के बन्धन में जकड़कर भी उनकी आजादी की दुहाई दिये जा रहे हैं। पेरिस अकादमी के निदेशक रोब्रेर माले का यह कहना अच्छा-खासा मजाक था कि फ्रांकोफोनी स्वर-मिलन की सेवा के लिए है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम न हो सका कि किन प्रश्नों के उत्तर में ये आवाजें बुलन्द की जा रही थीं !

समारोह के दौरान मेरी ओर से पहला प्रश्न उस समय हुआ, जब विश्व के सभी राष्ट्रों से पहुंचे हुए कलाकारों को अनुमति नहीं दी गयी। सांस्कृतिक एजेन्सी ने अपनी शिकायत सबसे पहले अपने वफादार देशों के सामने रखी और उनसे कहा कि वे अपने कलाकारों को नाटक से हटा लें, क्योंकि उसमें साम्राज्य-वादियों की निन्दा है। फरमाबरदार देशों ने फ्रांस के आदेश को तुरन्त स्वीकारा और छह राष्ट्रों ने अपने को नाटक से अलग कर लिया। स्वतन्त्र देशों को अपने पुराने स्वामी का अपमान गवारा नहीं था। इस सनसनीखेज घटना से कई प्रति-क्रियाएं हुईं। कुछ देशों ने अन्त तक चाहा कि नाटक का प्रदर्शन होकर रहे। एजेंसी के खिलाफ कई विरोध हुए, कई बहसें, कई सेमिनार हुए; लेकिन स्वामिभक्ति को खंडित नहीं किया जा सका। 'नीग्रो' के माध्यम के शोषित देशों ने कौन-सी आवाज बुलन्द की थी—वह किसी को नहीं सुनाई पड़ी। समारोह में भाग लेनेवालों ने उसी बेचारगी और निहत्थेपन को महसूस किया और अन्त में असफल संघर्ष की थकान को झेलते हुए चुप रह गये।

समारोह के उद्घाटन पर जब कनाडा के प्रधानमन्त्री भाषण के लिए खड़े हुए उस समय युवा पीढ़ी ने विरोध के नारे लगाये। उस अस्त-व्यस्तता में कुछ समय के लिए कुछ भी समझ पाना कठिन हो गया था। विदेशी प्रतिनिधियों के सामने अलग-अलग प्रदर्शन होते रहे—कोई अंग्रेजी के खिलाफ था तो कोई फ्रांसीसी भाषा के, कुछ लोग क्यूबेक की स्वाधीनता के लिए नारे लगा रहे थे तो रेड-इण्डियनों का एक समूह अपने स्वराज्य की मांग कर रहा था।

बाद में मुझे रेड-इण्डियनों के एक युवा नेता से लम्बी बातचीत का अवसर मिला। वह आधुनिक लिबास में होते हुए भी माथे पर अपने पूर्वजों की तरह चमड़े का फीता बांधे हुए था। उसका पहला वाक्य था—"यह मेरी बेबसी है कि मैं आपसे अपनी मातृभाषा में बात नहीं कर सकता।"

उस समय उसकी आंखों में आक्रोश के साथ दयनीयता भी थी। सशक्त स्वर वाला वह युवक हर हालत में यही चाह रहा था कि विभिन्न देशों से आये हुए लोग इस सच्चाई को जान लें, कि कनाडा और क्यूबेक में रेड-इण्डियनों की हालत कितनी नाजुक है। वे लोग अपनी सभी जमीन-जायदाद से हाथ धो बैठे हैं। उनकी अपनी संस्कृति लुप्त होती जा रही है। विचित्र परिस्थितियों के साथ उनकी नाग-रिकता का कोई विशेष महत्त्व नहीं था। कनाडा की धरती के वे एक मिटते हुए इतिहास हैं, जिन्हें इतनी आसानी से मिट जाना गवारा नहीं है। सारे शोषण के बावजूद अपनी पहचान को बनाये रखने की तड़प उनमें है। उस नेता ने बड़े गर्व से यह बताया कि रेड-इण्डियनों के पूर्वज पूर्व के किसी देश से कनाडा पहुंचे थे। उनके उस परम्परागत जीवन में पूर्व की छाप आज भी उतनी ही स्पष्ट है। उन लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ओर से संगीत और नृत्य का जो कार्यक्रम हुआ उसमें भी विद्रोह-ही-विद्रोह था। क्यूबेक के सुदूर प्रांत के जंगलों में आज भी रेड-इण्डियनों की कुछ ऐसी जन-जातियां मिलती हैं, जो शिकार के सहारे जीवन गुजारती हैं और आदिवासियों की तरह रहती हैं।

भेंटवार्ता के दौरान एक रेड-इण्डियन युवती मिली, जिसने अपने गले में एक गत्ता लटका रखा था। उस पर लिखा था—"इन साम्राज्यवादियों के बीच मैं अपने अस्तित्व को बनाये रखने के प्रयास में हूं!"

विशाल क्यूबेक के, जिसके भीतर चार फ्रांस समा सकते हैं, इस छोर से उस छोर तक जो कला दिखती है, सभी में रेड-इण्डियनों की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है। वहां जो फ्रेंच बोली जाती है, वह विचित्र है। उसमें कई मुहावरे, कई शब्द रेड-इण्डियनों के हैं। यहां तक कि क्यूबेक शब्द भी इण्डियन शब्द है, जिसका तात्पर्य 'स्वागत' होता है। इसी तरह कनाडा, टोरंटो, ओटावा—ये सभी वहां के आदिवासियों के शब्द हैं।

क्यूबेक की युवा पीढ़ी : भाषा की उधेड़बुन

दूसरे दिन क्यूबेक की नयी पीढ़ी का एक सशक्त नाटक देखने का अवसर मिला, जिसका मुख्य स्वर था—भाषा की उधेड़बुन। अपनी पहचान और अपनी मान्यता के लिए वे 'स्पीक व्हाइट' के खिलाफ थे; पर करारा व्यंग्य यह था कि जिस फ्रांसीसी भाषा का सहारा लेकर वे अपने विचारों को व्यक्त कर रहे थे, वह भी 'स्पीक व्हाइट' फार्मूले की एक कड़ी थी। हैरानी इस बात की रही कि 'नीग्रो' नाटक की तरह इस नाटक पर प्रतिबन्ध नहीं लगा।

क्यूबेक की नयी पीढ़ी का ध्येय उतना निर्धारित-सा नहीं प्रतीत हुआ। आधुनिकता के नाम पर विवाह-जैसी प्रथा को नकारकर उस पीढ़ी ने अपने को अलग बताया है। गिरजाघर तो वहां हर मोड़ पर हैं, पर शायद ही किसी का दरवाजा इस पीढ़ी के लिए खुलता हो। क्यूबेक में हर पांच लड़की के बाद एक लड़का है। भावनात्मक स्तर पर यहां कोई भी सम्बन्ध नहीं मिलता। जो लड़की एक रात, एक दिन आपके लिए सबसे घनिष्ठ प्रमाणित हो सकती है, दूसरे दिन वही आपके लिए एकदम अजनबी होगी। दो तिहाई से अधिक युवाओं की राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं। बेकार रहने पर भी सरकार की ओर से ८० डॉलर सप्ताह में उन्हें मिल जाते हैं। इसलिए उन्हें मुंह खोलने की जरूरत ही महसूस नहीं होती। थियेटर से बाहर नाटक पर एक लंबी बहस चली थी, जिसके दौरान मुझे ऐसा लगा कि बहुत अधिक कंप्यूटराइज्ड क्यूबेक के लोगों का भी यंत्रीकरण-जैसा हो गया है। ये ही बातें मुझे कुछ हद तक उनके साहित्य में भी नजर आयीं। अगर आप लेखक हैं तो अपने दाहिने हाथ के लिए ५० हजार डॉलर का बीमा करवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं। बीमा वहां हर बात के लिए है। शायद विश्व का यही वह देश हो, जहां सबसे अधिक बीमा होता है। यहां विधवाएं रोती नहीं हैं।

फ्रांस की सांस्कृतिक एजेन्सीवालों ने यही चाहा था कि समारोह का माहौल फ्रांसीसी से भरा-पूरा रहे, पर यह संभव नहींथ ा। कई ऐसे देश थे, जो फ्रांकोफोनी होते हुए भी वहां के प्रतिनिधि फ्रांसीसी भाषा का एक शब्द भी नहीं बोल पाते थे। वहां सांस्कृतिक विभिन्नता के साथ-साथ भाषा की भी विभिन्नता थी। पर कब लोग इसका मजा ले सके, जबकि कुछ लोगों के लिए क्यूबेक उन २०-२५ दिनों के लिए समूचा विश्व था। हिन्दी-भोजपुरी, वियतनामी, लाओसी, स्वाहिली, अरबी और उन पर अंग्रेजी-फ्रांसीसी के माध्यम से मंडराता हुआ सांस्कृतिक साम्राज्य का हल्का आभास!

माली और गेबोन के तीन छात्र भीड़ को चीरते हुए हम तक पहुंच आये। वे क्यूबेक विश्वविद्यालय के छात्र थे। उस समय हम पोलाक के कैफेटेरिया में बैठे थे। तीनों हमारे पास बैठे गये। एक ने परिचय के तुरंत बाद कहा—"मैं भी इन भाषाओं के बीच अपने देश की भाषा सुनना चाह रहा हूं। लगता है, मेरे यहां से वैसे लोग यहां नहीं पहुंचे, गिरगिट ने यहां रंग बदल लिया। ये बिकी हुई आत्माएं हैं, जिन्हें अपनी पहचान तक नहीं···माफ करना, आप सभी लोग नचाये जा रहे हैं।" उसके मित्र ने कहा—"आप लोग केवल वही न देखें, जो आपको दिखाया जाएगा। कुछ आगे बढ़ियेगा तो घिन आ जाएगी आपको!"

कुछ घंटे पहले हमें बताया गया था कि इस देश में कोई भी गरीब नहीं, कोई भिखारी नहीं। मगर एक आदमी ने हमारे पास पहुंचकर मेरे हाथ में एक कार्ड थमा दिया, जिस पर लिखा हुआ था—'मैं गरीब आदमी हूं। आप इस कार्ड को मुझसे खरीद लेंगे तो मुझे एक जून की रोटी मिल जाएगी।'

इस तरह के कई लोग मिले। धंधा एक ही था, पर तरीके भिन्न थे—एक-से-एक मौलिक और आधुनिक। यहां ९४ प्रतिशत घरों में टेलिफोन, कार, टेलिविजन, फ्रिज और धुलाई की मशीन के बावजूद बेकारों की संख्या सात प्रतिशत है और गरीबी का मुंह दानव की तरह खुला हुआ है। इस देश की गलियों, घरों-आंगनों की सफाई काफी महत्त्वपूर्ण है; पर इसके साथ ही यौन रोगियों की संख्या यहां साठ-सत्तर प्रतिशत तक है। १३-१४ वर्ष के लड़के-लड़कियां भी उन रोगों से ग्रस्त पाये जाते हैं।

यहां अमेरिका को जितना कोसा जाता है, उतना ही सराहा भी जाता है। कोसा इसलिए जाता है कि यहां की उपज का अमेरिका नाजायज फायदा उठाता है। सराहा इसलिए जाता है कि अमेरिका का तकनीकी सहयोग ही क्यूबेक के आधुनिकीकरण का आधार है। देश के मजदूर हर हालत में यही चाहते हैं कि उनकी तनख्वाह भी अमेरिकी मजदूरों की तरह हो। इतना होते हुए भी बहुसंख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अंग्रेजी भाषा के प्रति लोगों में गहरा विरोध है।

आरंभ में 'चंपा', अंत में 'सीताहरण'

विश्व के कोने-कोने से आये रंगकर्मियों का कार्य देखने के लिए लाखों की संख्या में उमड़े हुए लोग होते। बेल्जियम-दोहोमे तथा मेडागास्कर के बाद लाओस की बारी थी। लाओस के कलाकारों ने अपने देश के राष्ट्रीय फूल चंपा के गान से अपना कार्यक्रम शुरू किया और समाप्ति उन्होंने 'सीताहरण' से की। लाओस के नृत्य और गानों को बहुत अधिक पसंद किया गया।

क्यूबेक में बसे एक-दो भारतीय परिवार हैं। उन्हें क्यूबेक में पहली बार लाओस और मॉरिशस की ओर से भारतीय कला और संस्कृति को देखकर गर्व अनुभव हुआ। उसी रात हम डॉ० कृष्णदेव के घर भोजन पर पहुंचे थे। मॉरिशस के युवा-मंत्री तथा प्रतिनिधियों की हिन्दी सुनकर उन्हें विश्वास करने में कठिनाई हो रही थी। संवेदना में उनके मुंह से यह निकला "लगता है, लाओस और मॉरिशस में भारतीयता अधिक शक्ति के साथ जीवित है!"

मॉरिशसीय कार्यक्रमों में झलकती भारतीयता

दूसरे दिन से मॉरिशस के कार्यक्रमों का आरंभ था। सबसे पहले विशाल सरकारी पार्क के हजारों लोगों के बीच फागुन नृत्य हुआ था। लोगों ने घोड़ा नृत्य को बहुत अधिक सराहा। उसी रात को ग्रांड थियेटर में मॉरिशस का राष्ट्रीय प्रदर्शन था। रचना मेरी थी और तैयारी में अंजला महर्षि का पूरा सहयोग था। इसमें मॉरिशस की सृष्टि से लेकर भारतीयों के आगमन तथा स्वतन्त्रता तक की कहानी को नृत्य और गानों से प्रस्तुत किया गया। कलाकारों में भारती, रामयाद, निर्मला, गोविन्द और इंद्रत धीरपाल ने दर्शकों को मोह लिया। कत्थक, भरतनाट्य, तिल्लाना, तराना, नागा और होली नृत्य-शैलियों में संपूर्ण कार्यक्रम क्यूबेकवालों के लिए पहली भारतीय चीज़ थी, जिसकी समाप्ति पर तालियों की गड़गड़ाहट समाप्त ही नहीं हो रही थी।

माली, रुआंडा, हाइटी के कार्यक्रमों में लोकजीवन बहुत सुन्दर रूप में उभरा। जिस दिन हाइटी का कार्यक्रम चल रहा था, उसी दिन कैंपस के सामने हाइटी के कुछ छात्रों ने अपने देश की हुकूमत के खिलाफ प्रदर्शन किया। वहां की अनन्यता और अराजकता का भंडाफोड़ करते हुए समारोह में भाग लेनेवालों को साम्राज्यवादियों के कठपुतले बताया गया। भीड़ में उस दिन एक घटना घटी। क्यूबेक का एक गोरा, समारोह में भाग लेनेवाले अफ्रीकियों के बीच पहुंचकर उनमें से एक वर्ष के बच्चे के सामने आत्मीयता जताने लगा। कई निगाहें उस ओर उठीं। कुछ देर बाद बच्चे को गोद में उठाये वह कैंटीन की ओर बढ़ा। बच्चे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को चॉकलेट थमायी और उसे गोद में लिये आगे बढ़ गया। कुछ ही दूरी पर उस गोरे की पत्नी अपने दो बच्चों के साथ खड़ी थी। गोरे ने काले बच्चे को अपने दोनों बच्चों के बीच इस तरह खड़ा कर दिया, गोया वह बाजार से लाया हुआ कोई पार्सल हो। दोनों बच्चे अपने सामने के खिलौने से उस वक्त तक खेलते रहे, जब तक कि उनका जी भर न गया। मनोरंजन के बाद परिवार वहां से चला गया और वह काला बच्चा जमीन पर बैठा रहा। उस समय मेरे साथ गेबोन का एक कवि था, जिसने हंसकर कहा—"गोरी आत्मीयता का नमूना !"

कनाडा संस्थान में कवि-सम्मेलन का बहुत भव्य आयोजन था जिसमें १२ महत्त्वपूर्ण देशों के कवियों ने अपनी रचनाएं पढ़ीं। सभी कवियों ने अपने देश की भाषा में रचनाएं सुनायीं। क्यूबेक की साहित्यिक जनता के सामने पहली बार हिन्दी कविता सुनायी गयी। दूसरे दिन टेलिविजन की ओर से ओलेआ द्वीप में कवियों के सम्मान में एक आयोजन हुआ। वहां जब मैंने अपनी कविता को पहले फ्रांसीसी भाषा में पढ़ना चाहा तो सभी ने एक स्वर में मुझे रोका। एक साथ आवाजें आयीं कि मैं पहले हिन्दी में पढ़ूं। हिन्दी के बारे में विस्तृत जानकारी पाने के लिए कई प्रश्न किये गये। संस्कृत से इसका संबंध जानकार कई लोगों ने कविताओं को बार-बार सुनना चाहा। हिन्दी सीखने की कुछ लोगों के भीतर की चाह ने मुझे जहां खुशी दी, वहां इस बात का दुख दिया कि काश, यह प्यास भारत में भी होती !

पन्द्रह दिन के पूरे समारोह का वातावरण एक तरह के विद्रोह का वातावरण रहा, जो संभवतः फ्रांसीसी एजेंसी को उतना पसंद न आया हो। 'नीग्रो' नाटक को समारोह से हटाकर भी वे बाकी विद्रोही स्वरों को नहीं रोक सके। लोकगीतों से लेकर सम्मेलनों, आपसी संवादों, भेंटवार्ताओं, कवि-सम्मेलनों—सब कहीं लोगों ने सांस्कृतिक साम्राज्यवादों के विरुद्ध आवाज़ें उठायीं। हर ठौर पर अपनी मातृभाषाओं में अपनी बात कहकर प्रतिनिधियों ने आयोजकों की उम्मीदों पर पानी फेर दिया। क्यूबेक की युवा पीढ़ी ने इस बात के लिए अपनी खुशी जाहिर की। रेड-इंडियन नेता ने, जो अपने को कनाडा और क्यूबेक का असली नागरिक मानता है और जिसकी लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई है, हमारी विदाई के समय 'नमस्ते' कहकर हमारा मन हमेशा के लिए बांध लिया। जाते-जाते उसने भर्राये हुए स्वर में कहा था—"हमें भी अपना अधिकार मिलकर रहेगा ···"

गोया स्वतंत्रता के बाद हमें अपना पूरा अधिकार मिल गया हो !

क्यूबेक की लड़ाई स्वतंत्रता की लड़ाई है, भाषा की लड़ाई है, आदमीयत की कुछ कम ! साम्राज्यवादियों की एक भाषा को नकारकर उनके सामने उन्हीं की दूसरी भाषा को स्वीकारे जाने की विवशता है। यह विवशता उपनिवेशवाद का सबसे बड़ा शस्त्र प्रमाणित हो रही है। उसने कई देशों को इस तरह से विवश कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यूबेक के लिए अंग्रेजी त्यागकर फ्रेंच अपनाने की मजबूरी है। यही मजबूरी कितने ढंग से कितने राष्ट्रों में है। करोड़ों रुपये खर्च करके जिस भाषा की दुहाई दी जाती है, जिसे बेबस राष्ट्र पर थोपा जाता है, जिससे साम्राज्यवाद की बू आती है, वह अपने सभी ऊपरी स्नेह के बावजूद शोषण की भाषा होती है। वह देश की आत्मा की भाषा नहीं होती। यह बात क्यूबेक के अंतरराष्ट्रीय समारोह में प्रमाणित होकर रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

कुछ यादें बंबई की

आज भारत की अपनी सातवीं यात्रा के बाद आखिर अपना यात्रा-संस्मरण लिखने बैठ ही गया। इसे शुरू करना तो बम्बई से ही होगा।

मेरा अपना सत्य कहां तक तुम्हारा भी सत्य हो, इसका मेरे अपने पास कोई आश्वासन नहीं। पर इतना जरूर कहूंगा कि इस यात्रा-संस्मरण में, हो सकता है कि बहुत-सी अच्छी और सुन्दर बातें भूली जा चुकने के कारण छूट गयी हों और कुछ साधारण घटनाएं हाल की और ताजा होने के कारण आ गयी हों। इससे भारत की महानता में कमी नहीं आएगी, इसी विश्वास के साथ अपने देखे-सुने और अनुभवों की पिटारी को तुम्हारे सामने रख रहा हूं, मेरे दोस्त! जो भेंट की जाती हैं, वे अपनी चीजें होती हैं, इसलिए खामियां अगर हुईं तो वे मेरी होंगी! भेंट है, इसलिए कबूल करो—यह भी मेरा हठ नहीं। मेरा अपना दोस्त तो भारत का वह लेखक भी रहा है, वह प्रकाशक-सम्पादक भी, वह पाठक भी, वह नेता भी, वह मजदूर भी, वह बनिया भी, वह कलाकार भी, वह साधु भी, वह वेश्या भी, वह बाबू भी, वह भिखारी भी—जो रास्ते में मिला और जो नहीं मिला।

पहली यात्रा में बम्बई ने मुझे झकझोरा था। अभी सूरज के उगने में समय था, पर लोग जागने लगे थे। पटरियों पर जिन्दगी फिर शुरू हो गयी थी। सांता-क्रुज हवाई-अड्डे से होटल तक जाते हुए उन ऊंची इमारतों के बीच के एक छह मंजिले भवन के सामने हमारी कार रुकी थी। पटरी पर तीन-चार परिवार एक ही में घुले-मिले-से दिखाई पड़े थे। बच्चे अब भी सो रहे थे। एक ओर अंगीठी जल उठी थी, दूसरी ओर बरतन मांजे जा रहे थे। हवा में एक गंध थी, जिसे कोई विशेषण नहीं दिया जा सका। वह गंध नाक में थोड़ी-सी चुभी थी। लोटे को रखकर एक वृद्ध चुकूमुकू बैठ गया। एक वृद्धा ने मुंह खंगारकर जमीन पर सोते हुए लड़के को मराठी में कोई गाली दी। लहजे से तो ऐसा ही लगा। उसे जगाने की कोशिश की। एक बच्चा रो उठा। एक कुत्ता भौंक उठा। ऊपर से हवाई-जहाज गुजरा। पुलिस के सिपाही ने किसी को धमकाया, तब तक कुछ लोग और जाग गये थे।

मैंने आंखें ऊपर करके उस इमारत की सबसे ऊपरी मंजिल को देखा। रोशनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल रही थी, उन सभी खिड़कियों के उस पार। फिर नीचे की ओर देखा। बिजली के खम्भे की बत्ती ठंड से ठिठुरी हुई थी। ठंड कोई खास नहीं थी। ठंड ज़्यादा भी होती तो भी पटरी पर के लोगों के कपड़े आधे ही तन के होते, यह जाहिर था। मैंने वृद्धा से बातें शुरू कीं। शुरू में वह बोलना नहीं चाह रही थी, पर जब मुंह खोला तो बोलती रही—कुछ हिन्दी, कुछ मराठी। पर मैं किसी तरह समझ पा रहा था। मेरे यह पूछने पर कि जब वह अपने सामने के उस विशाल घर को देखती है तो अपने बेघर होने का उसे दुख नहीं होता? वह मुझे देखती रह गयी थी। फिर नजरें उठाकर उस छह मंज़िली इमारत को इस तरह देखा था, मानो वह इससे पहले वहां था ही नहीं, वह उसे पहली बार देख रही थी। अपने आसपास के लोगों की ओर देखकर वह बहुत कुछ बोली थी, पर उन सभी बातों का तात्पर्य लगभग यही था कि उसे अपनी हालत में संतोष था।

मुझे वह संतोष बेचैन-सा कर गया था। जिस संतोष को मैंने हमेशा आदमी का एक अच्छा गुण माना था, वह मेरे सामने अपनी परिभाषा खोता-सा प्रतीत हुआ था। मैं पटरी पर के उन बिस्तरों को जेहन में लिये हुए था। जब ग्रांड होटल के पलंग पर पसरकर एक-आध घण्टे के लिए हवाई जहाज की थकान को भूलना चाहा तो कंधे तक ऊंची छतोंवाली वे सारी झोंपड़ियां मुझे तिलमिला गयी थीं, जिन्हें कई किलोमीटर तक देखते आया था। आंखें झपकने पर वे सभी गगनचुम्बी इमारतें हिलती प्रतीत हुई थीं। उन्हें लड़खड़ाने से रोकने के लिए मुझे अपने सिर को दोनों हाथों से जकड़ लेना पड़ा था।

बम्बई में बहुत कुछ देखा, बहुत कुछ सुना। चर्च गेट के रेलवे स्टेशन की आपा-धापी से जुहू की रमणीकता तक, जीविका के लिए संघर्ष करते हुए लोगों को देखा और जीवन को जीते हुए लोगों की रेलापेली भी देखी। जुहू से दादर और दादर से अंधेरी के रास्ते में सेठों को भी देखा, भिखारियों को भी।

एक चल रही बातचीत में हिन्दी पत्रकारों और लेखकों की खेमेबाजी की पहली जानकारी मिली थी। एक-दूसरे को नकारने की प्रवृत्ति के पीछे केवल वादों की उक्टापैंची नहीं थी, बल्कि कायस्थ, ब्राह्मण और न जाने क्या-क्या होने के भी चक्कर थे। हवाई जहाज से लायी ड्यूटी-फ्री वस्तुओं के बाजार सिवस रीगल की समाप्ति पर ही वह गोष्ठी समाप्त हुई थी। यह दूसरी बात थी कि सुबह थोड़ा-सा हेंग-ओवर महसूसना पड़ा था, पर हेंग-ओवर तो 'सिवस रीगल' भी दे जाती है। बम्बई में सिवस रीगल की कहानी भी बड़ी अजीब लगी थी। एक दूसरी शाम ग्रीन सलाद के साथ व्हिस्की का दौर शुरू हुआ। बोतलें तो सिवस रीगल नहीं थीं। अधिकारीजी का वह साथी जो इन बोतलों का प्रबन्ध एअर इण्डिया के परिचारकों से करता था, मेरी इस बात को मानने के लिए तैयार ही नहीं था कि उन बोतलों में जेन्यूइन व्हिस्की नहीं थी। मैं अधिकारीजी के ही यहां टिका हुआ था। उस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी पुस्तक 'राग दुर्गा' निकली हुई थी। एक दिन पहले रजनी पटेल के हाथों हुए उसके विमोचन समारोह में भी मैं भाग ले चुका था। जिस कमरे में मैं टिका हुआ था, उसमें राग दुर्गा की हजार प्रतियां थीं। किसी तरह पुस्तकों के बीच से होकर मैं अपने सूटकेस से शिवस रीगल की बोतल उठा लाया। उसी समय अधिकारीजी के उपन्यास 'तलाश' पर फिल्म भी बन रही थी। उनके प्रोड्यूसर ने अपने हाथों बोतल खोली और ग्लास भरे, और पहली ही चुस्की के बाद यह मान लिया गया कि अब तक जिसे वे लोग शिवस समझ रहे थे, वह रीगल नहीं था। कोई कलाकार भी उस महफिल में मौजूद था, जोकि चावल के दाने के ऊपर गीता के श्लोक और न जाने क्या-क्या लिख जाता था, उसे थोड़ी अधिक चढ़ गयी थी। उसने ग्लास को मेरे ग्लास से खनकाकर कहा—"मैं इस एअर इण्डिया को बन्द करवा दूंगा···कल ही बन्द करवा दूंगा !"

एअर इण्डिया तो बन्द नहीं हुआ। हां, अलबत्ता उस एअर इण्डिया ने हम मॉरिशस लौटने वाले कुछ यात्रियों के साथ धांधली जरूर की। अधिकारीजी मुझे छोड़ने आये थे। हम लोग चेक-इन वक्त से घण्टा भर पहले पहुंचे थे। मेरे पास कन्फर्म्ड टिकट था, बीस घण्टे पहले का रिकन्फर्म्ड और ओ० के० टिकट। चेक-इन के लिए जब एअर इण्डिया के काउण्टर पर पहुंचा तो मुझे सीट देने से इन्कार कर दिया गया। मेरे सात साथियों के साथ भी वही हुआ। जब हम लोगों ने कारण जानना चाहा तो बताया गया कि अचानक जापानी ग्रुप टूर के लोगों के आ जाने से उनको प्राथमिकता देना एअर इण्डिया के लिए जरूरी हो गया है। उस समय भारत-मॉरिशस की सप्ताह में एक ही फ्लाइट होती थी। मेरा एक हमवतन जो लखनऊ से डॉक्टरी सीखकर अपने देश को लौट रहा था, ताव में आकर क्रिओली में मां की गाली देकर कह ही बैठा कि ये लोग हवाई-जहाज चलाने के बदले रिक्शा ही क्यों नहीं चलाते ! अधिकारीजी ने मेरे दोस्त की उस रौ को देखकर मुझसे जानना चाहा था कि उसने उस लहजे में क्या कहा था। मैंने कहा था कि गुणगान किया एअर इंडिया का !

यह गुणगान शब्द प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन के दौरान मैंने अधिकारीजी के ही मुंह से सुना था। सम्मेलन का दूसरा दिन था। हम लोग जिस स्थान पर ठहरे हुए थे, उसी के आंगन में कोई आठ-दस लेखक सम्मेलन की तामाशाई उपलब्धि पर बातें कर रहे थे। टाइम्स ऑफ इण्डिया के एक पत्रकार के हमारे बीच आते ही अधिकारी जी ने तपाक से कह दिया था—

"क्यों भई, मैंने उस दिन भारती का जो गुणगान तुम्हारे साथ किया था, उसकी सूचना तुमने भारती को उस रात दे डाली ?"

उस पत्रकार का तो बुरा हाल था, पर हम लोग हंस पड़े। भारतीजी भी हंसते रहे। पर गुरुजी गम्भीर बने रहे। लेखकों के बीच अधिकारीजी 'गुरुजी', ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बोधित किये जाते थे।

खैर, नागपुर की चर्चा तो बाद में करनी है—बम्बई लौट चलें! बम्बई में मुझे ठहरने के, अन्य स्थानों से अधिक अवसर मिले थे—आते हुए भी और मॉरिशस को लौटते हुए भी। और बम्बई का कोलाबा शॉपिंग सेंटर मुझे हमेशा बहुत ही भाया। कोलाबा शॉपिंग सेंटर की साड़ियों की दूकानों में 'अप्सरा' एक ऐसा स्थान था, जहां से मैंने पहली साड़ियां खरीदी थीं। उस दिन भी पांचवीं बार के लिए साड़ी ही खरीद रहा था, जब एक व्यक्ति धीरे से मेरा सोनी रिपोर्टर कॅसेट लेकर खिसक जानेवाला था। ब्रह्मपुत्र के मेरे नाविक दोस्त ने, जो दो साल पहले नौसेना के साथ मॉरिशस आ चुका था, वैसा नहीं होने दिया था। कॅसेट तो उसके हाथ में आ गया था, पर उसे कब्जे में लेनेवाला हाथ मेरे दोस्त के हाथों से छूटकर अपने दोनों पांवों सहित कोलाबा की भीड़ में गायब हो चुका था। उसकी जगह दूकानवाला माफी मांगने लगा और अपने को मॉरिशस के कोंसुलेट का दोस्त बताकर मुझे अपने घर खाने पर बुला बैठा था, पर मुझे तो दूसरे ही दिन सुबह जहाज पकड़ना था। बम्बई में कभी होटल में रहा, कभी मित्रों के यहां। जिस बार सरिता मेरे साथ थी, एअर इण्डिया अपनी आदत से मजबूर दो घण्टे लेट बम्बई पहुंचा था। कमलेश्वरजी हवाई अड्डे से लौट चुके थे। सुबह के चार बजने को थे, हवा में हल्की ठंड थी। मैं और सरिता टैक्सी में बैठकर होटल तलाशते रहे। सैलानियों का पीक पीरियड होने की वजह से होटलों में जगह मिलना कठिन रहा। घण्टे भर के चक्कर के बाद मुझे याद आया कि मेरी जेब में मॉरिशस स्थिति 'हरे राम, हरे कृष्ण' के एक सदस्य की चिट्ठी थी। मैं सीधे जुहू—हरे राम हरे कृष्ण मन्दिर पहुंचा। कुछ ही दिन पहले अखबारों में वहां हुए कुछ हंगामों की चर्चा पढ़ चुका था, इसलिए वहां जाते हुए उतनी खुशी नहीं हुई थी। मेरी वह चिट्ठी देखने की देरी थी कि तुरन्त मुझे कमरा मिल गया। सुन्दर साफ-सुथरा कमरा था वह, किसी भी फाइव स्टार होटल के कमरे से कम नहीं था। उसके सामान एकदम उसी कृष्ण-युग के-से प्रतीत हो रहे थे। वहां के लोग जिस तरह पेश आये, उससे जान में जान आयी। सुबह हमने वहां के भक्तों के साथ प्रसाद लिया। वहां के मुख्य स्वामी ने हमसे यह भी कहा कि अगर आश्रम का प्रसाद हमको नहीं जंचे तो हम हरे कृष्ण हरे राम होटल के कैंटीन में खा सकते हैं। दिन के खाने के लिए हमने वैसा ही किया। खाना स्वादिष्ट था। हमने मंदिर देखा, भव्य था। सरिता ने पूजा की, मैंने साथ दिया। बाहर निकलने पर पता चला कि वह इलाका कुछ गन्दा था। उस गंदगी के बीच भी उतने सुन्दर मंदिर का होना अपने में कम महत्त्व की बात नहीं थी। मंदिर के आगे एक छोटी-सी लड़की एक गाय के आगे घास लिये खड़ी थी। गोभक्त सामने आकर दो-चार पैसे में मुट्ठी भर घास उस लड़की से खरीदकर गाय को खिला जाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ ही दूरी पर वे होटल थे, जहां फिल्मी हस्तियों का आना-जाना बना रहता था। मैं पहले भी उन होटलों में जा चुका था। मुझे नहीं भाये थे और मैं जानता था कि सरिता को भी वे नहीं भायेंगे, इसलिए हम उधर भटके भी नहीं। दूसरे दिन कमलेश्वर गायत्री भाभी और मानू के साथ हमें लेने आ गए। दिलीप को कार ड्राइव करते पाकर खुशी हुई। कमलेश्वर के घर में एक बात की हर बार मुझे बेहद खुशी हुई थी। दिलीप को उस घर का नौकर कभी नहीं समझा जाता था। उसमें गांव की जो सादगी थी, उससे कमलेश्वर-परिवार में उसका उस तरह घुल-मिल जाना स्वाभाविक था। बहुत कम समय में वह कार अच्छी चला लेता था। दिलीप सारिका में धारावाही 'लाल पसीना' पढ़ रहा था तभी तो घर के आगे केरल से लाकर रोपे हुए 'मान्योक' के पौधे की ओर दिखाते हुए उसने मुझसे पूछा था कि क्या वह वही पौधा नहीं था, जिसकी चर्चा 'लाल पसीना, में मैंने सफेद कंद के नाम से की थी? वास्तव में वह वही था, जिसकी जड़ से मिलनेवाले लम्बे कंद को आज भी मॉरिशस में उबालकर खाया जाता है। उसकी खीर भी बनती है, बिस्किट भी।

दिलीप हमेशा ज़मीन पर बैठता था, इस बात से सरिता को थोड़ी-सी हैरानी हुई थी। जब दिलीप ज़मीन पर बैठे कमलेश्वर के पांवों से जूते उतार रहा था तो सरिता ने मेरी ओर देखा था, और फिर अवसर आते ही उसने मुझसे पूछा था कि दिलीप कुर्सियों पर क्यों नहीं बैठता? सरिता को यह समझाना मेरे लिए थोड़ा कठिन था। दिलीप खाना भी बहुत अच्छा पकाता था। बम्बई के झींगे का सही स्वाद उसी रात को मिला था, जब दिलीप ने हंसकर कहा था कि हम लोगों को ख्याल में रखकर उसने मसाला कम इस्तेमाल किया था। गायत्री भाभी की अपनी पी-एच० डी० की कोई तैयारी शायद चल रही थी और कमलेश्वर शक्ति सामन्त के लिए कोई पटकथा लिखने में व्यस्त थे। इसके बावजूद हमारा ख्याल इस तरह रखा जाता था गोया हम बच्चे थे! मानू और सरिता में फिल्मी चर्चा होती और फिर मॉरिशस की यादगारों पर बातें होतीं। मानू को अपनी मॉरिशस-यात्रा का एक दुखद संस्मरण भी याद था, जिसे सुनाते वक्त उसकी आंखों में भय झिलमिला उठा था। वह उन लोगों का मॉरिशस से भारत लौटने का दिन था। वे लोग मेरे घर से एक किलोमीटर भर के फासले पर, समुद्री इलाके के त्रु-ओ-बीश होटल में टिके हुए थे। उन्हें वहां से लेकर घर पहुंचा था। खाने के बाद हम लोग प्लेजांस हवाई अड्डे को चल पड़े थे। कमलेश्वर और गायत्री भाभी सरकारी कार में थे, मेरी अपनी कार में सरिता और मानू थीं। घर में देर हो जाने की वजह से हमारी कार की रफ्तार तेज थी। उसी ओवर स्पीड की वजह से मैं कार को रोक नहीं पाया था और वह उसी तेजी के साथ एकाएक खड़ी हो जानेवाली कार से जा टकरायी थी। मुझे और सरिता को काफी चोट आयी थी, पर मानू बाल-बाल बच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी । लेकिन उस याद को वह मिटा नहीं पायी थी ।

दूसरे दिन एलेफैंटा देखने का प्रोग्राम बना, पर सरिता की तबीयत उतनी अच्छी न होने के कारण हम नहीं जा सके । एलेफैंटा मेरा देखा हुआ था । बम्बई से लगभग सत्रह किलोमीटर की दूरी पर, पहली गुफा की उस विशाल मूर्ति से चित्र द्वारा परिचित था । आंखों के सामने उसे देखकर अद्‌भुत पाया था । नटराज शिव से लेकर योगिराज शिव तक महेश की विभिन्न शक्तियों का प्रदर्शन था वहां । ठीक आधुनिक एटम-गुम्बद की तरह कही लिंग के रूप में शिव अग्नि-शक्ति का प्रतीक था । उसका वह अर्धनारी रूप ब्रह्म और प्रकृति का सम्मिश्रण था । एलेफैंटा का एक दृश्य आज के हनीमून की याद दिला गया । शिव-विवाह के अवसर पर चन्द्रदेव को मधु का मटका भेंट करते हुए दिखाया गया था ।

कुछ गुफाएं अधूरी थीं । आगे खाड़ी थी, कौवों का झुंड था । जब भी भारत की यात्रा की, मैं हर ठौर पर उस भारत को पाना चाहता रहा, जिसे पुस्तकों में पाता रहा था । उस भारत को भी हर बार ढूंढ़ा, जिसे बम्बई की फिल्मों में देखता था । पुस्तकों के भारत के कुछ टुकड़े जहां-तहां मिल जाते थे, लेकिन बम्बई की फिल्मोंवाला भारत उन सातों यात्राओं में कभी नहीं मिला । १९६६ में भारत सरकार के आमन्त्रण पर मैं पहली बार भारत पहुंचा था । पन्द्रह दिन इस शहर से उस शहर की दौड़-धूप के बाद जब मॉरिशस लौटा था तो एक साथी ने तपाक् से पूछ लिया था—

"किसी होटल में तुमने मार-पीट देखी या नहीं ?"

मैंने अपनी पहली-दूसरी यात्राओं में सचमुच उन होटलों को ढूंढ़ा, जहां गाते-बजाते-नाचते मार-पीट शुरू हो जाती हो और देखते-ही-देखते हीरो २५ खलनायकों को चित कर जाता हो । उस बाग को भी काफी ढूंढ़ा, जहां प्रेमी अपनी प्रेमिका के साथ आंखमिचौली खेलता हुआ गाता-नाचता हो । खैर, भारत में जिस तरह मैं फिल्मों का भारत ढूंढ़ता हुआ उसे कभी नहीं देख पाया, ठीक उसी तरह भारत की जिस पहचान को पुस्तकों में पढ़ता रहा था, उसे किसी शहर में नहीं पाया । हर शहर में, चाहे, वह बम्बई, दिल्ली, मद्रास, कलकत्ता, वाराणसी या आगरा रहा हो, हर जगह मुझे ऐसा ही लगा कि उन शहरों में भारत थककर सो गया था और उसकी जगह पर यूरोप नाच रहा था । अगर गांवों में गये बिना लौट आता तो भारत के उन एकाध टुकड़ों को भी नहीं देख पाता जो जीवित थे तो सिर्फ गांवों में ।

बम्बई से दिल्ली तक और दिल्ली से मद्रास तक मैंने लोगों के भीतर क्रेज देखा विदेशी चीजों का । कोलाबा में किसीने धीरे से पूछा—

"भाई साहब, आप विदेश से आये हैं न ! आप के पास डॉलर या पाऊंड है ? बैंक रेट से ज्यादा मिल जायेगा ।…"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्च गेट में एक ने चाहा कि मैं अपना कैमरा उसे बेच दूं। मैंने हर शहर में जीन्स के दीवाने देखे, सोनी कॅसेट के तस्करों को देखा। अंग्रेज़ी शराब, अंग्रेजी दवा, अंग्रेजी कट की दुकानें देखीं। गोरे अंग्रेज़ कम दीखे पर हर जगह काले-सांवले दीखते रहे। किसी का कहना था कि भारत में आखिरी अंग्रेज़ को देखना है तो वह कलकत्ता में मिलेगा, लेकिन मुझे तो वह अंग्रेज़ भारत के हर शहर में मिला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यास

अपने कोई बीस उपन्यासों में से पांच उपन्यासों का एक-एक टुकड़ा आपको परोसने जा रहा हूं। इन पांच उपन्यासों में एक तो मेरा पहला उपन्यास है, जिसके मोह से बच पाना बड़ा दुश्वार है मेरे लिए। दूसरा वह उपन्यास है, जिसने मुझे उपन्यासकार स्थापित किया। तीसरा उपन्यास मेरे अपने एक प्रयोग का नतीजा है। चौथा वह उपन्यास है, जिसके सत्य से अवगत होने के लिए मुझे उसमें वर्णित तमाम यातनाओं को मानसिक स्तर पर झेलना पड़ा, और पांचवां उपन्यास मेरा बस बकवास है! लेखक को तो इस बकवास के लिए भी छूट होती है; अन्यथा इतने लेखक विशेषकर मेरे देश में, जहां पाठकों से अधिक लेखक हैं—कुकुरमुत्ते की तरह कहां से उपज आते!

मेरे इन पांचों उपन्यासों से लिये हुए परिच्छेद यहां पर आपको उसी क्रम में नहीं दिये जा रहे हैं, जिसमें उनके गुण बखाने गये। उम्मीद है, आप उन्हें पढ़कर सही क्रम में रख लेंगे। इनमें कुछ पुरस्कृत भी हैं। खैर, यह तो मेरे नहीं, मेरे प्रकाशकों के विज्ञापन के कारण हुआ होगा। पुरस्कार के बाद पुस्तकों के कुछ अधिक संख्या में बिकने की सम्भावना जो बन आती है!

एक बात और, इन पांच उपन्यासों से जो अंश लिये गये हैं, वे किसी प्रतिमान के अन्तर्गत चुनकर नहीं हुए हैं; बल्कि आंखें मूंदकर पुस्तकें खोली गयीं और जो अध्याय सामने आया, उसे ही ले लिया गया।

इन उपन्यासों के अंशों से न तो उनके स्तर की पहचान बन पाती है और न ही उनके तथ्य। और यह इसलिए कि २०० से ४०० पृष्ठों के किसी भी उपन्यास की पहचान ५ से १० पृष्ठों में नहीं हो सकती! इससे एक और मौका छोड़ा जा रहा है, इन पुस्तकों की ओर कुछ नये पाठकों को आकर्षित करने का। विज्ञापन के भी तो कई तरीके होते हैं···यह भी सही!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१

और नदी बहती रही

'और नदी बहती रही' मेरा पहला प्रकाशित उपन्यास है। मेरे पहले लिखित उपन्यास की पांडुलिपि को तूफान हजम कर गया था। उस समय हमारा घर लकड़ी और ईख के सूखे पत्तों की छाजन का था। वह धराशायी हो गया उस प्रलयंकर चक्रवात में, और मेरी पांडुलिपि भी पन्ने-पन्ने उड़ गयी थी उस ओर, जिधर सूरज डूबता है।

'और नदी बहती रही' की पांडुलिपि मैंने एक पुस्तक में पाये पते पर भेज दी। वह पता था राजकमल प्रकाशन का। इससे पहले मेरी तीन-चार कहानियां भारत की पत्रिकाओं में जरूर छपी थीं, लेकिन मुझे विश्वास नहीं था कि वह पांडुलिपि प्रकाशन के लिए स्वीकार ली जाएगी। शीला सन्धू जी का पत्र जब मिला, उस समय मैं महेश्वरनाथ सरकारी स्कूल में अध्यापक था। वह मेरे लिए सुखद आश्चर्य था। और सच पूछा जाए तो वही मेरे अपने आत्मप्रदर्शन और आत्मविज्ञापन का पहला क्षण था। मैं अपने कई मित्रों को चिट्ठी दिखाता रहा, लेकिन जब पुस्तक की प्रथम प्रति हवाई डाक से मुझ तक पहुंची, उस समय मेरी तबदीली प्वेत ओ पीमाँ स्कूल में 'हो चुकी थी और सरिता ने उस प्रथम प्रति को डाकिये से लेकर मेरे हाथों में रखते हुए कहा था कि उसे यह बूझते देर नहीं लगी कि वह मेरी पहली रचना ही थी !

'दिनमान' में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने मेरी इस प्रथम रचना का विज्ञापन इस शब्दों में किया था।"···सरस और पठनीय···मॉरिशस के खेतों में काम करने वाले भारतवासियों के अंतर और बाह्य जगत का मंथन है—उपन्यास में प्रेम उफनता है—स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों में भी तथा खेत और किसान के रिश्ते में भी।···" खैर छोड़िये !

लोगों का कहना है कि एकदम छोटा है हमारा यह देश। यह भी कहते सुना गया है कि मॉरिशस तो विश्व-नक्शे के ऊपर एक बिंदुमात्र है। मुझे लगता है कि यह द्वीप बहुत ही बड़ा है। इसलिए नहीं कि यह ऊंचे और मनमोहक आकृतियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पर्वतों से भरपूर है और इसके लहलहाते खेत इस छोर से उस छोर तक अपनी विशाल बांहें फैलाये हुए हैं, बल्कि इसलिए कि इसकी हरियाली कुछ इतनी अधिक गहरी है कि एक ही निश्चित जगह को निहारते-निहारते आंखें कभी भी उसके दूसरे छोर तक नहीं पहुंच पातीं।

अपनी काटी सारी ईख को रास्ते पर निकाल लेने के बाद मैं कमर सीधी करते हुए खेतों की ओर देखा। क्षितिज तक हरियाली लहलहाती दिखायी पड़ रही थी। मेरा काम समाप्त हो चला था। मेरी बगल में राजेश मशीन की तरहे ईख काटने में लगा हुआ था। वह केवल काटने का ठेका लिये हुए था। मुझे अपनी ओर आते देख उसने कहा—

"बस अपन भी निकचाल ही है !"

सचमुच कुछ ही बाकी था, इसलिए मैं उसकी सहायता को न पहुंचकर मुंडेर पर बैठ गया, नीचे से जामुनी रंग की एक ईख उठाकर उसे छीलने लगा।

ईख के सूखे पीले पत्तों पर धूप काँच के टुकड़ों की तरह चम-चम कर रही थी। मेरे साथी मजदूरों के शरीर पर पसीने की बूंदें मोती की तरह चमक रही थीं। मोती तो कभी देखा नहीं, पर सुना है कि वह मेहनतकश मज़दूर के पसीने की बूंदों-जैसा ही होता है। शायद चमकता कुछ अधिक होगा, पर मूल्य में मज़दूर की ये बूंदें आदमी द्वारा इकट्ठी करके संजोयी नहीं जा सकतीं। इसके पीछे जो कहानी है, उसे मेरी दादी यों सुनाया करती थीं—

किसी जमाने में आकाश की बदली अपने सादेपन को देख बिलखने लगी। तभी आकाश ने उससे कहा—"तू पागल है,बदली! तुझे आभूषण ही चाहिए न ?"

"हां, मेरा 'श्रृंगार' अधूरा है।"—बदली सिसकती हुई बोली थी।

"सूर्य को निकल आने दे। उसकी उष्णता से श्रमजीवियों के बदन पर मोती की बूंदें चमकने लगेंगी। तू उन्हें बटोरकर संसार का सबसे कीमती हार बना लेना।"

और तभी से मज़दूर के शरीर के पसीने पर बदली का एकाधिकार-सा हो गया है। उसी हार को पहनकर वह घनघनाती धरती पर बरसने लगती है।"

दादी की इस कहानी पर हम सभी हंसने लग जाते पर अब खेतों से बीच उस कहानी को याद करके मैं गम्भीर हो जाता हूं।

अक्टूबर का महीना अभी अपने शैशव में था। ग्रीष्म भी पहली सीढ़ी पर थी। फिर भी गरमी इतनी अधिक थी कि वह फरवरी की गरमी-सी प्रतीत हो रही थी। लोग अकुला रहे थे। जगह-जगह पर लोगों में यही सुनने में आता था कि भगवान न करें, कुछ ही दिनों में शोले बरसने लग जाएं ! कुछ कहते, "तूफान की संभावना है।" कुछ आनेवाली बातों से बेपरवाह, वर्तमान से निबट रहे थे। उन मज़दूरों में मैं भी एक था। गरमी मेरे लिए भी असह्य थी। पर कहते सुना था कि यह गरमी, धूप की तीक्ष्णता में व्यस्त हम मजदूरों से अधिक असह्य छांव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बैठे लोगों को थी। बात कुछ व्यंग्य भरी-सी प्रतीत होती है, फिर भी उतनी ही सच है जितनी कि ग्रीष्म में गरमी ! हम ज़मींदार की ही बात ले लें ! वह हमेशा आकर पेड़ों की छाया में बैठता है। बैठते ही टाई ढीली करता है, कोट उतारता है, कमीज़ की ऊपरी बटनों को खोलते हुए गहरा श्वास छोड़ता है—

"गजब की गरमी है !"

मेरे मन में कई बार यह बात आयी थी कि अगर सचमुच वे छांव में धूप से अधिक पीड़ित हैं, तो फिर हमारी तरह खुले मैदान में क्यों नहीं आ जाते ! कम-से-कम पसीने की ठंडक से उनके शरीर को शीतलता तो मिल पाती।···

कुछ ही समय में राजेश अपना काम पूरा करके मेरे पास आ गया। आते ही अपनी थकावट को भूलकर उसने सामने से एक सीधी ईख उठायी और बीच से तोड़कर चूसने लगा। कुछ दूरी पर स्त्रियां 'घांव-घांव' के शोर के साथ गायों के लिए ईख के हरे पत्ते बटोर रही थीं। एकाएक राजेश के मन में न जाने क्या आया और वह पूछ बैठा—

"चीनी का दाम दिन-ब-दिन गिरता ही क्यों जा रहा है, मधु भैया ?"

नाम तो मेरा मधुकर रखा गया, पर आज तक मैंने किसी को भी इस नाम से अपने को पुकारते नहीं सुना। मुझे मधु नाम अच्छा नहीं लगता, क्योंकि यह नाम तो लड़कियों के लिए ठीक लगता है ! पर क्या करूं, लोगों को मना भी नहीं कर सकता। सोचता हूं, मां की तरह ये लोग भी प्यार से मेरे नाम को छोटा करके पुकारते हैं।

एकाएक राजेश के मन में इस तरह का प्रश्न कैसे पैदा हो गया, इस उधेड़बुन में पड़कर भी मैंने धीरे से कहा—

"दुनिया में ईख की खेती बहुत होने लगी होगी।···"

"दाम तो दिन-पर-दिन गिरते ही जा रहे हैं, फिर भी लोग इस खेती से बाज क्यों कहीं आते ? बोने के लिए तो अनेक चीज़ें पड़ी हैं !···"

राजेश ने यह बात संभवतः ईख के खेतों के बीच मज़दूरों की कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए कही हो। मैंने हंसते हुए कहा—

"आशा के साथ !"

"कैसी आशा ?"

"कौन जाने, फिर दाम बढ़ जाएं ! उतार-चढ़ाव तो होता ही रहता है। कभी गिरते-गिरते यह बारह तक पहुंच गयी थी। पर अब तो ऐसी संभावना नहीं। यह प्रश्न तो खेतिहरों और मज़दूरों के विश्वास का है। कल यह चीनी हमारे द्वीप की सफेद सोना थी। कौन जाने, कल फिर वैसा ही हो जाए।"

राजेश को मेरी बात से असंतोष नहीं हुआ, तभी तो दोबारा प्रश्न करने की कोशिश नहीं की उसने। पर यह अकारण प्रश्न उसके भीतर पैदा होने का कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या था —यह मैं नहीं समझ सका। पूछना जरूरी न समझ मैं चुप रहा।

कोई दस मिनट तक बैठे रहने के बाद हम अपनी जगह से उठे और नीम के पेड़ के पास पहुंचे, जहां हमारी भात की टोकरियां थीं। अपनी-अपनी टोकरी कंधे पर लटकाये हम घर की ओर चल पड़े। उमस अब भी थी।

बारह बजे का सूर्य ठीक सिर के ऊपर अपनी पूरी शक्ति से चमक रहा था। हर कटाई के मौसम की तरह सूर्य की गरमी अधिक थी। कटाई में मेहनतकशों की अधिक श्रम-बूंदें बहती हैं, इसलिए नहीं कि ताप अधिक होता है, बल्कि इसलिए कि सूर्य-किरणों को उन बूंदों में स्नान करके अधिक शक्तिशाली बनना है। मैं तो ऐसा ही सोचता हूं। कुछ ही दूरी पर, बगल से होती हुई एक पगडंडी चली गई थी, जिस पर कोई दस-बारह औरतें कतार में, सिर पर वास और अगौरों के बोझ लिये बस्ती की ओर बढ़ी जा रही थीं। हमसे पहले ही आम के पुराने वृक्ष के सामने पहुंचकर उन्होंने अपने-अपने बोझ उतारे और विश्राम करने बैठ गयीं। आम के पेड़ की जड़ों से टकराती वह नदी अब भी उसी रफ्तार में बहे जा रही थी, सुखारी को जिसे सुखाने की लाख कोशिश करके भी असफलता मिली थी।

कहीं से स्त्रियों के हाथ एक पक्का पपीता लग गया था। राजेश की मामी अपने हंसिया से उनके अनेक पतले टुकड़े करके आपस में बांट रही थी। नदी और पेड़ों की घनी छाया होने के कारण यहां खेतों जैसी उमस नहीं थी। औरतें नदी के उस पार थीं और हम दोनों इस पार की चट्टान पर बैठे अपने-अपने हाथ-पांव धो रहे थे। अपने हाथ के पपीते के एक टुकड़े को हमारी ओर दिखाते हुए राजेश की मामी ने, जिसे मैं भी मामी ही कहता था, पूछा—"खाओगे ?"

राजेश ने मेरी ओर देखा और मैंने नदी की कल-कल ध्वनि के साथ कहा—

"हम पपीता नहीं खाते।"

"तुम दोनों पपीता क्यों खाने लगे ! तुम्हारे लिए तो इससे अच्छी चीजें हैं।"

यह आवाज़ सलमा की थी, जो नाते मे मेरी भाभी होती थी। खैरियत रही कि उसने इसके साथ कोई बड़ी-सी गाली नहीं दी !

जिस चट्टान पर हम बैठे थे, उससे सटकर एक जामुन का पेड़ था, जिसकी जड़ में बड़ा-सा गोल पत्थर था। गांव की स्त्रियां हमेशा से इस पत्थर पर सिंदूर के टीके लगाती आयी हैं। अब भी उस पर अनेक अंगुलियों की छाप थी। एक बार गांव के एक पंडित ने उस पेड़ की जड़ में लघुशंका कर दी थी, और घर पहुंचते-पहुंचते उनकी दोनों जांघें इतनी फूल गई थीं कि बस उनका खड़े रहना दुश्वार हो गया था। वह दर्द से चीखते रह गए थे। कहते हैं, दो ही दिन बाद उस पंडित की मृत्यु हो गई थी। मां कहती कि बेचारा बहुत अच्छा आदमी था, न जाने क्या सूझा था उसे ? डॉक्टर तक नहीं समझ सके थे कि उसको क्या हो गया था। कहते हैं, मौत के सर्टिफिकेट में डॉक्टर ने लिखा था—'एक रहस्यमय बीमारी !' पंडित के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाप के मना करने पर भी तरह-तरह से झाड़-फूंक हुई, पर वह बच नहीं पाया था कुछ लोग कहते हैं, उसे चुड़ैल लग गयी, और कुछ कहते कि उसने लोगों के विश्वास और सहज श्रद्धा पर पेशाब किया था, इसीलिए ऐसा हुआ। कुछ लोग उसे काली माई का प्रकोप तक बताते और कुछ लोगों के लिए वह घटना आज भी एक रहस्य है। पंडित के साथ जो दूसरा आदमी था, वह उसी दिन से रोज़ वहां कपूर जलाने जाता। गांव के जवान इन बातों को सुनकर हंस देते थे।

कुछ ही देर बाद स्त्रियों ने अपने-अपने बोझ एक-दूसरे की सहायता से उठाये और गांव की ओर चल पड़ीं। मैं नदी के ठंडे पानी में पैर डुबाए बैठा रहा। बगल के बैंगन के खेत से किसी मनचले लड़के के गाने की आवाज़ आ रही थी—

'करमजरू से दमदवा खाली बिदा मांगेला।
सास देवे लड़की ससुर देवे टेक्सी···'

एकाएक मुझे कृष्णावती की बात याद आ गई। उसने कहा था—लौटते वक्त कुछ आम लेते आना। नदी किनारे के पेड़ों पर आम अचार के लायक हो गए थे। मैंने बात राजेश से कही। उसने दो-तीन पेड़ों को गौर से देखा और बैसाख के एक छोटे-से पेड़ पर चढ़ गया। आम कच्चे थे, फिर भी उनमें लाली आने लगी थी। नीचे से मैंने अपनी टोकरी खोली, भीतर का बरतन निकाला और टोकरी को ऊपर फेंका। राजेश ताक में था। बड़ी ही फुर्ती के साथ उसने उसे थाम लिया। पेड़ के ऊपर सीटी बजाता हुआ वह चुन-चुनकर आमों को तोड़ने लगा।

काली चट्टान पर बैठे-बैठे मैं सोचने लगा। अपने-आपसे मैंने कहा—चलो अच्छा हुआ, आम की बात याद आ गई, नहीं तो घर में पैर रखते ही कृष्णावती बरस पड़ती—"आम लाये या नहीं ?" और मुझे पिछली बार की तरह बहाना करना पड़ जाता। इस बार वह अपनी आदत से विवश, आंखों में झूठे रंज का भाव लाकर कहती—"रहने दो, मैं किसी और से मंगा लूंगी !"···

कृष्णावती मेरी सगी बहन नहीं थी, फिर भी यह ख्याल कभी नहीं आता कि वह मेरी नहीं। वह भी मेरे साथ इस तरह पेश आती कि कोई भी देखनेवाला यही समझता कि हम दोनों सगे थे। आज से कोई सात महीने पहले न मैं उसे जानता था और न वह मुझे, फिर भी हमारी आज की घनिष्ठता वर्षों पुरानी-सी लगती है।

सात महीने पहले की बात है। एक रात गांव के इस्लाम मियां ने एक लड़की को आत्महत्या करते बचाया था। गांव के लोगों ने उससे तरह-तरह के प्रश्न पूछे थे। और उत्तर में उस लड़की ने केवल एक ही वाक्य कहा था—

"मेरा मर जाना ही अच्छा होगा ! मेरा कोई नहीं है।"

उस दिन मेरी छोटी बहन को मरे पूरा एक महीना हुआ था। मां कोने में बैठी दिन भर रोती रहती थी। कृष्णावती को देखकर उसने उससे पूछा था—

"सचमुच तुम्हारा कोई नहीं है, बेटी ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णावती ने पहली बार लोगों के सामने मेरी मां को बताया था कि उसके मां-बाप कोई भी नहीं। वह इधर-उधर भटकती रही है, कभी रूखी-सूखी खाकर, कभी भूखी रहकर। जीवन में कोई अवलंब न होने पर उसने अपने को नदी में बहा देना ही हितकर समझा था। अपनी बातों को उसने इस ढंग से कहा था कि मां की आंखें भर आयी थीं। उसने धीरे-से भर्रायी हुई आवाज़ में पूछा था—

"जब तुम्हारा कोई नहीं है बेटी, तो तुम मेरे यहां रह सकती हो—मुझे अपनी मां समझकर!"

सजल नेत्रों से मौन रहकर कृष्णावती ने मां के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था। बस तभी से मेरी छोटी बहन की जगह लेकर वह हमारे घर में रहती है, मेरी सगी बहन की तरह।

टोकरी भर जाने पर राजेश पेड़ से उतर पड़ा। उसके हाथ से टोकरी थामकर मैंने आमों को देखा। बीस से अधिक थे। उनमें से एक आम लेकर राजेश ने दांतों से काटा। भीतर एक हलका पीलापन आने लगा था, जिसे दिखाते हुए राजेश ने कहा—

"ये तो अचार के लायक नहीं रहे।…"

मैंने एक बार पेड़ों की ओर देखा। यही एक पेड़ था, जिसके फल सबसे ज्यादा कच्चे थे। इनसे ज्यादा कच्चे आम पाना दुश्वार था, इसलिए मैंने कहा—

"खैर, ये ही सही! कृष्णावती से राहत तो मिल जाएगी।"

राजेश ने फलों से लदे सब पेड़ों की ओर नज़र दौड़ाते हुए कहा—

"गांव के नटखट बच्चों से ये बच पाएं तब तो! वे तो तहस-नहस करते ही रहते हैं।"

सचमुच ही अगर बच्चों से ये आम बच पाएं तो दो-तीन सप्ताह में पक जाने की संभावना थी। फिर खयाल आया कि उन लोगों से अगर ये बच भी गए तो जिनका काम ही होता है इधर-उधर से फल चुराकर बाजार में बेच आना, उनसे कैसे बचेंगे?…

घर पहुंचकर मैंने आम की टोकरी कृष्णावती के हाथों में रखते हुए कहा—

"ये रहे तुम्हारे आम! पर सोचता हूं, ये अचार के लायक नहीं रहे। पत्तों से ढांप दोगी तो एक ही सप्ताह में पक जाएंगे।"

वह मुस्कराकर रह गई। क्यों मुस्कराई, पता नहीं। भला, इसमें मुस्कराने की बात ही क्या थी! कुछ घड़ी बाद जब वह मेरे लिए चाय लेकर आयी तो मैंने पूछा—

"तुम बात-बात पर मुस्कराती क्यों हो?"

"तुम्हें अच्छा नहीं लगता?"

"यह अच्छा लगने-वगने की बात नहीं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अगर तुम्हें अच्छा नहीं लगता हो तो मैं···"

"मुझे तो अच्छा लगता है, पर···"

"अगर कहो तो बात-बात पर रोती रहा करूं !"

"एक बार इस रोने का नमूना तो दिखा दो, फिर कह सकूंगा !"

अनायास ही उसके चेहरे पर फिर से मुस्कान थिरक उठी और मेरे हाथ से जूठी कटोरी लिये वह रसोई में चली गई। उसके लंबे बाल, जोकि जंगली लताओं की तरह डोलते रहते थे, उसके चले जाने पर भी मेरी आंखों के सामने झूमते रहे।

इस छोटी-सी अवधि में मां कृष्णावती को बहुत अधिक चाहने लगी थी। कई बार भूल से वह उसे माधवी कहकर पुकार लिया करती थी। माधवी मेरी बहन थी, जिसकी तस्वीर आज भी मेरी आंखों में उतनी ही सजीव है, जितनी उसके जीवनकाल में थी। कृष्णावती की आंखें और आवाज़ उससे मिलती-जुलती थी। मां कृष्णावती को उसी आवाज़ में पुकारा करती थी, जिससे वह माधवी को पुकारती थी।

पिछली रात की बात है। मां ने कृष्णावती को अपने बहुत पास बुलाकर कहा था—

"बेटी, अब तक तुम्हें कोई लेने नहीं आया। शायद अब कोई नहीं आएगा!···"

कृष्णावती अपना थूक घोंटती हुई बोली थी—

"मेरा तो कोई नहीं है मां, कौन लेने आएगा ! और फिर अब आपको और भैया को छोड़कर जाना भी तो अपने से नहीं हो सकेगा।"···

"एक बात कहूं, बुरा तो नहीं मानोगी ?"

"आपकी बातों का मैं बुरा कैसे मान सकती हूं !" एक बच्ची की तरह एकदम भोलेपन से कृष्णावती बोली।

"तुम्हें अपने यहां आश्रय देते हुए सोचा था कि तुम्हें पाकर मैं अपनी माधवी को भूल सकूंगी, पर इसके साथ मेरे मन में एक और बात थी। मैं चाहती थी कि तुम इस घर के काम-काज में हाथ बंटा दिया करोगी। लेकिन अब तो तुम्हें केवल अपनी बेटी मान यहीं रह जाने को कहूंगी। मेरी माधवी को तो भगवान उठा ले गया···न जाने पिछले जन्म के किस पाप की सजा थी वह। अब अगर तुम भी छोड़कर चली जाओगी तो ऐसा लगेगा कि दो बेटियों के चले जाने पर यह मां जिए तो कैसे ?"

मां की आंखों में तो बात-बात पर आंसू छलछला आते थे। इस वक्त भी वही हुआ जबकि कृष्णावती बड़े संयम के साथ चुपचाप बैठी रही। उसके चेहरे की प्रतिक्रिया से यह स्पष्ट था कि वह किसी दर्द को भीतर ही दबाने के प्रयास में थी। मां ने आगे कहा—

"तुम इतनी जल्दी हमारे इतने पास आ जाओगी, इसका हमें खयाल तक नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। न जाने कैसा संयोग है यह मुझे तो एक पल के लिए भी ऐसा नहीं लगता कि तुम किसी दूसरे घर से आयी हो।"

इसके बाद मां ने उसके सामने रो-रोकर माधवी की कहानी सुनायी थी और अंत में आंसू पोंछती हुई बोली थी—

"उसकी शादी के लिए मैंने कुछ गहने बनवाए थे। सोने की दो चूड़ियां, एक पतला-सा हार और दो झुमके हैं।..." इतना कहती हुई मां ने अपने तकिए के नीचे से टीन का पुराना डिब्बा निकाला और कृष्णावती की ओर इन शब्दों के साथ बढ़ा दिया था—

"ये गहने कहीं यों ही सड़ न जाएं, इसीलिए अब ये तुम्हारे हैं, बेटी! अभी से तुम्हें दिये देती हूं, कहीं ऐसा न हो कि इस बार भी मेरे मन की अभिलाषा अधूरी रह जाए?"

मां की बात समाप्त होने से पहले ही कृष्णावती मां से लिपटकर सिसकने लगी थी और मैं कमरे से बाहर होकर आकाश के झिलमिलाते तारे देखने लगा था। अपनी मां की उस हरकत से मुझे हैरानी नहीं हुई थी। माधवी के चल बसने पर कई दिनों तक वह उन गहनों को छाती से लगाए रोती रही थी। एक दिन उसने मुझसे कहा था—

"ये गहने किसी गरीब लड़की को दे दूंगी। सामने रहेंगे तो मुझे काटने दौड़ेंगे!"

मैंने महसूस किया कि ऐसा करके मां को एक आतमशांति-सी मिली होगी!

कुछ देर बाद कृष्णावती मेरे पास पहुंची थी, मानो किसी एहसान के बोझ से दबी हुई। आंखों में स्नेह का पानी था। उसने जो कुछ कहा, मैंने ध्यान से सुना और तब एक सहज मुस्कान के साथ मैं बोल उठा था—

"नहीं, कृष्णा! अगर तुम गहने नहीं स्वीकारोगी तो मां को बहुत ही दुख होगा!"

वह मेरे पास ही बैठ गई थी। बातों के दौरान मैंने चाहा था कि उसके पिछले जीवन के बारे में उससे पूछूं। पर इस डर से नहीं पूछा कि कहीं फिर पहले की तरह उसके चेहरे पर वही मायूसी न आ जाए और वह बात टाल न दे!

कृष्णावती तो सुमित्रा से भी अधिक रहस्यमय थी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

एक बीघा प्यार

इस उपन्यास को लिखने का विचार मन में उस समय कौंधा था, जब देश में सरकार की ओर से बेकारी की बाढ़ को रोकने के लिए चार दिनों की नौकरी की व्यवस्था हुई थी और युवा वर्ग उस नौकरी पर टूट पड़ा था, क्योंकि उसमें मेहनत कम करनी पड़ती थी और फिर सरकारी नौकर होने की अहमियत भी हासिल होती थी। यह वह वक्त था, जबकि खेतों के मज़दूर भी उस प्रलोभन में आ गये थे और चार दिनों की उस नौकरी को पाने के लिए लपक पड़े थे। परिणाम यह रहा कि खेतों में काम कराने के लिए मज़दूरों का अभाव होने लगा। बेकारी समाप्त करने के उस राजनीतिक छलावे के शिकार हर गांव, हर शहर की युवा पीढ़ी ही रही थी। ईख की फसल तैयार थी और उन्हें काटने के लिए मज़दूरों का मिलना कठिन था। सब्ज़ियों के खेत मुर्झाये पड़े थे।

मॉरिशस कृषि प्रधान देश ठहरा! उसकी पनचानवे प्रतिशत आय खेतों पर निर्भर होती है। उन्हीं खेतों और खेतिहारों की उस स्थिति पर सोचते हुए मैंने अपने गांव के भीतर उस व्यक्ति को ढूंढ़ निकाला, जिसके भीतर खेतों का प्यार मरा नहीं था और योग्यता के बावजूद जिसके भीतर सरकारी नौकरी का मोह नहीं पैदा हुआ था। उसी साहसी नौजवान के इर्दगिर्द—जिसके लिए खेतों के काम में सरकारी ओहदे से अधिक प्रतिष्ठा थी—मैंने अपनी कहानी का ताना-बाना बुना और जीवन के एक आदर्श को यथार्थ के मौजूद रंगों के साथ रंगकर 'एक बीघा प्यार' के रूप में प्रस्तुत किया।

वास्तव में यह उस मॉरिशसीय यथार्थ की कहानी है जो अपने में एक आदर्श भी लिये हुए है। मैं तो आज भी यह कहता हूं कि अगर मेरे मां-बाप अधिक न सही, केवल एक बीघा जमीन छोड़कर गये होते तो आज मैं सरकारी नौकरी के नरक में न होता!

खैर, एक बीघा प्यार लिखते समय मैंने कोई दिमागी कसरत नहीं की है और न ही पात्रों का मैंने निर्माण किया है, फिर भी 'समीक्षा' में गोपाल राय की इस बात से प्रसन्न.हुए बिना नहीं रहा जाता…"उपन्यासकार ने हीरा के चरित्र-निर्माण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा का सुन्दर परिचय दिया है।" इसके साथ अगर मैं 'कल्पना' से विवेकी राय का यह वाक्य उद्धृत नहीं करूंगा तो मेरा आत्मविज्ञापन बल नहीं पाएगा—"अभिमन्यु अनत ने हीरा का चरित्र बड़े ही सहज यथार्थ और मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित किया है। इसमें उपन्यासकार को बड़ी सफलता मिली है।" विवेकी राय का यह कहना मेरी पीठ को कुछ अधिक थपथपा गया कि "अभिमन्यु ने जिस ढंग से कथानक प्रस्तुत किया है, वह सर्वथा अनुकरणीय एवं प्रेमचन्द-परम्परा की आगे की कड़ी है।"

आत्म-विज्ञापन की भी एक हद होती है, फिर भी मैं गोपाल राय के इन शब्दों के साथ उस हद को पार कर रहा हूं—"कोई उपन्यास आदर्शवादी ढर्रे पर चलकर भी मर्मस्पर्शी और प्यारा हो सकता है, इसकी पुष्टि के लिए यदि कोई उपन्यास पढ़ना हो तो अभिमन्यु अनत का 'एक बीघा प्यार' पढ़ा जा सकता है··· इस उपन्यास के द्वारा हिन्दी उपन्यास को एक नया आयाम प्राप्त हुआ है।"

इस विज्ञापन से प्रभावित होकर अगर आप मेरे इस उपन्यास को पढ़ने की ललक त्याग नहीं पा रहे हों, तो मैं कहूंगा कि आप उसे पढ़ ही डालें! और हां, आप अपनी प्रतिक्रिया अवश्य भेजें! बात यह है कि अपनी पुस्तकों की प्रशंसा सुनना और पढ़ना मुझे बड़ा अच्छा लगता है; लेकिन फिर दूसरे क्षण प्रशंसक पर तरस आ जाता है। उसकी बेवकूफी पर उदास हो जाना पड़ता है। हां, अपने आलोचक और नकारनेवाले को मैं मनीषी मानता हूं और कभी समय मिलने पर उसकी जीवनी लिख डालने को सोच जाता हूं।

हीरा का खेत सपाट, नंगा और सूखा था।

आसपास के सभी खेतिहर हीरा के उजड़े हुए खेत को देखने पहुंच गये थे। सभी हाय-हाय कर रहे थे। हीरा एक हूक के साथ जमीन पर बैठा तो फिर उसका उठना दुश्वार हो चला। कुछ क्षण पहले वह बच्चों की तरह रो रहा था। उसके आंसुओं की छाप अब भी उसके सांवले गालों पर स्पष्ट थी। सभी लोग अपने-अपने ढंग से उसे मना रहे थे। दुरपद ने डरते-डरते कह ही दिया था कि यह काम जोगिया और उसके भाई का है। उसने अपनी आंखों से तो नहीं देखा था पर उसके पड़ोस के एक लड़के ने, जोकि खेतों में खरगोश का शिकार कर रहा था, अपनी आंखों से सभी कुछ देखा था। पर जोगिया-परिवार के डर से यह बात वह सभी के सामने कहने को तैयार नहीं था। दुरपद से तो उसने यहां तक कहा था कि वह दोनों भाइयों को मशीन की तरह बैंगन के सभी पौधों को उखाड़ते देखकर चाहता था कि अपने हाथ की लाठी लिये उन पर टूट पड़े पर परिणाम के डर से वह ऐसा नहीं कर सका था।

हीरा के लिए उसका वह सुन्दर खेत मर गया था। उसकी अपनी मां और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने बाप की मृत्यु पर भी उसे इस तरह दुख नहीं हुआ था। यह उसके जीवन का सबसे बड़ा और दर्दनाक हादसा था। लोग कहे जा रहे थे, "उन हाथों को लकवा क्यों नहीं मार गया!"···"क्या मिला उन्हें, एक गरीब को बर्बाद करके ?" "बेचारे हीरा की कमर टूट गयी।"

सभी ने एक स्वर से कहा कि चीज़ों की हद होती है। उन बेरहमों पर इस गरीब का कलपना पड़कर ही रहेगा ! हीरा न तो लोगों को देख पा रहा था और न उनकी आवाज़ ही सुन पा रहा था। उसकी आंखों के सामने का अंधेरा गहन था। कल उसका यह खेत हरा-भरा था, आज काला दीख रहा था। कल पौधों के फलों पर उसने भविष्य के चित्र देखे थे, आज बर्बादी की तस्वीर देख रहा था। उसके दुर्भाग्य की जीत हुई थी और परिश्रम की हार। केवल मिर्च के कुछ पौधे थे जो अब भी दूर-दूर पर खड़े दिखाई पड़ रहे थे।

कोई घंटे भर बाद हीरा को होश आया और चारों ओर देखते हुए वह चिल्ला पड़ा—"सोम कहां है ?"

लोगों ने चारों ओर देखा—सोम वहां नहीं था। हीरा अपने एक पैर को पकड़े, दूसरे पर शरीर का सारा बोझ रखकर खड़ा हो गया। उसकी नज़र यूसुफ पर पड़ी—"यूसुफ, उसे रोक लो।"

हीरा की बात को समझकर यूसुफ राधन के साथ गांव की ओर दौड़ पड़ा। रामदत्त गोसाईं अपनी गाड़ी को रास्ते में छोड़कर खेत में आ गया और जोर-जोर से जोगिया को गाली देने लगा। मंगरू मुर्झाये पौधों को उठाकर देखता रहा। महीनों तक खून-पसीना एक करके पैदा किये हुए फलों को उजाड़ दिया गया था। अन्त में सभी लोगों ने हीरा से यही कहा कि पुलिस में खबर कर दी जाए।

"चीजें तो चली गयीं, अब पुलिस में रपट करने से क्या लाभ !" हीरा ने भर्राये स्वर से कहा।

"उन कमीनों को यों ही छोड़ने की सोच रहे हो ?"

"उन्हें न छोड़ने पर भी तो अपना कुछ लौटनेवाला नहीं !" हीरा की आवाज़ से पीड़ा और करुणा एक साथ टपक रही थी। उसकी हालत एक बीमार बच्चे की तरह थी।

"आज यह तुम्हारे साथ हुआ है, कल दूसरों के साथ होगा !"

"आप लोग बैर बढ़ाने की बात कर रहे हैं।"

"इतने बुजदिल न बनो, हीरा !" मंगरू ने कुछ जोर से कहा।

"मंगरू भैया ! मेरा सभी कुछ लुट गया···"

अपना वाक्य समाप्त करने से पहले वह बेहोश होकर गिर पड़ा। मंगरू के साथ दो और व्यक्तियों ने मिलकर उसे जल्दी से उठाया। उसके आपस में सटे हुए दांतों को खोलने का प्रयास करते हुए मंगरू ने कहा—"पानी ! जल्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से !…"

आकाश पर बादल उमड़ आये थे। प्रकृति के इस व्यंग्य को न देखने के लिए ही हीरा ने आंखें मूंद ली थीं। किसी ने कहा कि भगवान मरे हुए घोड़े को पानी पिलाना चाह रहा है। काली बदली को देखकर खेतिहरों के मन में नया उल्लास जाग उठा था, पर हीरा के लिए उन सभी के भीतर तरस भरा भाव था। यहां कोई भी ऐसा किसान या मजदूर नहीं था, जिससे हीरा की दुश्मनी हो। लोगों को इस बात की हैरत थी कि हीरा जैसे व्यक्ति के साथ ऐसा करने का क्या कारण था?

सोम को तूफान की तरह घर में प्रवेश करते देख करुणा अचानक डर गयी। उसके चेहरे से स्पष्ट था कि वह अपने आपे में नहीं था। उसकी आंखें लाल थीं। उसकी चढ़ी हुई भौंहों को देखकर करुणा कुछ पूछने की हिम्मत नहीं कर पा रही थी। जरूर कोई अनर्थ हुआ है—इस बात को समझकर भी वह चुप थी। इस घर में सोम को बात-बात पर नाराज होते उसने कई बार देखा था, पर आज जैसी स्थिति में वह उसे पहली बार ही देख रही थी। किनारेवाले कमरे में पहुंचकर सोम ने चारपाई का विस्तर उलटा और उसके नीचे से उस तलवार को खींच निकाला जो केवल कालीमाई की पूजा में बाहर निकलती थी। इसके चमकदार भाग में सिन्दूर के टीके अब भी चमक रहे थे। उसे लेकर जैसे ही उसने घर से बाहर निकलना चाहा कि करुणा उससे लिपट गयी—"कहां जा रहे हो इसे लेकर?" वह चीख उठी।

"करुणा!"…झकझोरकर सोम ने उसे एक ओर ढकेल दिया। करुणा ने तुरन्त अपने को संभाला और दोबारा सोम से लिपट गयी।

"हुआ क्या है?" डरे और रुआंसे स्वर में उसने पूछा।

"मुझे छोड़ दो!"

"पहले बताओ, हुआ क्या है?"

इतने में यूसुफ और राधन दोनों भीतर आ गये। यूसुफ ने लपककर उसके दोनों हाथों को पकड़ा और राधन किसी तरह उसके हाथ से तलवार लेकर रहा। दोनों ने मिलकर उसे चारपाई पर बैठाया और उसको घेरे खड़े रहे। सोम का शरीर उत्तेजना से कांप रहा था। उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए राधन ने कहा—"जो कुछ तुम करना चाहते हो, उससे उजड़ा हुआ खेत तो फिर से हरा-भरा नहीं हो जाएगा!"

"जरा दिमाग से काम लो!" यूसुफ बोला।

"तुम मेरे मित्र हो या दुश्मन?" सोम के स्वर में कम्पन था।

"तुम्हें क्या लगते हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मित्र होकर दुश्मन की तरह क्यों पेश आ रहे हो ?"

"हम दुश्मन की तरह पेश आ रहे हैं ?"

"मेरे दुश्मन को बचाने की तुम्हारी इस कोशिश को क्या कहूं !"

"पागलपन पर मत उतरो सोम !"

"मैं कहता हूं, मुझे रोकने का तुम्हें कोई हक नहीं !"

क्षण भर चुप रहकर यूसुफ ने कुछ बदले हुए स्वर में पूछा—"बदला ही लेना है न तुम्हें !"

"इस बार मैं उसके दो टुकड़े करके ही दम लूंगा !"

"कानून तुम्हें यह दम लेने दे, तब तो !"

चारपाई पर बिछी चादर को झटककर नीचे फेंकते हुए सोम दोनों के बीच खड़ा हो गया। उसके चेहरे के अजीब भाव को देखकर राधन ने उसे बैठाने की कोशिश करते हुए कहा—"बैठो तो सही ! तुमसे जरूरी बात करनी है।"···

"मैंने कह दिया कि तुम दोनों मुझे नहीं रोक सकते।" यह आवाज सोम के दांतों से टकराती हुई बाहर आयी।

"और मैंने भी कह दिया है कि तुम यहां से नहीं निकल सकते !" —यूसुफ ने भी अपने स्वर को ऊंचा करते हुए कहा।

सोम ने चाहा कि अपने दोनों मित्रों को सामने से ढकेलकर वह वहां से निकल जाए। उसने कोशिश भी की, पर दोनों से पार पाना उसके लिए उतना सहज नहीं था, जितना कि उसने सोचा था।

कोई पन्द्रह मिनट बाद मंगरू दो अन्य व्यक्तियों के साथ हीरा को लिये आ गये। हीरा की बेहोशी टूट चुकी थी, फिर भी वह मुद्दतों का बीमार-सा प्रतीत हो रहा था। मंगरू ने सहारा देकर उसे सोम की बगल में बैठा दिया। अपने भाई की हालत देखकर सोम के भीतर का तूफान और भी जोर पकड़ चुका था। दोनों भाइयों के चेहरे के भाव भिन्न थे। हीरा के चेहरे पर सदमे का भाव और निराशा का गहरापन था, जबकि सोम के चेहरे पर प्रतिशोध का लाल रंग था, आंखें जल रही थीं।

उस दिन राधन और यूसुफ दिन भर दोनों भाइयों के पास बैठे रहे। अंधेरा छा जाने पर यूसुफ ने राधन से कहा—"मुझे घर पर जरूरी काम है, मैं जा रहा हूं, पर तुम्हें यहीं रहना होगा !"···

"तुम चिन्ता न करो, मैं यहीं रहूंगा !"

घर पर चूल्हा नहीं जला। किसी को भूख-प्यास होती तब तो ! मंगरू को जब यह बात मालूम हुई तो वह दौड़ा अपने घर गया और एक छोटी-सी देगची में कुछ गरम दूध लिये वापस आया। जिस समय कटोरे में दूध लिये करुणा हीरा के सामने पहुंची, उस समय हीरा की आंखों में आंसू छलक रहे थे। ऐसा प्रतीत हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा था, जैसे घर में किसी की मृत्यु हो गयी हो और लोग मातमपुरसी कर रहे हों। करुणा की ओर देखते हुए हीरा ने कहा—"मैं नहीं पीऊंगा, करुण!"

"थोड़ा-सा पी लीजिए!"···

"कण्ठ बन्द है, यह नीचे नहीं उतर सकेगा!"

"तुम्हें यह दूध पीना ही होगा!" मंगरू ने कहा।

राधन ने भी इस अनुरोध को दोहराया और तब विमला विह्वल स्वर में बोली—"पी लो, भैया!"

विमला के इस अनुरोध को हीरा से टाला नहीं गया। करुणा के हाथ से कटोरा लेकर उसने किसी तरह दो घूंट दूध गले के नीचे उतारा और कटोरा लौटा दिया। हीरा के लिए उस दूध में न दूध का स्वाद था, न पानी का, न वह गरम था और न ही ठण्डा! विमला की ओर देखते हुए उसने कहा—"विम्मू! तुम्हें सोने की चूड़ियां चाहिए थीं न!"

विमला अपने कण्ठ के नीचे कोई मोटी-सी चीज़ रोके हुए थी।

"कहां से लाऊंगा अब, विम्मू!···"

हीरा के इस वाक्य ने सभी को शब्दहीन बना दिया था। राधन कुछ बोलना चाहकर भी बोल न सका। मंगरू ने भी चाहा था, कहे कि खेत उजाड़कर कोई तुम्हारे हाथ-पैर थोड़े ही ले गया, पर कह न सका। हीरा का बाप जीवित होता तो उसने अब तक अवश्य ही यह कह दिया होता कि जान है तो जहान है!

हीरा को तो आज अपनी ही बातें खोखली-सी प्रतीत हो रही थीं। वह तो बात-बात पर लोगों से कहता था कि जब तक सांस बाकी है, तब तक आस भी बाकी रहनी चाहिए! लेकिन आज वह खुद नहीं समझ पा रहा था कि उसकी आस खो गयी थी या सांस? नीद के लिए भी इस घर का दरवाज़ा आज बन्द था।

नींद किसी की आंखों में नहीं थी।

हीरा सोच रहा था कि जीवन गुजारने के लिए अब कौन-सा उपाय बाकी था। वह अंधेरे में भी रास्ता तलाश कर रहा था, जबकि सोम इन सब बातों को बिना कोई महत्त्व दिये केवल यही सोच रहा था कि वह कब जोगिया को अपने सामने पा सके। उसकी रगों में दुख से अधिक क्रोध की उष्णता दौड़ रही थी।

मंगरू के चले जाने पर जब राधन को भी यह विश्वास हो चला कि अब सोम कुछ शान्त दिखाई दे रहा है, तो वह भी जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। हीरा ने उसे रोकते हुए कहा—"आज रात यहीं सो जाओ!"

"मां राह देख रही होगी···"

"उसे तो मालूम होगा कि तुम हमारे यहां हो···"

"वह जानती है।"

"फिर भी कह क्यों नहीं आते! उसे मालूम हो जाएगा कि तुम हमारे यहां सो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये हो।"

"जैसी तुम्हारी मर्जी !" यह कहते हुए राधन अपनी जगह पर दोबारा बैठ गया। करुणा हीरा की ओर देख रही थी और हीरा शून्य को भेद रहा था।

तीन दिन बाद हीरा अपने खेत पर पहुंचा। उखड़े हुए पौधे सूखे पड़े थे। वह खेत उसे अपने उस खेत जैसा नहीं लग रहा था, जहां गिनगिनाकर पसीने की बूंद उसने बहायी थीं। उसे ऐसा लग रहा था कि रास्ता भूलकर वह श्मशान में पहुंच गया है। चारों ओर के खेत हरे-भरे थे, केवल हीरा का खेत था जा मातम-सा मना रहा था। हीरा अकेला शरीफ़े के पेड़ के नीचे बैठा हुआ था। पन्द्रह मिनट पहले खेत में काफ़ी लोग थे। पुलिस-इन्सपेक्टर को आते देख पड़ोस के सभी खेतिहर वहां पहुंच गये थे। इन्स्पेक्टर के प्रश्नों से हीरा को ऐसा लगा कि चोर कोतवाल को डांटने लगा था। इन्स्पेक्टर का पहला प्रश्न था—"केवल दो आदमियों ने इतना बड़ा खेत कैसे उजाड़ दिया ?"

"यह काम दो घंटों में भी किया जा सकता है।" हीरा ने धीरे-से कहा था।

"कभी किया है ऐसा काम ?"

"नहीं !"

"तो फिर आपको मालूम कैसे हुआ ?"

"इन्स्पेक्टर साहब, यह बात जानने के लिए हमें पहाड़ पर चढ़ने की आवश्यकता नहीं। इन्हें रोपने में महीना लग सकता है, पर उखाड़ फेंकने के लिए दो घण्टे बहुत हैं।..."

"आप अब भी यही कहते हैं कि यह काम जोगिया, लछमन और उसके भाई का है ?"

"हां !"

"क्या प्रमाण है आप के पास ?" इन्स्पेक्टर ने डांटते हुए पूछा ?

"प्रमाण कैसा ?"

"आपने उसे यह सब कुछ करते अपनी आंखों से देखा था ?"

"मैं तो नहीं देखा था, पर...!"

"जो बात आपने देखी नहीं, उसे आप अदालत में कैसे कहेंगे ?"

राधन, जोकि सामने पत्थर पर बैठा सभी कुछ सुन रहा था, अपनी जगह से उठकर सामने आ गया और इन्स्पेक्टर की ओर देखते हुए उसने पूछा—"इन्स्पेक्टर साहब, आपको कुछ मिल तो नहीं गया है ?"

"तुम कौन हो, बीच में बोलनेवाले ?"

"या मिलने की उम्मीद है !"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"यह बाद में जानियेगा, पहले आप यह बताइए कि आप यहां स्टेटमेंट लेने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये हैं या देने ? आप कहीं यह तो नहीं प्रमाणित करना चाह रहे हैं कि हीरा ही अपना खेत अपने हाथों उजाड़कर यह नाटक खेल रहा है ?"

इन्स्पेक्टर ने कुछ आग-बबूला-सा होते हुए राधन की ओर देखा और सामने केलोगों की ओर नज़र दौड़ाकर पूछा—"कौन है यह लड़का ?"

"इन्स्पेक्टर साहब, आप यहां स्टेटमेंट लेने आये हैं, मेरा परिचय लेने नहीं !"

"चुप रहो, राधन !"—हीरा बीच में ही कह उठता है।

"इन्स्पेक्टर साहब, मैं यह नहीं जानता कि पुलिस-अफसर के साथ इस तरह बात करनेवाले व्यक्ति के साथ कौन-सी कार्रवाई की जाती है। अगर यह जुर्म है और इसकी कोई सजा भी है तो मैं नहीं जानता, पर जो बात मैं भली-भांति जानता हूं, वह यह है कि इस मामले को किसी-न-किसी तरह अदालत तक पहुंचना है। मैं सोचता हूं कि गांव के किसी भी आदमी को यह विश्वास नहीं होगा कि यह मामला कमजोर है और अदालत तक पहुंचते-पहुंचते रास्ते ही में दम तोड़ देगा।"

इतना कहकर राधन वहां से टल गया था। इन्स्पेक्टर के चेहरे की ओर देखते हुए हीरा को ऐसा महसूस हुआ था कि राधन सचमुच ही उत्तेजित होकर मामले को कमजोर कर गया था, इसलिए गिड़गिड़ाहट के साथ उसने इन्स्पेक्टर से कहा था—"बच्चा है उसकी बातों पर ध्यान न दीजिएगा !"

"आज शाम को आप थाने पहुंचिएगा !"—इतना कहकर इन्स्पेक्टर अपनी मोटर की ओर चल पड़ा था।

इस घर में यह आफत कहीं मेरी लायी हुई तो नहीं ?—करुणा अपने आप से पूछती आ रही थी शुरू में, चन्द दिनों की खुशियों से उसने इस घर को छल लिया था। यह सोच-सोचकर अपने को क्षमा नहीं कर पा रही थी कि जो कुछ हुआ, सब उसी के लिए। इस घर की आत्मशान्ति, आमोद और भविष्य के ऊपर उसने अपनी उदासी की मोटी चादर फैला दी थी। सूप के चावलों के बीच अपनी अंगुलियों को दौड़ाती हुई वह हीरा के बारे में सोच रही थी। इस घर में हीरा ही था, जिसके लिए उसके भीतर अगाध दया थी। वह जानती थी कि इस समय बगल के कमरे में बैठा हुआ वह घोर चिन्ता में डूबा होगा। करुणा का मन करता था कि वह उसके सामने पहुंचकर यह कहते हुए माफी मांगे कि इन सभी अनर्थों का कारण वही ठहरी।···

सबसे अधिक दुख करुणा को इस बात का था कि जबसे खेत की तबाही हुई है, तब से हीरा न मन से खाता है न पीता है। हर बार करुणा और विमला मिलकर उसे खाने को विवश करती हैं। करुणा के बार-बार कहते रहने पर आज भी उसने केवल आधी रोटी खायी थी। इन बातों से करुणा की अपनी भूख भी मारी जाती थी। आज उसका जी कुछ भी खाने को नहीं कर रहा था। सूप को मेज पर रखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए साहस बटोरकर वह दूसरे कमरे में पहुंची जहां सचमुच ही गाल पर हाथ रखे हीरा बैठा हुआ था। करुणा को देखकर उसने गाल से हाथ हटाकर कहा—"मैं तुम्हें बुलाने ही वाला था कि तुम आ गयी।"

"कोई काम है?"

"तुमसे कुछ बातें करनी हैं।"

अपनी अंगुली को ठोड़ी पर रखे वह करुणा को देखता रहा। करुणा खड़ी रही। अपनी कुर्सी पर ठीक से बैठते हुए हीरा ने कहा—"बैठो, करुण!"

करुणा ने इस अनुरोध का आदेश की तरह पालन किया। कुछ क्षण दोनों के बीच खामोशी रही। सिर्फ बाहर खेलते हुए बच्चों की आवाजें भीतर आ रही थीं। अपने अंगूठे को दांतों से दबाये हीरा करुणा को एकटक देखता रहा।

"करुण ..."

करुणा ने सिर उठाकर उसकी ओर देखा, पर हीरा ने बात पूरी करने में अपने को असमर्थ पाया और फिर पल-भर की खामोशी रही। बाहर बच्चों का कोलाहल अधिक ऊंचा होता जा रहा था। हीरा ने करुणा पर से आंखें हटाकर सामने की दीवार पर सुभाष बाबू के चित्र की ओर देखते हुए पूछा—"भोजन कर लिया तुमने?"

"हां!"—करुणा ने झूठ कहा।

"सोम अभी तक खाने नहीं आया?"

"नहीं।"

"तुम जानती हो, करुणा! मुझे सबसे अधिक चिन्ता किस बात की है?"

"जानती हूं।"

"जानती हो?"

"हां, विमला की पढ़ाई की।"

"तुम तो मेरे मन की बात जानती हो! सचमुच केवल इस बात का डर है कि कहीं उसकी पढ़ाई न रुक जाए। मैंने सोम और विम्मू दोनों को पढ़ाने का संकल्प लिया था, पर सोम जब खुद ही पढ़ाई से ऊब गया तो मुझे बहुत निराशा हुई। किन्तु मैं कर ही क्या सकता था! लेकिन विम्मू की पढ़ाई भी अगर रुक गयी तो इसका जिम्मेदार मैं अपने आपको मानूंगा।..."

"भगवान ने चाहा तो उसकी पढ़ाई कभी नहीं रुकेगी।"

"रोना तो इसी बात का है करुण, कि भगवान प्रायः वही चाहता है जो हम नहीं चाहते, और जो हम चाहते हैं उसका खयाल शायद उसे बहुत कम रहता है।"

करुणा सुबह-शाम रोज हीरा को पूजा करते पाती थी, इसलिए भगवान को कोसते सुन उसने आंखें उठाकर उसकी ओर देखा। कुछ पूछना चाहा, पर पूछ न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पायी। उसे अपनी मां की याद आ गयी जो बात-बात पर भगवान को कोसने की आदी थी। एकाएक उसकी याद आ जाने पर उसका हृदय विह्वल हो उठा। उसे एक बार देखने की भारी इच्छा उसके मन में थी। सप्ताह ही तो हुआ है, जब हीरा ने उससे कहा था कि जिस दिन उसके खेत के बैंगन पहली बार बाजार पहुंचेंगे, उसी दिन वे एक साथ करुणा की मां को देखने जायेंगे। पर अब तो वह उम्मीद भी जाती रही। मां के खयाल में वह घुट ही रही थी कि उसने हीरा को कहते सुना—"हमारे साथ-साथ तुम्हें भी दुख सहना पड़ रहा है न!···"

"कैसा दुख?"

"तुम तो यही कहोगी। हमने तो तुम्हें यहां लाने की बात इसलिए की, क्योंकि हम तुम्हारे एकाकीपन और दुख को बांटना चाहते थे। पर सभी कुछ उल्टा हो गया···"

"मैं तो सोचती हूं···"

"तुम क्या सोचती हो, करुण?"

"जो कुछ हुआ है, मेरे कारण! मेरी मां हमेशा मुझे मनहूस कहा करती थी···" अजीब भोलेपन के साथ करुणा ने कहा।

"नहीं, करुण! इन बातों को होना था, हो गयीं। इसके लिए अपने-आपको कोसना ठीक नहीं···"

"अगर मैं यहां नहीं आती तो यह सब कुछ नहीं होता!"

"होनी होकर रहती है, पगली! और फिर हमें दुखी क्यों होना चाहिए? इतना कुछ हो जाने पर भी खेत में मिर्च के जो पौधे बाकी हैं, उनसे किसी तरह रसोईघर का प्रबन्ध हो ही जाएगा। मुझे तो आज भी इस बात का सन्तोष है कि यह सब कुछ हो जाने पर भी दूसरों के सामने हाथ फैलाने की नौबत नहीं आयी। मुझे तो आज भी विश्वास है कि समय के साथ सभी कुछ ठीक हो जाएगा।" एक तरह से अपने-आपको सान्त्वना देते हुए हीरा ने कहा।

करुणा को हीरा की बातें हमेशा से अच्छी लगती हैं, पर आज की बातें उसे हमेशा से अधिक अच्छी लग रही थीं। मन-ही-मन वह सोच रही थी कि वह अगर घंटों इसी तरह बोलता रहे तो वह सभी कुछ भूलकर उसे सुनती रहेगी। सचमुच उस स्वर में एक मिठास, एक आकर्षण और एक आत्मीयता-सी थी। लेकिन हीरा के स्वर का सुरीलापन उस समय अपनी पराकाष्ठा पर था, जब उसने कहा—"करुण! न जाने क्यों तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो···"

करुणा के मन का तार-तार इस वाक्य से झनझना उठा। उसने आगे सुना—"अगर मैं किसी परिस्थिति को झेलने की ताकत रखता हूं तो वह केवल तुम्हारे कारण। अगर तुम यहां नहीं होती तो मैं इन सभी बातों से हताश होकर न जाने क्या से क्या कर बैठता! हां, करुण! तुम्हें मेरी इस बात पर विश्वास करना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं तो एक अपाहिज इन्सान···"

"आप ऐसा न कहें।" करुणा ने उसे बीच ही में टोकते हुए कहा।

"करुणा ! मैं यह नहीं जानता कि आदमी जो कुछ महसूस करता है, उसे कह सकता है या नहीं; पर आज मैं उसे तुम्हारे सामने कहने की कोशिश अवश्य करना चाहता हूं। फिर भी, पहले तुमसे एक अनुरोध कर लूं। तुम मेरी बातों को चाहो तो सनक समझ लेना, पर उनका बुरा न मानना।"

अपनी आंखों में असमंजस की आभा लिये करुणा ने हीरा को देखा। उसकी आंखों में देखकर हीरा ने जो पाया, वह प्रोत्साहन था। उसी प्रोत्साहन का सहारा लेकर उसने हिचकिचाते स्वर में कहा—"करुणा, अगर इस अपाहिज व्यक्ति को कभी किसी सहारे की आवश्यकता हुई तो वह केवल तुम्हारा सहारा होगा···।"

करुणा ने बोझिल पलकों को ऊपर उठाया, पर हीरा की आंखों की स्निग्धता के सामने उसे उन पलकों को तुरन्त झुका लेना पड़ा। उसे जिस बात के लिए अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ था, उसी को उसने देखकर विश्वास करना चाहा। शायद यही कारण था कि उसकी पलकें अपने आप उठ गयी थीं, और झुक गयीं तो केवल इसलिए कि उसके सामनेवाली आंखों में उस सच्चाई की स्निग्धता थी।

"हां, करुण ! मैं खुद नहीं समझता कि मैं तुम्हें इतना अधिक···!"

तभी बाहर से सोम के पैरों की आवाज़ सुनाई पड़ी और हीरा के बाकी शब्द भीतर ही रह गये। सोम अन्दर आया तो करुणा अपने स्थान से खड़ी हो गयी। आते ही सोम ने कहा—"भैया, मैं सुरेन के यहां से आ रहा हूं।"···

करुणा की छोड़ी हुई कुर्सी पर बैठते हुए उसने भाई की ओर देखा। उसके भाई के चेहरे और आंखों में एक नया रंग था। चाहे वह रंग धुंधला था, फिर भी उसे देखते हुए सोम को ऐसा एहसास हुआ कि वह रंग एकदम नया था।

हीरा ने सोम की ओर देखते हुए ऐसा महसूस किया कि इधर कुछ दिनों में आज पहली बार वह खुश दिखाई पड़ रहा था। उसके मुंह से अभी-अभी उसने जो नाम सुना था, वह उसके बारे में अच्छी तरह जानता था। सुरेन गांव के युवा वर्ग का नेता था। जिस बात को वह समझ नहीं पाया, वह यह थी कि आखिर सुरेन के यहां से लौटने का मतलब क्या था ? वह कुछ पूछता कि उससे पहले सोम ही कह बैठा—"उसके आन्दोलनकर्ता कुछ युवक हमारी सहायता करना चाहते हैं।"

"हमारी सहायता ?"

"हां, भैया !"

"पर क्यों ?"

"क्योंकि वे लोग जानते हैं कि हमारे साथ बहुत बड़ा अन्याय हुआ है !'

"पर हम तो किसी सहायता की आवश्यकता नहीं समझते !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह समय झूठे और खोखले आदर्शों के सहारे जीने का नहीं है, भैया !"

कुछ देर तक सोचते रहने के बाद हीरा कुछ कहने ही वाला था कि सोम की ओर देखती हुई करुणा कह उठी—"चलो, पहले खाना खा लो !"

करुणा की इस बात पर ध्यान दिये बिना दोनों भाई अपनी बातों में लगे रहे सोम ने आगे कहा—"हम किसी के सामने हाथ थोड़े ही पसार रहे हैं ! जब लोग खुद हमारी मदद करना चाहते हैं, तो फिर उनकी सहायता को अस्वीकार करने का मतलब यही निकाला जाएगा कि हम घमण्डी हैं।"

"किस तरह की सहायता है वह ?"

"दो तरह की। एक तो उसके संघ के कुछ नौजवान हमारे खेत में दो-तीन काम करना चाहते हैं और नये पौधों के साथ हमें खेत सौंपने की इच्छा रखते हैं। दूसरी बात यह कि युवा वर्ग के सदस्यों ने हमारे लिए कुछ चन्दा उगाहा है।"

"पहली सहायता शायद हम स्वीकार लें, पर यह दूसरी सहायता हम नहीं चाहते।"

"आखिर क्यों ?"

"इसका क्या जवाब दे सकूंगा तुम्हें ! इसका उत्तर तो तुम्हारे पास खुद होना चाहिए !"

करुणा ने दोबारा आकर सोम से भात खाने की बात कही, परन्तु सोम अपनी जगह पर बैठा रहा।...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३

तीसरे किनारे पर

शुरू से अन्त तक अच्छा लिखनेवाले लेखक बहुत कम होते हैं। अधिक लेखक ऐसे होते हैं, जिन्होंने अच्छा लेखन थोड़ा-बहुत जरूर कर लिया है, लेकिन उनकी अधिक रचनाएं बकवास और फिजूल की होती हैं। इसी दूसरी श्रेणी के लेखकों में मैं भी हूं। एक-दो चीज़ें मैंने भी अच्छी लिख डाली हैं, लेकिन बकवास ही ज्यादा। प्रमाण के लिए दो भागों में आपके सामने अपने उपन्यास 'तीसरे किनारे पर' के कुछ अंश रखने को तबियत कर रही है। पहला भाग उपन्यास के प्रमुख पात्र से सम्बद्ध है और दूसरा भाग एक अध्यापक का भाषण। ये दोनों इस उपन्यास में असम्बद्ध हैं। 'तीसरे किनारे पर' की कहानी एक युवक की प्रणय-कथा के सिवाय कुछ और है ही नहीं, लेकिन मैंने उसमें इधर-उधर की बेकार और फालतू बातों को जोड़कर उसे डेढ़ सौ से अधिक पृष्ठों का उपन्यास बना डाला है। एक ओर दर्शन बखेरना था तो दूसरी ओर युवा पीढ़ी के मूल्यों पर फतवा पढ़ना था। यों तो नदी के दो ही किनारे होते हैं, पर इससे पहले कि कोई पाठक मुझसे यह पूछ बैठे कि यह तीसरा किनारा क्या है, मैं खुद अपने आपसे पूछे लेता हूं। ऐसा करके मैं कम-से-कम पाठक को उत्तर देने की विवशता से बच जाता हूं। इस पुस्तक के प्रकाशित हुए आज सात वर्ष से ज्यादा हो गये, और अब सोचता हूं कि इसका शीर्षक 'तीसरे किनारे पर' न होकर 'बिन किनारा' होना चाहिए था।

इस पुस्तक पर इस बात की भी हैरानी मुझे होती है कि नेशनल पब्लिशिंग हाउस इस उपन्यास को इतनी संख्या में बेच कैसे पाया ? लगता है कि कभी पाठक भी बौरा जाते हैं और अच्छे साहित्य के स्थान पर ऊटपटांग लेखन के चहेते बन जाते हैं। जब कई पाठकों ने लिखा कि यह उपन्यास उन्हें बेहद पसन्द आया, तो इस बार कहां वे मुझसे उस पर प्रश्न करते, मैंने ही कइयों से प्रश्न किया कि आखिर यह उपन्यास उन्हें इतना पसन्द क्यों आया ? लेकिन इस क्यों का उत्तर किसी ने नहीं दिया। लेखक अपनी जवाबदेही खो बैठे, यह उसके बौद्धिक दिवालियेपन के बाद स्वाभाविक हो सकता है; पर पाठक की जवाबदेही न रहे, यह अजीब बात हुई !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजीब बात तो हर जगह रहती है—मन्दिर से लेकर मंत्रालय तक, खैर। इस 'तीसरे किनारे पर' के कई पाठकों ने मुझसे कई अजीब सवाल भी किये। कई और कुछ न पूछकर बस यही पूछते रहे कि क्या वह मेरा अपना ही कॉलिज का जीवन तो नहीं था ? मेरा अपना कॉलिज जीवन तो चार दिनों का ही था, और चार दिनों में आठ दिनों की कहानी कैसे समा सकती है ! हां, किसी ने यह भी पूछा कि क्या उपन्यास का राकेश अभिमन्यु ही तो नहीं ? ऐसे तो अभिमन्यु अनत अपनी हर रचना में उपस्थित है, पर कहां और किस रूप में— यह बताते-बताते तो एक आत्मप्रदर्शन की मोटी पुस्तक अलग से ही तैयार हो जाएगी।

यह पुस्तक तो केवल आत्मविज्ञापन है। इसलिए विज्ञापन के उसूलों को ख्याल में रखकर ही बातें की जा रही हैं। विज्ञापन के भी उसूल होते हैं। अगर नहीं होते तो इस पुस्तक को तैयार करने की जरूरत समझी ही नहीं जाती। मैंने हमेशा अपने को उसूल का आदमी माना है। हां, उसूल क्या होता है—यह अभी मुझे जानना बाकी है !

···चीत्कारता हुआ संगीत और उसके साथ चिल्लाते हुए युवा स्वर ! लय-धुन के हर दायरे से बाहर होकर पॉप संगीत की झनझनाहट और उसके साथ झूमते हुए नवयुवक-नवयुवतियां ! गिटार की पहली झंकार के साथ उसने जो गीत शुरू किया था, वह इस समय कोलाहल में परिवर्तित हो गया था।

उस फास्ट म्यूजिक और मिले-जुले स्वरों के गीत में मैजिक मून का डांसिंग हॉल बाहरी दुनिया से एकदम अलग और भिन्न था। लोगों के साथ हॉल का प्रकाश और भी झूमता-सा लग रहा था। नीले रंग की दीवारों पर, नाचते हुए लोगों की परछाइयां भी कूदती-फांदती-सी लग रही थीं। कपड़ों के साथ लोगों के भावों की अस्त-व्यस्तता बढ़ती गई। चेहरों पर पसीने की बूंदें झिलमिलाती रहीं। सौंदर्य-प्रसाधनों का आकर्षण घुलता गया। लोशन-ओ-डी-कोलोन और उबटन की सुगन्धित हवा जाती रही, उसके गंदलेपन में धीरे-धीरे उन विभिन्न शरीरों के पसीने की बोझिल गंध से माहौल भारी-सा होता गया।

जिस वक्त अपने हाथ के गिटार को नीचे रखकर उसने अपने माथे से पसीना पोंछा, उस समय लोगों का उत्साह धीरे-धीरे शिथिल होने लगा था। उसने अपने ऊपर की बैंगनी कमीज को चिपचिपी और अपने शरीर से चिपके पाया। वह अपने स्थान से उठा। हांफते हुए लोगों के बीच होकर वह उस मेज के पास पहुंचा, गुलाबी रंग के मिनी स्कर्ट में कोई बैठी हुई एकटक उसी की ओर देख रही थी। कुर्सी पर बैठते हुए उसने पूछा—"तुमने नाच में भाग नहीं लिया ?" इस प्रश्न का कोई उत्तर न देकर उस युवती ने पूछा—"क्या पियोगे ?"

"यहां बहुत गरमी है, बगल को चलते हैं···"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने स्थान से उठने से पहले उसने अपने गिलास को उस थके-मांदे गिटार-वादक के होंठों तक पहुंचा दिया।

उसने एक चुस्की ली और फिर दोनों उस कोलाहल से हटकर एक शान्त स्थल में आ गये, जहां पहले ही से दो व्यक्ति एक-दूसरे की बांहों में थे···

···इस ख्याल से उसे अपने आप पर हंसी आ गयी कि जिस जिन्दगी को वह जीता आ रहा था, वह उसकी अपनी न होकर किसी दूसरे की थी। वह उसमें अपनेपन का अभाव महसूसने लगा था। उसे ऐसा भी आभास हुआ कि एक बहुत भारी दुराव था, उसकी अपनी ही सांस और आस के बीच। वह अपने को अपने से प्रश्न करते हुए भी सुनता—

मेरे इस माहौल में स्वाभाविकता क्या है और कृत्रिमता क्या है?···

और जब उसने अपने को ऐसी भीड़ के बीच खोये पाया जो एकदम परायी थी, तो वह अपने आपसे विद्रोह कर उठा। उस भारी भीड़ में कोई भी ऐसा नहीं था, जिसकी सूरत पर वह आत्मीयता का भाव देख पाता। उन नकाब चढ़ाये चेहरों की मुस्कान और हर प्रतिक्रिया बनावटी-सी लगती।

उस भीड़ से अपने को अलग करने की बात उसके लिए आसान भी नहीं थी।

उस उल्लास के वातावरण में भी जब वह अपने को नैराश्य में डूबते ही पाता गया, तब उसने एक बार अपनी पूरी शक्ति से अपने को उस भीड़ से झटकने का प्रयास किया। उससे जरा-सी दूरी पर खड़े होकर उसे ऐसा लगा कि वे लोग सुविधा के बोझ से दबे जा रहे थे। वहां की वह क्षणिक खुशी उसे ऊपरी चीज़-सी लगी। वहां के गाने और हंसने की आवाज़ उसे रुदन-सी प्रतीत हुई।

तनहाई में खड़े होकर उसने अपने मस्तिष्क में एक नयी पगडंडी तराशी।

फिर उस पर धीरे-धीरे चलना शुरू किया। एक बहुत भारी ऊब और अकुलाहट से अपने को दूर कर चुकने की खुशी में वह बढ़ता रहा। उसके इस परिवर्तन पर उसके सभी मित्रों को आश्चर्य हुआ। उससे कई तरह के प्रश्न किये गये और सभी का उसने बस छोटा-सा उत्तर दिया—

"मैं अपने ढंग का जीवन जीना चाहता हूं!"

"तुम पागल हो!"—मित्रों ने कहा और उसने मान लिया। सचमुच ही अपने उस पिछले जीवन से अलग आकर उसने यही सोचा कि वे क्षण, जिन्हें वह अब तक जीता आया था, उसके अपने नहीं थे। वह उस आदमी की तरह था जो कर्ज को चुकाने में लगा हुआ हो। नये ढंग, नये स्वभाव को अपनाकर उसने यही सोचा कि उसे कर्ज से मुक्ति मिल गयी है, और अब वह जो जी रहा था, वह एक स्वतन्त्र जिन्दगी की तरह हल्की नहीं थी, फिर भी उसे वह जिम्मेदारी पसन्द थी और वह खुश था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

···उसके अपने मस्तिष्क में जो भारी-सा खालीपन महसूस होता रहा, उसका कारण बाहरी वातावरण नहीं था। वह उसके अपने ही मस्तिष्क की थकान का परिणाम भी नहीं था और न ही उस बोझिल माहौल के कोलाहल का वह नतीजा था।

समुद्र किनारे कठोर सुरमई चट्टानों से दूधिया फ़ेनिल लहरों को देख उसका हौसला कभी भी कम न हुआ। यहां की प्रलयंकर लहरों की तरह ही वह युवा नारों को सुनता रहा। लहरों और चट्टानों के बीच जो संघर्ष था, ठीक वैसी ही कोई बात उसके अपने भीतर भी थी। अपनी आंखों के सामने भी वह जो देखता आ रहा था, वह उसी तरह की आपाधापी, तनाव और कोलाहल था।

अपने दिमाग़ की सारी प्रतिध्वनि और कोलाहल को उसने सागर की उफनती लहरों में डुबो दिया। कोलाहल की वह अनुध्वनि तो डूब गयी, लेकिन उसके दिमाग की रिक्तता बनी की बनी रही। समुद्री लहरों और युवा नारों की प्रलयंकर गूंजों को सुनकर उसने अपने भीतर की भावनाओं को भी अपने आपसे बगावत करते पाया, पर जब देखा कि लहरें चट्टानों की ओर जाने की परम्परा को टस से मस नहीं कर पा रही थीं, तो भी वह हताश नहीं हुआ।

अंधेरा जो बाहर था, वह उसके अपने भीतर भी था और शायद उससे भी अधिक घना। अपने भीतर के उस घटाटोप अंधेरे में अंदाजे से उसने कुछ चीज़ों को टटोलकर पाना चाहा, पर जिन चीज़ों को पाने का उसका प्रयास रहता, उनके बदले दूसरी चीजें उसके हाथ आ जातीं और बिना कठिनाई मिली उन सहज चीज़ों को बगल में रखकर वह दुर्लभ की तलाश में बना रहा।

उस स्याह अंधेरे में उसके खयाल आपस में टकरा जाते और उसके दिल-दिमाग में एक झनझनाहट-सी पैदा हो जाती। उसका अपना सारा अस्तित्व तिलमिला उठता। मगर उसका संघर्ष जारी रहा, क्योंकि उसे विश्वास था कि वह जिस चीज़ की चाह रखता है उसे पाकर रहेगा। वह यह भी ख्वाहिश रखता था कि नारे भी अपनी मांगें पाकर ही चुप होंगे।

उसके अपने भीतर के नारों में असंतोष की भावना नहीं थी, बस इस एक बात का उसे संतोष था। वह जिस वस्तु को तलाश रहा था, वह अधिकार की मांग का प्रश्न नहीं था, न ही किसी अभाव की पूर्ति की बात थी। वह बदली चाहता था। एक को तजकर दूसरे को अपनानेवाली बात ! अपने जीवन को बदतर से बेहतर बनाने के लिए। इच्छा उसकी दलबदलुओं की-सी अवश्य थी, पर भावना और इरादे नहीं।···

···वह अपने आपसे झगड़ता रहा। अंत में उसे ऐसा आभास हुआ कि उसका यह अपना झगड़ा वीयतनाम और अमेरिका के उद्देश्यहीन युद्ध से कहीं बेहतर था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारों ओर तनाव था। कहीं खून-खराबा था, कहीं प्रदर्शनी थी, कहीं युद्ध था, कहीं हड़ताल थी, कहीं पथराव, कहीं अग्नि-काण्ड तो कहीं सत्याग्रह था। कहीं बांग्ला देश के बारे में चर्चा थी, कहीं बेलफ़ास्ट था, कहीं मिस्र और इजराइल की बात थी। चारों ओर विद्रोह था—उसके अपने भीतर भी। वही सैद्धान्तिक मतभेद उसके अपने भीतर भी था। कभी उसके मन में हिप्पी बन जाने का भी ख्याल था, मगर अब उसके भीतर जो नयी इच्छा थी वह कुछ-से-कुछ बन जाने की। पर हर बार वही एक अड़चन, वही रोड़ा, वही रुकावट।

उसका अतीत ! जो उसके शरीर से चिपका हुआ था। हर आदमी अपनी पीठ पर अतीत का बोझ लिये चलता है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जिनका यह बोझ कुछ हलका होता है और कुछ ऐसे भी होते हैं, जिनका यह बोझ कुछ इतना अधिक भारी होता है कि उससे वे दबकर रह जाते हैं, फिर भी उन बीते हुए क्षणों से उन्हें इतना स्नेह, इतना लगाव और इतना अधिक मोह होता है कि उस भारी-भरकम बोझ से अकुलाकर भी वे उसको तजते नहीं। सफर की आखिरी सांस तक उस गठरी के साथ चलना उनका प्रण होता है।

टीस देनेवाला अतीत !

दम घुटा देनेवाला अतीत !!

कमर तोड़ देनेवाला अतीत !!!

चेहरे पर झुर्रियां ला देनेवाले अतीत से इन्सान को इतनी अधिक मुहब्बत क्यों होती है कि उससे दबकर भी वह उससे बाज नहीं आता !

मगर उसे तो विश्वास था।

उसे तो पूरा विश्वास था कि वह अपने से चिपके हुए उस अतीत को अपने से अलग करके ही रहेगा। उसे नकारने में अगर उसके शरीर से रक्त के साथ उसका चमड़ा भी बाहर आ जाए तो वह हिचकिचाएगा नहीं।···

···वह आंखें बन्द किये, अंधेरे की आंखों से देखता रहा। वह देखता रहा, सोचता रहा, सोचता रहा—सोचता ही रहा और अंधेरे को अंधेरे ही की आंखों से देखता रहा।

फिर वह सोचने लगा कि आखिर वह सोच क्या रहा था ? सोचते-सोचते थक गया तो चाहा कि सोचना बन्द कर दे, कम-से-कम कुछ क्षणों के लिए। मगर यह सोचना भी अजीब ठहरा ! न जाने कहां शुरू होकर कहां खत्म होता है !

हारकर अन्त में उपाय सोचने लगा।

सोचना बन्द करने का एक उपाय।

उस घटाटोप अंधेरे में हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था। उस गहन काले अंधेरे में उसने अपने और उस अंधेरे के बीच, जोकि बाजार में फाटक पर सहगल के गीतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को गुनगुनाता रहता है, कोई फर्क नहीं पाया। अंधेरे में उसे भी उसी तरह कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। अंधेरे में अपने को अन्धा पाना कितना स्वाभाविक होता है, लेकिन कुछ ही क्षण पहले तो उसने चाकचौंध कर देनेवाले बिजली के प्रकाश में भी अपने को अन्धा पाया था। यह विडम्बना उसकी समझ में नहीं आयी।

बहुत अधिक प्रकाश के सामने भी आंखों का निस्तेज हो जाना और अंधेरे में उनका वेकार रहना। इससे तो उसके लिए यही सच्चाई थी कि आदमी अपनी आंखों से नहीं देख पाता। अगर ऐसा होता तो उनमें अंधेरे और उजाले दोनों को भेद जाने की शक्ति होती !

उसने महसूस की एक अजीब-सी शिथिलता, दिलोदिमाग से लेकर समूचे शरीर तक। एक भारीपन से उसके ख्याल बोझिल होते गये।

द्विविधा के कारण ? शायद नहीं !

चिन्ता कभी चिता से भी बदतर होती है। कभी या सदैव ? चिता तो मुर्दे को जलाती है, जबकि चिन्ता तो जिन्दे को भी जला जाती है।

चुभता हुआ अतीत और अधीरता पैदा कर देनेवाला वर्तमान। और वह अनिश्चित कल ! बीते हुए कल और आनेवाले कल के बीच अकुलाता हुआ आज। उनके बीच नींद का दम घोंटना, उसका पिस जाना।

बेचैनी ! पर दोनों कलों में से किस कल के लिए···

···शीशे में उसने जो प्रतिबिम्ब देखा, वह उसका नहीं था। उसके-जैसा होते हुए भी वह उसके ही चेहरे से प्रतिबिम्बित किसी गैर का चेहरा था।

उन आंखों को वैसी ही आंखों से देखते हुए वह सहम गया। उनमें जो भाव थे वे भयानक थे, मगर···शीशे के सामने तो वही खड़ा था। तो फिर···क्या वह छाया उसी की थी ?···उसे विश्वास नहीं हुआ कि उसकी अपनी आंखें उतनी खौफनाक हो सकती थीं।

उसने मन-ही-मन विचार किया कि कहीं उसके भीतर का कोई बहुत बड़ा डर ही उसकी आंखों में तो नहीं झिलमिला रहा था ?

शीशे को झूठा समझकर उसने आंखें फेर लीं, परन्तु अपने को इस बात का यकीन नहीं दिला सका कि शीशा भी झूठ बोल सकता है, ठीक उसके चाचा मन्त्री महोदय की तरह। पर नहीं, उसका चाचा झूठ थोड़े ही बोलता था, वह तो डिप्लो-मेसी थी ! उसे अपने-आप से डर लगने लगा।

जो भाव उसने अपनी आंखों में पाया था, वह पैशाचिक तो नहीं था, फिर भी भयानक था। अपनी आंखों को बन्द करके भी वह अपने को उसके प्रभाव से न बचा पा सका।

उसने बत्ती गुल कर दी। अंधेरे कमरे में बैठा रहा। मगर अंधेरा उतना घना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं था, जिससे आंखों को शीशे की आंखें न सूझें। उसे जो सूझना चाहिए, वह न सूझकर डरावनी आंखें ही सूझ रही थीं। शीशे की ओर पीठ करके भी वह अपने को उन घूरती आंखों से जब नहीं बचा पाया तो कमरे से बाहर फुलवारी में पहुंच गया, जहां पंखुड़ियों पर हल्की चांदनी छिटकी हुई थी। किसी नये गीत के लिए वह अपने में रौ का अभाव पाता रहा।

समूची रात बेकार चली गयी।

पश्चात्ताप तो उसे इस बात का हुआ कि उसने उस चांदनी रात में, दिन-दहाड़े की तरह उस सुहानी रात की हत्या कर डाली।···

तीन अध्यापकों के वक्तव्य समाप्त होने के बाद मिस्टर साम्यूएल अपनी ऐनक पोंछते हुए खड़े हुए। लेक्चर रूम में कोई डेढ़ सौ छात्रों ने अचम्भे के साथ मिस्टर साम्यूएल को एक अजीब और गम्भीर मुद्रा में देखा और सुनना शुरू किया। अपनी ऐनक को अच्छी तरह पोंछ चुकने के बाद मिस्टर साम्यूएल ने पैनी नजर से हॉल के सभी छात्रों को देखा और तब अपने उन दोस्तों की ओर जो उनसे पहले बोल गये थे। फिर उसने कहना शुरू किया—यह एकदम ठीक है कि आज के नौजवान अपने परिवार तथा वातावरण से विद्रोह कर उठे हैं। कुछ हद तक यह भी सही है कि वे अपनी पढ़ाई से भी कभी-कभार विद्रोह कर उठते हैं। इन बातों के कारण आज के नौजवानों को चरित्रहीन, पागल या इधर-उधर कह जाना आसान तो जरूर हो सकता है, पर ये बातें बेबुनियाद-सी लगती हैं। आज की युवा पीढ़ी के सोचने, पहनने और खाने तक अपने निराले ढंग हैं। ढंग निराले होने के कारण उनको लांछित कर देना, मेरे अपने दृष्टिकोण में ठीक नहीं। मैं तो यही कहूंगा कि उन्हें वह आजादी मिलनी चाहिए जिसके लिए वे गुहार कर रहे हैं।···

हॉल के सभी छात्रों ने अपने कॉलेज काल के सबसे बड़े आश्चर्य के साथ एक-दूसरे को देखा।

एक क्षणिक कोलाहल के बाद हॉल में मौत का-सा सन्नाटा छा गया। एक क्षण चुप रहकर मिस्टर साम्यूएल ने अपने उसी गम्भीर स्वर में कहना आरम्भ किया—बीटनिक्स के बाद आज हिप्पियों का बोलबाला शुरू हुआ है। और अगर उनके नारों से हमारे कान के परदे फटने-से लगते हैं तो इसका यह मतलब नहीं होता कि हम अपने कानों में रुई डालकर बैठ जाएं। उन नारों को हमें समझने का प्रयास करना चाहिए। आज की युवा पीढ़ी जिस दिशा की ओर जा रही है, उस दिशा की ओर एक बार अपनी समस्त चेतना के साथ हमारा देखना अति आवश्यक है। आज के नवयुवक—ये कटे हुए लोग, जिन्हें मनचाही चीजें नहीं मिलीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जो अपने ढंग से उन्हें पाने के प्रयास में हैं—हमारी घृणा के कारण बन जाएं, यह बात सनक-सी लगती है। उन्हें अपने ढंग का धर्म चाहिए, अपने ढंग का जीवन अपने ढंग की खुशी। तो फिर हस्तक्षेप का हक हमें कहां से मिलता है?…

चन्द सेकेण्डों के लिए वह चुप हो गया। सचमुच इस कॉलेज के छात्रों की उस खामोशी पर वह भी हैरान था। उन सभी की उस अखण्ड-सी प्रतीत होती चुप्पी को अंगुली से संकेत करते हुए उसने कहा—युवा पीढ़ी चुप नहीं रह सकती, क्योंकि उसकी आवाज़ का कारण है। यह असन्तोष का स्वर है। युवा पीढ़ी असंतुष्ट है—सरकार से, समाज से, अपने घर के माहौल से, धर्म से! वह असन्तुष्ट है अपने सामने की हर चीज़ से। अराजकता और भाई-भतीजावाद से, राजनीति की नपुंसकता और समाज की नामर्दी से। उसे कपट और छल से घृणा है। युद्ध और विज्ञान की उबा देनेवाली सुविधा उसकी शत्रु है। शान्ति और न्याय की रक्षा के लिए कभी-कभार उनका पथराव और दंगे-फसाद पर उतर आना खटकने की बात होते हुए भी सोचने-विचारने की बात है। नशीली चीज़ों की ओर उनका झुकाव भी किसी तरह की आत्मशान्ति और आनन्द की तलाश ही है। ये वे लोग हैं, जिन्हें सरकार, समाज और परिवार ने उचित स्थान नहीं दिया। अपने प्रति ध्यान और प्यार के अभाव में ये उस हल की तलाश में निकले हुए लोग हैं, जो इस धरती को बेहतर बनाने की कोशिश में हैं। अनेक बेढंगे वादों के बाद, अगर सचमुच ही कोई मानवतावाद का अधिकारी हो सकता है तो यह युवा पीढ़ी है—आज की युवा पीढ़ी!…

इन अन्तिम चार शब्दों को मिस्टर साम्यूएल ने विचित्र ढंग से कहा। मंच पर सभी अध्यापकों के साथ बैठा शिक्षामन्त्री मिस्टर साम्यूएल की बातों से ऊबकर जम्भाई लेने लगा था।

…जवानी की उमंगों को कभी दीवानापन और सनक अवश्य बताया गया है, लेकिन इस बार की यह उमंग मात्र सनक नहीं हो सकती। वह एक आन्दोलन है, एक क्रान्ति है! इसको नकार जाना एक बहुत बड़ी सच्चाई को नकारना होगा। यह आन्दोलन अवसर की मांग कर रहा है। हमें उन्हें अवसर देना चाहिए। आज स्वतन्त्रता की उमड़ती लहर में युवा पीढ़ी से उसकी स्वतन्त्रता जब्त कर लेना अन्याय होगा। यह अधिकार मांग की है। जीवन के स्तर को उठाने का यह संग्राम है और ये नौजवान मानवतावाद के प्रथम सेनानी हैं। ये वे लोग हैं जो सभ्यता और प्यार को देश विशेष तक सीमित रखना नहीं चाहते। ये समूचे विश्व के लिए आवाजें बुलन्द कर रहे हैं। विश्व में न्याय, शान्ति, एकता और बन्धुत्व चाहते हैं ये लोग। ये युवा गण बुराइयों को रोकने से कहीं अधिक अच्छाई को इस छोर से उस छोर तक फैलाने में लगे हुए हैं। इनका युद्ध भूख, बेकारी, अज्ञानता, अन्याय और युद्ध की सम्भावनाओं से है। युवा पीढ़ी धर्म विशेष और राजनीति विशेष से अलग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़ी होकर सभी कुछ नये सिरे से करना चाहती है। जब आप सभी यह मानगे कि परम्परागत नियमों से आज तक जो कुछ भी हुआ, वह असंतोषजनक नहीं, तो फिर एक बार इन नये लोगों को मौका क्यों नहीं देते ? बहुत सारी कमजोरियों के बावजूद आज के नौजवान सशक्त हैं। जातिभेद, रंगभेद, धर्मभेद, इन सभी इन्सानी कमजोरियों को नकारते हुए यह काफिला चल पड़ा है। यह एक नयी सभ्यता है, एक नया धर्म है, एक नयी संस्कृति है। एक ऐसी सभ्यता जो मानव को एक स्तर पर लाना चाहती है, एक ऐसा धर्म जो शान्ति पर विश्वास करता है, एक ऐसी संस्कृति जो प्यार और आनन्द को जीवन का सिद्धान्त मानती है। इन्हें आस्था है अपनी लगन पर और ये परिवर्तन लाकर रहेंगे !

इन दो पिछले वाक्यों को एक ही सांस में कह जाने के कारण मिस्टर साम्यूएल को खांसी आ गयी। अपनी जेब से रूमाल निकालकर मुंह तक ले जाते हुए उसने किसी तरह खांसी को रोका और माफी मांगते हुए अपने स्वर को जरा-सा धीमा किया—

मेरे अपने विचार में युवा आंदोलन एक ऐसी सीढ़ी है, जिसके सहारे इन्सान को अपने असली मकसद पर पहुंचना है। ये लोग अपने देश के लिए मरने से अधिक जीना चाहते हैं। ये लोग अपने देश ही नहीं, वरन् अपने विश्व के लिए जीना चाहते हैं। इन्हें जीने देना हमारा फर्ज है! युवकों ने पुरानी पीढ़ी से झगड़ा मोल लिया है, मैं इस बात को नहीं मानता। मैं तो यह मानता हूं कि पुरानी पीढ़ीवाले इन नये नारों को समझने का तनिक भी प्रयास नहीं कर रहे हैं। बस झगड़ा यहां से शुरू होता है। विश्व-भर का युवावर्ग जिन दीवारों को तोड़ गिराने के लिए अपनी सभी शक्तियां एक साथ लगा रहा है, वे हैं सैद्धान्तिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साम्प्रदायिक और वैज्ञानिक भी। आज भी हमारे समाज में कुछ इतनी अधिक सड़ी-गली चीज़ें मौजूद हैं, जिन्हें मोहवश समाज अपने से हटा नहीं पाता। इन चीजों को हटाने के लिए हमारे नौजवानो के हाथ जब सामने आये हैं तो हम उन हाथों को तोड़ने का प्रयास क्यों करें ? आज की हमारी धरती इन सड़ी-गली चीज़ों के कारण रहने के लायक न रह जाए, इससे पहले इन लोगों को कुछ तो करने दिया जाए ! तमाम धार्मिक और सांस्कृतिक बातें हैं, जिन्हें एक साथ एक मंच पर करने का अधिकार नहीं मिलता। युवा पीढ़ी इस बात को कैसे स्वीकार सकती है ! वह तो चाहती है कि जो कभी न मिल पाये हैं, उन्हें भी मानवता की रक्षा हेतु एक बार मिलाकर देखा जाए। मंदिर, मस्जिद और गिरजे को एक सूत्र में गूंथकर ही उस भेदभाव को मिटाया जा सकता है, जिसे मिटाने का प्रयास मुद्दतों से धर्म करता आ रहा है। लेकिन इससे करारा व्यंग्य और हो ही क्या सकता है कि ख़ुद झगड़ते हुए किसी झगड़े को निबटाने का प्रयत्न किया जाए !

आज का युग आधुनिकता का दावा करके भी अंधविश्वासी है। धार्मिक और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीतिक प्रतिद्वंद्विताओं के कारण कल एक दूसरा विश्वयुद्ध शुरू हो सकता है। सभी कुछ एकाएक दिन-दहाड़े हो जाएगा। पुरानी पीढ़ी के कान बहरे हो चले हैं। वह अन्धी है, इसलिए कल के विनाश की प्रलयंकर आवाज़ को न तो वह सुन सकती है और न ही देख सकती है। युवा पीढ़ी उस प्रलय को आकार लेने से पहले ही खत्म कर देना चाहती है। पुराने वर्ग के कुछ लोग कल के खतरे को महसूसते हैं, पर अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण वे कुछ बोल नहीं पाते। हमारे बीच के कुछ लोग युवा आन्दोलन को केवल फैशन और नशीली चीज़ों का आन्दोलन बताते हैं। ऐसे लोगों को मैं सिनिक के सिवाय और कह ही क्या सकता हूं। युवा वर्ग अगर आज के परिवार और समाज से भाग रहा है तो केवल इसलिए कि आज का यह परिवार और समाज सड़ गया है। वहां आत्मशान्ति नहीं। हिप्पी बनकर नशीली चीजों की ओर झुकने का तात्पर्य मेरे लिए, डूबते को तिनके का सहारा है। मैं इसे युवा वर्ग की कमजोरी मानने को तैयार हूं, पर इसके साथ ही समाज के बीच के बवण्डर का भी तो खयाल रखना है। बवण्डर में शान्ति और स्थिरता की कल्पना पागलपन है। ये लोग पागल-जैसे अवश्य लगते होंगे, मगर ये पागलपन से भागने वाले लोग हैं।···

अपनी ऐनक को एक बार फिर से पोंछकर मिस्टर साम्यूएल ने उसी स्वर में आगे कहा—आज के इस प्रगति-युग में धनी देश धनी होता जा रहा है और गरीब देश गरीब ही होता जा रहा है। कुछ ऐसे लोग समृद्ध होते ही जा रहे हैं जो कल सारी दुनिया को अपनी मुट्ठियों में कसकर उसे निचोड़ सकते हैं। दो-तीन ठौरों पर इतने अधिक हथियार तैयार हो चुके हैं, जिनसे एक मिनट में धरती के सभी जीवों को भस्म किया जा सकता है। ये ही वे लोग हैं जो अपने को शान्ति के रक्षक भी बताते हैं। ये सच्चाई और धर्म की हिफाजत करने वाले हैं?···क्या इन फरेबियों पर युवा वर्ग यकीन कर ले? यकीन कर लेने का मतलब होगा, चुपचाप रह जाना। अगर आज विद्रोह है, खलबली है, प्रदर्शन, हड़ताल, क्रान्ति, आंदोलन और जुलूस है तो केवल इसीलिए कि दुनिया से अन्याय और अत्याचार का अन्त होना चाहिए। यह युवा पीढ़ी की बाईबिल है। जहां निश्छलता का अधिक दावा होता है, वहीं छल और कपट अधिक है, वहीं अधिक पाप है।···

अपने लम्बे वक्तव्य को मिस्टर साम्यूएल ने इन शब्दों के साथ समाप्त किया—युवा आंदोलन एक सक्रिय आंदोलन है। यह मानवता का स्वर है। यह जिस अधिकार, न्याय और स्वतंत्रता की मांग कर रहा है, वह केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि अपने असली माने में वह अधिकार, न्याय और स्वतंत्रता है!

मिस्टर साम्यूएल के बैठते ही हॉल कोई दो मिनट तक तालियों की गड़गड़ाहट से गूंजता रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेफाली

विज्ञापन में झूठ भी चलता है, इसलिए विज्ञापन के इस प्रतिमान को ध्यान में रखते हुए मेरा भी झूठ बोल जाना जरूरी हो जाता है। मैं झूठ आसानी से बोल लेता हूं, लेकिन उसमें महारत न हासिल होने की वजह से पकड़ा भी बड़ी आसानी से जाता हूं। मेरे अपने उपन्यास 'शेफाली' में मैं अपने उस झूठ के लिए बड़ी आसानी से पकड़ा गया हूं···उपन्यास में भी और उपन्यास के बाहर भी। उपन्यास में उस झूठ को पकड़ना तो आपका काम है, मैं उपन्यास के बाहर की बात यहां करना चाहता हूं। मेरा एक खबोर पाठक शेफाली पढ़ने के तुरन्त बाद मुझे फोन करता है और कहता है—"अभिमन्यु, उत्तर प्रदेश सरकार ने तुम्हारे 'लाल पसीना' पर जो पुरस्कार तुम्हें दिया है, वह वास्तव में तुम्हें इस शेफाली के लिए मिलना चाहिए था। कमाल का शिल्प है इस पुस्तक में !"

मैंने झट कह दिया, "यार, इसे भी उत्तर प्रदेश सरकार का विशेष पुरस्कार प्राप्त हुआ है।"

अपने उस खबोर पाठक को खुश करने के लिए मुझे झूठ बोलना पड़ा। वह खुश होकर कई मिनटों तक मुझे फोन पर बोर करता रहा। इस झूठ के लिए मैं पकड़ा नहीं गया। पकड़ा जरूर जाता, अगर लखनऊ स्थित उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से छानबीन करके पुरस्कार-घोषणा की तारीख का पता लगाया जाता तो उत्तर प्रदेश सरकार की यह घोषणा मेरी घोषणा के कोई महीने भर बाद ही हुई थी। खैर, जीवन में झूठ की भी जरूरत होती है—एक दबे हुए सत्य को सत्य प्रमाणित करने के लिए !

हां, तो बात शेफाली की हो रही है ! इस छोटे-से उपन्यास में एक वाक्य आता है—अगर औरत वेश्या हो सकती है तो फिर वेश्या औरत क्यों नहीं होती ? और समूचा उपन्यास इसी प्रश्न के उत्तर की तलाश है और उसकी यातना की एक झलक भी।

मेरी इस पुस्तक के दो अध्याय पढ़ने के बाद ही मेरे एक बहुत अच्छे मित्र ने यह कहना शुरू कर दिया कि यह पुस्तक अज्ञेय के उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की नकल है। मुझे हैरानी हुई, अज्ञेयजी की वह पुस्तक मैंने पढ़ी ही नहीं थी। उस विद्वान ने एक जबरदस्त काम यह तो किया कि दूसरे ही दिन गांधी संस्थान से 'अपने-अपने अजनबी' ढूंढ़ निकालने का मुझे अच्छा अवसर दे दिया। मैं उसमें शेफाली ढूंढ़ने बैठ गया। शेफाली तो नहीं मिली, अपने-अपने अजनबी जरूर मिले। लोग आदमी और आदमी में गलत रिश्ते तो जोड़ जाते हैं, लेकिन पुस्तक और पुस्तक के बीच के इस गलत रिश्ते पर मुझे दुख से कहीं अधिक तरस आ गया, अपने विद्वान मित्र की उस धारणा पर। बाद में इस बात पर खुशी हुई कि एक मित्र की बदौलत एक श्रेष्ठ रचना पढ़ने का अवसर तो मिला !

शेफाली दो भागों में है। एक सम्पूर्ण भाग एक टेलीफोन वार्तालाप से शुरू होकर उसी पर समाप्त होता है। और दूसरा भाग शेफाली के अपने अन्तःकरण की आवाज़ के साथ शुरू होकर उसी के साथ समाप्त होता है। प्रस्तुत हिस्सा दूसरे भाग से लिया गया है। यों तो सोचा था कि शेफाली के लिए लम्बा विज्ञापन दूंगा, लेकिन उपन्यास उतना बड़ा—मेरा मतलब उतना मोटा नहीं है, जिसके लिए इससे लम्बे इश्तहार की जरूरत हो।

अगर मैं आपसे कहूं कि शेफाली को मैं नहीं जानता, तो क्या आप विश्वास कर लेंगे ? या यह सोचकर कि यह लेखक अपनी चरित्रहीनता को छिपाने के लिए ऐसा कह रहा है, आप इसे मेरी ओर से एक और झूठ मान लेंगे ?

मेरी पीठ पर मेरी बेशुमार निन्दा करनेवाला मेरा एक मित्र है, जो अगर इन सभी निन्दाओं का संग्रह प्रकाशित करे तो वह 'झूठा सच' से भी मोटा उपन्यास बन जाए। मेरे इस मित्र ने मेरे मुंह पर कहा—

"यार शेफाली ही तुम्हारा वह उपन्यास है, जिसमें कला है !" मैं अपना भला चाहनेवाले इस भले आदमी को कैसे बताता कि कला की न तो मुझे जानकारी है और न परख, चाहे अब तक मेरे चित्रों की कई प्रदर्शनियां क्यों न हो गयी हों ! जब मेरी अपनी बनायी तस्वीरें खुद मेरी समझ में नहीं आयीं तो शेफाली की कला की मैं क्या व्याख्या दे सकता हूं !

पाठक से अनुरोध है, वे कला की तलाश में शेफाली न पढ़ें, बाकी उसमें कुछ भी तलाश लें !

गली तो प्रायः दूर जाकर संकरी प्रतीत होती है, लेकिन जिस गली में मैं खड़ी थी, वह मेरे पांवों के पास संकरी थी और दूर जाकर इस कदर फैली हुई प्रतीत होती थी कि दोनों छोरों का कहीं पता नहीं था। मेरे कन्धे के ऊपर के भाग में दर्द था। पर मैं तय नहीं कर पा रही थी कि वह सिर में था, दांतों में था या आंखों में ? वह एक जगह से निकलकर कन्धे के ऊपर के समूचे हिस्से में फैल चुका था। मैं दो टुकड़ों में थी —कन्धे के नीचे का एक हिस्सा प्रतिक्रियाहीन, शिथिल और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठंडे सांप की देह की तरह; कन्धे के ऊपर का हिस्सा खलबली लिये हुए, गरमी से खौलता हुआ, चुभता हुआ। कुमारी के लिए कुछ कपड़े लेने थे और मुझे भी चारदीवारी की उस चिपचिपाहट से अपने को थोड़ा-सा मुक्त करना था।

पूरे मील भर चलकर भी मैंने किसी से बात नहीं की थी, लेकिन घूरनेवाली निगाहों से अपने को बचाना नितान्त असम्भव था। गली की उस भारी आपाधापी के बीच भी मैं अपने को यही विश्वास दिलाती रही कि पूरे शहर में मैं अकेली थी, अकेली शॉपिंग कर रही थी, अकेली चल रही थी। मन में आया था कि अपने साथ कुमारी को लेकर ही घर से बाहर निकलूं, पर फिर अपने आपसे पूछ बैठी थी—'आखिर क्यों? किस बात का डर था मुझे?...'

जिस प्रलोभन से मैं बाहर निकली थी, उससे वंचित रही। सोचा था—बाहर की रमणीकता और खुली हवा से मन को कुछ शीतलता मिल जाएगी, पर ऐसा न होकर इसके विपरीत ही हुआ था। अब सिर में दर्द लिये हुए लौट रही थी। रात में बदलते मौसम की जो हल्की-सी ठंड शुरू हो चुकी थी, वह दिन में नहीं थी। दोपहरी अब भी गरमी की अकुलाहट लिये हुई थी। घर पहुंचते-पहुंचते मुझे ऐसा लगने लगा कि दोपहर की वह चमकती-लथपथाती धूप मेरे सिर में प्रवेश कर चुकी थी। घर पहुंचते ही मैंने कुमारी से एक गिलास ठंडा पानी मांगा और काफेनोल की दो गोलियां गले के नीचे उतार लीं। कुमारी ने बताया कि टेलीफोनवाले आये थे, यह जानने के लिए कि टेलीफोन में कौन-सी गड़बड़ी थी। फोन तो ठीक था, पर इधर दो दिन से मैंने चोंगे को नीचे रख दिया था। फोन की घंटी से मेरे सिर का दर्द और भी बढ़ जाता था। फोन को फिर से क्रेडिल पर पाकर मैंने कुमारी से कहा कि किसी का भी फोन आए तो कह देना कि मैं घर पर नहीं हूं। यह कहकर जब मैं दूसरे कमरे में जाने लगी तो कुमारी ने पूछा—"अशित मामा का फोन आए तब भी?"

"हां, तब भी!"

बाहर से कुत्तों के आपस में झगड़ने की आवाज़ आ रही थी। मेरे अपने कमरों के भीतर एक अजीब-सी गन्ध थी—एक भुकरायंध-सी महक। अपने रूमाल को ओ-डी-कोलो में तर करके मैं आरामकुर्सी पर लेट गई। कुछ मिनट बाद उठकर मेज़, अलमारी और तख्तों के पीछे झांककर देखा—कहीं कोई गिरगिट या कोई दूसरा कीड़ा तो नहीं मरा पड़ा है? खिड़कियां खोल दीं। खिड़कियों से कोई हवा भीतर नहीं आयी। मेज़ पर से सीमोन-दे-बोवुआर की नयी पुस्तक लेकर फिर से आरामकुर्सी पर बैठ गई, पर पुस्तक को हाथ में थामे हुए भी पन्ने उलटने की हिम्मत नहीं हुई। अपने रूमाल को नाक के पास लाकर लम्बी सांस ली। मेरे घर के पिछवाड़े में छोटे बच्चों का स्कूल था। वहां का घांव-मांव भी इस वक्त पराकाष्ठा पर था। आंखें मूंदे मैं अपनी जगह पर पड़ी रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी पलकें बोझिल हो रही थीं, तभी फोन की घंटी बज उठी। एक बार, दो बार, तीन बार, चार बार···इसके बाद कुमारी की आवाज़ सुनाई पड़ी—'हां जी, जी, वह घर पर नहीं हैं। पता नहीं···।' फोन रखे जाने की आवाज़।

"कौन था, कुमारी ?"

"नाम नहीं बताया।"

मैंने फिर से आंखें मूंद लीं।

मेरे भीतर का दर्द ज्यों का त्यों बना हुआ था। लगता था, वह खून में प्रवेश पा चुका था। वह धमनियों में खौलता रहा। कभी मन में आता कि जोर से चिल्लाऊं, पर उस चिल्लाहट से होनेवाली प्रतिध्वनि की अनुगूंज के ख्याल से सहम कर रह जाती। मैं आरामकुर्सी पर पड़ी रही। पलकें फिर भारी होनी शुरू हुईं। उस खुमारी में मैं अपने को एक पेड़ की तरह पाने लगी, एक लम्बे पेड़ की तरह। अपने पांव मुझे जड़ों-से प्रतीत हुए। लगा कि मैं ज़मीन में धंसी हुई हूं, सिर्फ मेरे ख्याल हिल-डोल रहे थे—पत्तों की तरह।

झटके के साथ एक जिज्ञासा जागी मेरे भीतर—

"मैं जी रही हूं ?"

हर दूसरे क्षण मुझे सन्देह होने लगता था। हर क्षण के प्रति मेरी यह जागरूकता ही मुझे यह संशय दिये जा रही थी। कभी मैं कुछ और थी। अगर उसे जीना मानूं तो फिर इसे क्या मानूं ? अन्तर तो अगाध था। तब तो रोज़ की जिन्दगी के प्रति मेरी कोई परवाह ही नहीं थी। मैं तो उन महान क्षणों की ताक में रहती थी, जिससे जीवन समृद्धि को छूता है···लेकिन मेरे जीवन में वह प्रतीक्षित क्षण आया ही कहां ! तो फिर मेरा वह जीना ? अगर अब तक नहीं जी रही थी, तो फिर जाहिर है कि अब जी रही हूं। मृत्यु में पीड़ा का आभास नहीं हो सकता। जब उसका आभास हो, तब तो उसे जीना मानना ही पड़ेगा।

"मादाम, चाय ले आई हूं।"

चौंककर मैंने आंखें खोलीं—"क्या कहा ?"

"चाय लाई हूं, मादाम !"

मैंने डांटकर कहा—"तुम मुझे मौसी नहीं कह सकती क्या ?"

वह सकपका-सी गई। चाय की प्यालियां खनककर रह गईं।

"रख दो मेज पर !"

वह रखकर चली गई। यह सोचकर कि शायद गरम चाय से सिर का दर्द कुछ कम हो सके, मैंने उसकी एक चुस्की ली। उस गरम चुस्की ने मेरे मस्तिष्क से एक ऊपरी परदे को पिघला दिया और···

पड़ोस के गिरजाघर के घंटे से नौ बजने का पता चला था। कल रात की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात है। कुमारी दूसरे कमरे में टेलीविजन देख रही थी। कोई सनसनीखेज फिल्म चल रही थी। संगीत और साउण्ड इफेक्ट-सा ही प्रतीत हो रहा था। मैं धीरे-से बोली थी—"अशित, नौ बज चुका।…"

उसने कोई जवाब नहीं दिया था।

"घर पर तुम्हारी प्रतीक्षा हो रही होगी।…"

"एक बात कहूं, शेफाली !…"

"सभी बातें आज ही कर लोगे क्या ?"

"यह एक ऐसी बात है जो कल से तुम्हें कहना चाह रहा हूं।"

"तो फिर कह डालो।"

"मुझे अपने घर से बेहद प्यार है।…"

वह चुप हो गया था, मैं देखती रह गई थी।

"हां शेफाली, मुझे अपने घर से बेहद प्यार है। आशा और मुन्ना दोनों के बिना मैं जी नहीं पाता, फिर भी…"

"वे दोनों तुम्हारी राह देख रहे होंगे। काफी देर हो चुकी है।…"

"मेरी बात सुनना नहीं चाहती हो क्या ?"

"सुन तो रही हूं।"

"नहीं, तुम सुन नहीं रही हो, शेफाली ! तुम उसे टाल रही हो। यह मैं कहकर ही जाऊंगा।"

"दूसरे दिन भी तो कह सकते हो।"

"नहीं, आज ही कहूंगा।"

"ठीक है, तो फिर कह डालो।"

"मैं अपनी पत्नी और अपने बच्चे को बहुत प्यार करता हूं। शेफाली, फिर भी मुझ उनके बीच वह चीज़ नहीं मिलती, जिससे…। क्या कहूं उसे ? मुझे उस घर से प्यार है; मगर इस घर में दो-तीन घंटे बैठकर इन चार दिनों में जो आनन्द मुझे मिला है, वह वहां नहीं है।…"

"पागल मत बनो, अशित !"

वह चुपचाप बैठा रह गया था।

कुछ मिनट बाद मेरी ओर देखा था।

अपनी जगह से उठकर बिना कुछ कहे बाहर हो गया था।

वह मेरी भूल थी या यह मेरी भूल है ?

उस दिन उतने लम्बे अन्तराल के बाद अशित को फोन करके मैंने गलती की थी या अब ? वर्षों बाद के घाव पर नमक छिड़कते हुए मैंने इतना क्यों नहीं सोचा था, कि कुछ घाव इतने लम्बे समय बाद भी पूरी तरह भर नहीं पाते ! अगर वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी गलती नहीं थी तो क्या यह गलती नहीं कि मैं उसे फिर से अपने करीब पहुंचने दे रही थी। कहीं यह मेरी खुदगर्जी तो नहीं थी ? अपने ताजे घाव के दर्द को भूलने के लिए ही मैं एक बार फिर अशित की आत्मीयता तो नहीं तलाशने लगी थी ?...

सीधे ढंग से बैठकर मैं सिमोन-दे-बोवुआर की पुस्तक के पन्नों को उलटने लगी, उलटती रही। सभी अक्षर एक-दूसरे से लिपटे हुए लग रहे थे। पुस्तक बन्द करके गोद में रख ली। पलकें फिर से बन्द कर लीं। मेरी अपनी आंखों के सामने की ओर अन्धेरा कांपता रहा, उसमें लाल रंग की मिलावट थी।

"मौसी !..."

मैंने पलकें ऊपर उठायीं।

"रात के लिए क्या पकाना होगा ?"

"तुम खुद देख लो, क्या पकाना चाहती हो ?"

"आपके सिर में दर्द है क्या ?"

"बस यों ही, थोड़ा-सा दुख रहा है।"

"तेल की मालिश कर दूं ?"

"नहीं कुमारी, यह अपने आप ठीक हो जाएगा।"

वह जाने लगी। मैंने उसे रोक लिया—

"तूने अपने कपड़े देखे ?"

"नहीं।"

"देखो, चारपाई पर जो पार्सल है, उसे ले आओ !"

दूसरे ही क्षण वह उस पार्सल के साथ आ गई। उसके हाथ से पार्सल लेकर मैंने खोला। उन कपड़ों को उसके सामने रखकर पूछा, "पसन्द है तुम्हें या नहीं ?"

उससे कुछ बोला नहीं गया। पर उसकी आंखों के गीलेपन के बीच की चमक से मुझे मालूम हो ही गया कि वह खुश थी। मुझे खुशी हुई। उसके चले जाने के बाद मैंने फिर से पुस्तक के पन्नों को पलटना शुरू किया। इस बार सभी अक्षर लिपटे हुए-से लगे। मैंने आंखों पर जोर देकर अक्षरों को अलगाने और फिर जोड़ने की कोशिश की। कुछ शब्द बने, कुछ वाक्य बने, पर उन वाक्यों का कोई अर्थ न बन पड़ा। पर मैं आंखों और दिमाग पर जोर देती हुई पढ़ती ही गई। मैं पढ़ रही थी सीमोन-दे-बोवुआर की पुस्तक, और दिमाग में रह-रहकर कौंधती रही कॉलेज के दिनों में पढ़ी हुई एमानुएल आरसां की पुस्तकें। मन में वही भाव पैदा हुआ जो एक दिन एक बदसूरत, मैले-कुचैले जापानी नाविक की बांहों में पहुंचकर हुआ था। लेकिन उस वक्त उस घृणा को धो डालने के लिए दो सौ रुपयों का बंडल था।

अपने हाथ की पुस्तक को घुमाकर मेज पर फेंक दिया। एक गिलास ठंडा पानी पीकर रेडियोग्राम पर सिलवी वार्तो का रेकार्ड चढ़ा दिया। उस संगीत में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खो जाने के लिए सिलवी के साथ-साथ उसके गाने के शब्दों को मैं भी दोहराती रही। पहला गीत पूरा होते-होते लगा कि वह भी कसैली याद लिये हुए था। रेडियोग्राम को ऑफ करके मैं रसोई की ओर बढ़ गई। संगमरमर की मेज़ से सटी हुई कुमारी आलू काटने में लगी हुई थी। मुझे देखकर, कक्षा में एकाएक अध्यापक के आ जाने से घबरा जानेवाले बच्चे की तरह उसने मेरी ओर देखा।

"कुमारी, इतनी छोटी उम्र में रसोई के सभी कामों को इतनी खूबी से संभालना तुमने कहां से सीखा ?"

"आपने तो मेरी पकायी चीज़ खायी ही नहीं !"

"क्यों नहीं खायी !..."

"भात, तरकारियां, सभी कुछ पड़े का पड़ा रह गया था।... आज मटर और आलू साथ पका रही हूं।"

"देखना तो, किस तरह खाऊंगी !"

मन ने चाहा कि रसोई में ही बैठकर कुमारी से बातें करती रह जाऊं।

घंटी बजती रही और जब फोन उठाया नहीं गया, तब कहीं जाकर याद आया कि कुमारी सब्ज़ियां लाने बाहर गयी हुई थी। फोन की घंटी बजकर रुक गई। उसके कट जाने के बाद मैंने अपने आपसे कहा कि अगर वह वही फोन था, तो मुझे उठाना चाहिए था। अशित कह गया था कि उसका दोस्त मुझसे बहुत ही जरूरी बातें करना चाहता है। मैं उसके उस दोस्त को तो नहीं जानती थी, पर उसके बारे में जरूर जानती थी। अशित कई अवसरों पर उसकी चर्चा कर चुका था। शुरू में उसने अशित से कहा भी था कि वह मुझसे न मिला करे। मेरे यह पूछने पर कि वह क्यों मुझसे टेलीफोन पर बातें करना चाहता था, अशित ने कोई जवाब नहीं दिया था। जाने से पहले इतना जरूर कह गया था—देखना, उस पागल के बहकावे में मत आ जाना !

मैं अभी यह तय कर ही रही थी कि फोन अगर फिर से आ जाए तो मेरा उठाना उचित रहेगा या नहीं, कि सचमुच ही वह फिर से बज उठा। बहुत जल्दी ही उचित-अनुचित के चक्कर से अपने को रिहा करके मैं अपनी जगह से उठी। फोन उठाकर एक पल ठिठकी रही, फिर कुछ सहमे हुए मैंने धीरे से कहा—"हैलो !"

"एस ला रेज़िदांस दे मादम्वाज़ेल, शेफाली ?"

"जी हां !"

"नमस्ते ! मैं अशित का मित्र, धरम हूं।"

मैंने लम्बी सांस ली। कुछ थमकर उसने कहा—

"अशित ने आपको जरूर बताया होगा कि मैं आपसे कुछ बातें करना चाहता हूं..."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हां, उसने बताया था।"

"मैं आपको डिस्टर्ब तो नहीं कर रहा हूं?"

"नहीं तो!"

"देखिए, शेफाली जी! आप मुझसे बातें करने को तैयार हो गईं, इसके लिए मैं आपका आभार मानता हूं। मैं अशित का बहुत ही गहरा दोस्त हूं…"

"जानती हूं!"

"आप तो यह भी जानती होंगी कि अशित की शादी का भी मैं ही जिम्मेवार हूं। उसने हमेशा मुझे एक बड़े भाई की तरह माना है। मैंने भी उसे छोटे भाई की तरह चाहा है।…"

"जी हां, यह भी जानती हूं।"

"तो फिर आप मुझे इजाजत देंगी कि मैं आपसे मिलूं?"

"अशित ने आपको बताया होगा कि मैं किसी से नहीं मिलती।"

"हां, उसने यह भी कहा था कि मैं कोशिश करके देख लूं। इसलिए कोशिश कर रहा हूं। मुझे आपसे कुछ बहुत ही जरूरी बातें करनी हैं।"

"आप वे बातें फोन पर भी कर सकते हैं।"

"नहीं शेफाली जी, वे बातें फोन पर नहीं कर सकता हूं।"

मैं एक क्षण के लिए चुप रही।

"आप किस विषय पर ये बातें करना चाहते हैं?"

इस बार उधर से आवाज आने में देर हुई।

"मान लें कि अशित के हित में ही बातें होनी हैं।"

"अशित भी साथ होगा?"

"नहीं, मैं आपसे अकेले में मिलना चाहता हूं।"

"आप तो मेरे बारे में सभी कुछ जानते होंगे?"

"थोड़ा-बहुत जरूर जानता हूं।"

"इसके बावजूद आप मुझसे मिलना चाहते हैं?"

"हां!"

"तो फिर ठीक है।"

"कब, कहां?"

"आप ही कहें।"

"कल मैं आपके घर पहुंच रहा हूं, शाम पांच बजे।"

"उस समय शायद अशित भी पहुंच जाए!"

"नहीं। मैं उसे मना कर दूंगा।"

"पर मेरे घर का पता…"

"वह मुझे मालूम है। मैं अशित को वहां ड्रॉप कर चुका हूं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो फिर ठीक है, मैं इन्तजार करूंगी।"

"आप मेरी धृष्टता को अन्यथा न लें।"

लगा कि वह आदमी जैसे किसी देवी से बात कर रहा हो। मैंने कोई उत्तर नहीं दिया।

"अच्छा तो आपको बहुत-बहुत धन्यवाद ! कल पांच बजे, नमस्ते !"

जब तक मैंने फोन को उसकी जगह पर नहीं रखा, लाइन बनी की बनी रही। अपने प्रति उस आदर से में हैरान थी। रसोई में पहुंचकर मैंने अपने लिए थोड़ी-सी चाय बनायी। उसे लिये अपने कमरे में आ गई। एक चुस्की के बाद सोचती रही क्यों मिलना चाह रहा था यह आदमी मुझसे ? वे कौन-सी बातें थीं, जिनके लिए वह मेरे यहां पहुंच रहा था ? मैंने चाय की दूसरी चुस्की ली ···

हिल टॉप के उस धुंधले वातावरण में अशित ने मेरे दोनों हाथों को अपने हाथों में लिये हुए कहा था, "शेफाली ! तुम्हारे साथ की मेरी घनिष्ठता को और कोई कुछ भी कहे, मुझे परवाह नहीं। पर आज जब धरम भी हमारे सम्बन्ध को वही नाम दे गया तो मैं विचलित हो गया हूं। धरम मेरा दोस्त है, लेकिन दोस्त शब्द से भी हमारा नाता परिभाषित नहीं होता। मैं उसकी जो इज्जत करता हूं, वह दोस्तों के बीच शायद न होता हो; पर वह मेरा केवल दोस्त नहीं, यह भी कहा जा सकता है। दुनिया की बहुत-सी चीजें मैं धरम के लिए छोड़ सकता हूं। एक तुम ही हो, जिसके सामने मैं धरम को भी भूल सकता हूं। कभी-कभार जी चाहता है कि तुम्हें और धरम को दिल के तराज़ू पर संतुलित कर पाऊं, कोई किसी से एक ग्राम भी कम न होने पाए। मगर ऐसा नहीं हो पाता। धरम का पलड़ा हलका होकर ऊपर उठ जाता है, तुम भारी रह जाती हो। इतना होने पर भी धरम मेरे लिए बहुत कुछ रह जाता है। हो सकता है कि मैं उसके एहसानों को नकार दूं, उसके स्नेह को भूल जाऊं फिर भी मेरे जीवन से धरम का महत्त्व घट नहीं पाएगा। कल रात की उसकी बातों से मैं विचलित हो गया हूं। मेरे मन की शांति चली गई है। मैं क्या करूं ?···"

अशित अपने चेहरे को मेरे कन्धे पर रखकर लम्बी सांस ले बैठा था।

"तुम्हारा यह दोस्त शादीशुदा है ?"

"नहीं, जिस लड़की को इसने प्यार किया था, वह कार-दुर्घटना में मर गई थी···"

दो चुस्कियों के बाद मेरी चाय ठंडी हो गई। मैंने कप को मेज पर रख दिया धरम के बारे में सोचती रही। अशित कह गया था कि वह आज भी अविवाहित है। शहर की सभी सम्पत्ति बेचकर वह समुद्र किनारे जा बसा है। चारों तरफ से घिरे हुए बंगले में हर वक्त विचित्र दोस्तों के बीच जीता है। जब मैंने जानना चाहा था कि विचित्र दोस्तों से अशित का क्या मतलब था, तो वह हंस पड़ा था । बोला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि यह तो उस स्थान पर पहुंचकर ही जाना जा सकता है।···

कुमारी सब्जियां लिये आ गई। अपने साथ अखबार भी ले आई थी। उसे मेज पर रखकर वह रसोई में लौट गई। अखबार में सात अन्तरों की चित्र पहेली होती थी। काम-काज से निबटकर वह अखबार के साथ बैठ जाती थी। कभी सातों अन्तरों को पा लेती थी और कभी न पा सकने पर मुझे बाकी अन्तरों को ढूंढ़ निकालने को कहती।

कल रात अशित के जाने के बाद मैं कुमारी के कमरे में जा बैठी थी। काफी देर तक मैं उसके साथ बातें करती रह गई थी। दो-ढाई घंटे की उस बातचीत का एक ही विषय था—अशित का घर, उसकी पत्नी, उसका मुन्ना।···

और जब कुमारी के कमरे से लौटकर अपनी चारपाई पर जा लेटी थी, उस समय मेरे दिमाग में बार-बार एक ही प्रश्न उठता रह गया था—इस चौखट पर अशित अपना सिर क्यों फोड़ रहा है? खिड़की के पास पहुंचकर मैंने अपने से पूछा, अशित खुद अपना सिर फोड़ रहा है, या मैं उससे फुड़वा रही हूं? अशित का वह दोस्त अगर मुझसे यही सवाल कर गया तो? बाहर गली के दोनों तरफ के ऊंचे घरों के बीच की दाहिनी पटरी पर धूप का एक टुकड़ा था। एक बूढ़ा आदमी उसके बीचोंबीच बैठा हुआ था। थोड़ी ही दूरी पर एक दुबला-पतला बूढ़ा बैठा हुआ, धूप सेंकनेवाले बूढ़े को इस तरह देख रहा था, जैसे कि उसके हटने की ताक में हो। एक कुत्ता लंगड़ाता हुआ सामने से निकल गया। दूधवाला साइकिल की घंटी बजाकर सामने के घरवालों को अपने पहुंच आने की सूचना दे रहा था। आज वह देर से पहुंचा था। लोग अपने-अपने काम के लिए निकल चुके थे। सुबह की आवाजें कम हो गई थीं।

मैं लौट आयी बीच कमरे में। मेज पर से कुमारी का रखा हुआ अखबार उठा लिया और सुबह की धूप के लिए बरामदे में बढ़ गयी। कैनवास की आरामकुर्सी को धूप में खींचकर मैं उस पर बैठ गई। अखबार को खोला और पहले ही पृष्ठ पर विनोद का चित्र पाकर मैंने अपने हाथ के अखबार को ढीला कर दिया। उसका आधा हिस्सा नीचे को झुक गया। तस्वीर आंखों से छिप गई। मोटे अक्षरों की सुर्खी को देखा और अनचाहे ही मेरे होंठ हिल गए—बों व्वायाज! वह अपने मन्त्रालय के पी० एस० तथा मारिशस के महिला संघ की तीन सदस्याओं के साथ सीनेगल की यात्रा पर जा रहा था, अफ्रीका महिला सम्मेलन में भाग लेने। अखबार को चार तहों में मोड़कर मैंने नीचे गिरा दिया। अभी तीन ही महीने पहले ···

मेर जीवन की वह पहली यात्रा थी। मॉरिशस छोड़ते समय वह यह कहकर पांच दिन पहले ही चला गया कि कनाडा के सम्मेलन के बाद वह सीधे पेरिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुंचेगा, मैं वहां उसका इन्तजार करूं। होटल आदि की सभी व्यवस्थाएं कर दी गई थीं। पेरिस पहुंचकर तीन दिन उसकी प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। कनाडा से उसने फोन पर बताया था कि मौसम खराब होने के कारण उसकी फ्लाइट चौबीस घंटे लेट थी। जब वह पहुंचा था तो आते ही कनाडा से भालू के चमड़े का कोट मेरे कन्धों पर टिकाते हुए बोला था—माफ करना बेबी, देर हो गई। वे सात दिन··· पेरिस के चप्पे-चप्पे पर इतने घूमे थे कि सात साल में भी शायद नहीं घूम पाते, और खुशियां इतनी अगाध थीं कि लगा था, सभी कुछ सात घंटे में ही पूरा हो गया।

लातूर एइफिल के ऊपर से सामने के विस्तृत पेरिस की ओर संकेत करते हुए वह बोला था—"यह देख रही हो शेफाली, यह सभी कुछ हमारा है ! यहां हम मुक्त हैं, वहां हम कैदी थे। एक दिन इसी तरह हमेशा के लिए वहां से भाग आएंगे। देख रही हो, यहां का हर खुलापन अपना है !···"

मैं अपने कमरे में बंद थी इस वक्त। अपने कमरे की रोशनी बुझाकर भी मैं अपने को उस अंधेरे में खो नहीं पा रही, जिसकी मेरे भीतर कामना थी। रात का सन्नाटा मेरे कमरे में फुसफुसाता रहा।

"शेफाली, यह जिन्दगी तुम्हारी नहीं। यह किसकी जिन्दगी जीये जा रही हो तुम ? यह तन्हाई, कशमकश, अकुलाहट और शिकंजे की जिन्दगी तुम्हारी कैसे हो सकती है ! तुम नाहक ही यहां मन की शान्ति तलाशती रह जाओगी, वह मिलेगी तुम्हें ? तुमने खुद अपने को अपनी मुट्ठी में कैद कर लिया है। भाग निकलो इससे !···पर कहां भागूं ? कहां जाऊं ?···तुमने तो उस दिन अपना सही रास्ता ढूंढ़ लिया था, पर फिर से जीने की चाह कहां से ले आयी अपने में ? तुम कायर हो, शेफाली ! मौत से डरती हो···क्या मौत ही एक रास्ता है ?···अब और बाकी है ही क्या ?···"

ठंड शुरू हो चुकी थी, पर मैं अपने पसीने की ठंड से सिकुड़ती रही। इधर से उधर करवटें लेकर भी अपने मन के कशमकश को मार नहीं पा रही थी। कुमारी टेलीविजन पर हिन्दी फिल्म देख रही थी। रह-रहकर उधर का शोर भी मुझे अकुलाहट दे जाता। मन में कई बार आया कि उठकर उस दूसरे कमरे में जाऊं और कुमारी को कह आऊं कि टेलीविजन बन्द करके सोने चली जाए। पर हर बार अपने को यही कहती रही कि उस बेचारी को क्यों उसके आनन्द से वंचित करूं !···

मैं योजना बनाने में लगी रही—क्या करूं ? सचमुच ही इस तरह जीना बड़ा कठिन था ! यह आदत बन नहीं पा रही थी। सोचा था कि आदी हो जाऊंगी, पर आज अस्पताल से लौटे बारहवां दिन था। अब यकीन हो चला था कि मैं इस जिन्दगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आगे नहीं जी सकती। योजना बनाती रही, इस बार दूर चली जाऊं···और वहां अपने को समुन्दर की गहराई में खो दूं, जहां से मेरी लाश भी जमीन को न लौटे। पर कौन जाने, जमीन की तरह समुन्दर भी मेरी लाश को पचाने से इन्कार कर जाए!···

दो तरफ से दो तकियों के बीच मुंह छिपाकर मैं चिल्ला उठी—

"मैं थक गई हूं···थक गई हूं···थक गई हूं···शान्ति चाहती हूं···शान्ति···"

मैं सचमुच ही बहुत जोर से चिल्ला उठी थी।

झटके से मेरा दरवाजा खुला, रोशनी हुई और कुमारी मेरे सामने थी—

"क्या हुआ मौसी?"

"सपना देखा मैंने···"

बत्ती बुझाकर वह चली गई।

ठीक पांच बजे दरवाजे पर खटखटाहट हुई। मैंने कुमारी से कहा कि वह स्टोव पर चाय के लिए पानी रख दे और खुद आगे बढ़कर दरवाजा खोला। न अधिक लम्बा न अधिक नाटा ही था वह। उसका रंग भी न गोरा था और न ही काला। अशित की उम्र का होकर भी उससे अधिक उम्र का लगता था, लेकिन उसके चेहरे और आंखों की चमक अशित के चेहरे और आंखों की चमक से कहीं अधिक तेज थी। मेरे दरवाजा खोलते ही उसने कहा—

"नमस्ते! मैं धरम हूं।"

उसके नमस्ते का उत्तर देकर मैंने उसे भीतर आने को कहा। उसके होंठों के बीच एक मुस्कान थिरकी। उसके गले में सोने का निकलेस था, कृष्ण की तस्वीर के साथ। सोफे की ओर संकेत करते हुए मैंने उसे बैठने को कहा। उसके बैठ जाने के बाद मैं ठीक सामने के सोफे पर बैठ गई।

"मुझे यहां पाकर आपको हैरानी हो रही होगी!···"

"नहीं तो!"

मेरे इस उत्तर पर वह एक बार फिर मुस्करा उठा। मैंने भी मुस्कराकर पूछा—"क्या पीएंगे आप—चाय, कॉफी या···?"

"फ्रूट जूस न हो तो थोड़ा-सा ठंडा पानी।"

मैंने कुमारी को आवाज दी। कुमारी भीतर आयी। धरम को देखकर उसने उसे प्रणाम किया और मेरी ओर देखने लगी।

"धरम साहब के लिए फ्रूट जूस ले आओ, पर मेरे लिए ठंडा मत लाना।"

उसके चले जाने पर धरम बोला, "यह अशित ने अच्छा किया कि उसने कुमारी को यहां छोड़ रखा है।"

"आप कुमारी को जानते हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं उन सभी लोगों को जानता हूं, जिन्हें अशित जानता है।"

वह मेरे कमरे की हर चीज को गौर से देखता रहा। हमारे बीच मौसम की बातें हुईं, फिर शहर की आपाधापी के बीच पार्किंग के अभाव की बातें भी उसने कीं। इस बीच कुमारी दो गिलासों में फ्रूट जूस लिये आ गई। गलती से वह धरम को नॉन कोल्ड और मुझे कोल्ड गिलास थमा गई। धरम ने हंसकर कहा, "कुमारी, तुमने मादाम को ठंडा गिलास दे दिया।"

कुमारी अपनी भूल को समझ पाती, इससे पहले धरम अपनी जगह से उठकर मेरे पास आ गया और अपना गिलास मुझे थमाकर मेरे हाथ का गिलास ले लिया। अपने गिलास को अधखाली करके उसने कहा—

"शेफाली जी, मैंने आपकी सूरत की सही कल्पना की थी। मैं सोचता हूं कि अब मुझे अपने यहां पहुंचने के उद्देश्य पर आना चाहिए।…"

थमकर गिलास के बाकी पेय को गले के नीचे उतारा। जेब से रूमाल निकालकर मुंह पोछा, मेरी ओर देखा और गम्भीर स्वर में बोला—"मेरे और अशित के बीच कभी कोई दीवार नहीं रही है। वह न तो अपने आनन्द के क्षणों को मुझसे छिपा सकता है और न ही अपने दर्द के क्षणों को। जिस दिन वह आपको अस्पताल छोड़ आया था, उसके दूसरे ही दिन मेरे पास पहुंचा था। शेफाली जी, सभी कुछ विस्तार में कहने से कोई लाभ नहीं। सभी बातों का सारांश यह है कि अशित ने आपको प्यार किया था, वह आज भी आपको प्यार करता है। तब और आज के बीच बारह लम्बे वर्ष बीत गये। सम्भवतः वे बारह वर्ष प्रतिक्रियाहीन वर्ष रहे हों! प्रतिक्रियाहीन इसलिए कि अशित की उम्मीदें जाती रही थीं। आज उसकी उम्मीदों को फिर से पानी मिल गया है। और वे पनपनें लगी हैं। मैं मनोविज्ञान का पंडित नहीं हूं, लेकिन अशित से जो कुछ सुना, मैं उससे इसी निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि तब की शेफाली अब की शेफाली नहीं थी, इसीलिए उसने अशित को झटका देकर अपने से अलग कर दिया था। आज की शेफाली ऐसा करने में असमर्थ है, क्योंकि आज उसे भी अवलम्ब की आवश्यकता महसूस हुई है। शेफालीजी, आप और अशित के बीच एक और कहानी है—जांते के बीच घुन की तरह, दांतों के बीच जीभ की तरह। फिर भी शेफाली जी, मैं आप के यहां उस आशा और उसके बच्चे का वकील बनकर नहीं आया हूं। मेरे लिए जितना प्रिय अशित है, उतना ही आशा और मुन्ना भी हैं और उतनी ही प्रिय आप भी हैं। इस त्रिकोण का हर आदमी परिस्थिति का शिकार है। हर आदमी अपने मन की शांति के लिए छटपटा रहा है।…"

वह चुप हो गया। मेरी प्रतिक्रिया को पढ़ने की कोशिश की। पढ़ चुकने के बाद बोला—"अगर आप मुझसे यह न पूछेंगी कि मेरी सूचनाओं के स्रोत क्या हैं, आप की निजी बातों को मैं कैसे जान सका—अगर सचमुच आप यह न पूछें कि मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये बातें कैसे जान पाया, तो मैं कहने को तैयार हूं कि आपकी आत्महत्या के कारण को मैं जानता हूं। उस मंत्री को भी जानता हूं, जिसने आपके लिए किराये पर तु-ओ-बीश का वह होटल ले रखा था। मुझे आपके साथ उतनी ही हमदर्दी है, जितनी विनोद और अशित की पत्नियों के साथ।"

मैं अवाक् उस आदमी को सुनती रही—

"प्यार तो अद्‌भुत चीज़ होता है, शेफाली जी! उसके लिए कौन किसको दोषी करार दे! उस पर किसका वश रहा है! मैंने बहुत दूरी से आपकी भावना और आपकी पीड़ा को समझने की कोशिश की है। इस कहानी के सभी पात्रों में शायद आप अकेली हैं, जिसमें मैं आत्मसंयम का विश्वास करता हूं।···"

मैं अपने सामने के इस आदमी को समझ नहीं पा रही थी, फिर भी उसे टोकने का साहस मुझमें नहीं था।

"शेफाली जी, आपको विनोद की पत्नी पर रहम आ गया था।···"

वह फिर कुछ देर के लिए चुप हो गया। मुझे एकटक देखता रहा।

"शेफाली जी···"

उसका इस तरह 'शेफाली जी, शेफाली जी' कहना मुझे लज्जित कर रहा था, पर मैं उसे टोक नहीं सकती थी।

"शेफाली जी, अशित की पत्नी और बच्चे को भी आपके रहम की जरूरत है।···"

मैंने आंखें मूंद लीं। मेरे आंखें मूंद लेने पर वह चुप हो गया। वह चुप ही रहा, जब तक कि मैंने आंखें नहीं खोल लीं। मेरे आंखें खोलते ही वह बोल उठा—"अशित को यह कहकर कि आप उससे नफ़रत करती हैं, आप उसे उसके घर वापस नहीं भेज सकतीं—यह मैं जानता हूं।"

मेरी अब तक की चुप्पी चिल्ला उठी—

"तो फिर? क्या करूं मैं?···"

और मैंने अपने सिर को दोनों हाथों में ले लिया।

"शेफाली जी! क्या आप मुझे अपने अच्छे दोस्तों में नहीं गिन सकतीं?···"

टेलीविजन पर एक बार बौद्ध धर्म पर एक फिल्म देखी थी। लगा, वह स्वर किसी भिक्षु का था! उसने दोबारा पूछा—"क्या आप मुझे अपने अच्छे दोस्तों में नहीं गिन सकतीं?···"

मैंने हाथों को अपने सिर से नहीं हटाया। पलकें नहीं उठायीं।

"शेफाली जी, आप मेरी ओर देखिए तो सही!"

मैंने सिर को हाथों से अलग करके पलकों को ऊपर किया। उस आदमी की आंखों में एक प्रकाश था। एक आकर्षण-शक्ति थी जो मुझे बेसुधी की-सी स्थिति में डाल गयी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अशित ने कभी आपको मुक्ति-पथ के बारे में कुछ नहीं बताया ?"

"नहीं।"

"यह हमारा एक संघ है। अभी इसके बहुत दिन नहीं हुए हैं, फिर भी हमारे सदस्यों की संख्या लगभग दो सौ हो गई है। आपको शक्ति और आत्मशान्ति की आवश्यकता है। ये दोनों चीजें वहां मिल जाएंगी।"...

यह कहकर उसने अपनी सफेद कमीज़ की ऊपरी जेब से एक कार्ड निकाला और मुझे थमा दिया—

"अशित हमारा सदस्य नहीं है, फिर भी वह आपको हमारे संघ तक ले जाएगा। मुझे विश्वास है कि आप अवश्य आएंगी !"

वह आदमी न जाने कब अपनी जगह से उठा, कब मुझे नमस्ते किया, कब कमरे से बाहर हो गया—मेरी चेतना के लौटते-लौटते मैंने अपने को अकेली पाया।

मैंने चाहा कि अपने को अंधेरे में खो दूं, पर वह अंधेरा उतना घना नहीं था। मेरे दोनों कानों की ओर से दो आवाजें आ रही थीं—'तुम्हारा जीवन पीछे छूट चुका है, तुम लौट जाओ वहीं ! इसी में तुम्हारा हित है, लौट जाओ, लौट जाओ...।' दूसरी आवाज़—'तुम्हारा कोई जीवन नहीं, कोई दुनिया नहीं। तुम कुछ हो, कुछ नहीं।...तुम शून्य हो, शून्य हो,...तुम धरती का बोझ हो, बोझ हो।...' मैंने कानों पर हाथ रख लिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५

लाल पसीना

मैंने कभी अपनी पुस्तक की कोई भूमिका नहीं लिखी है, इस विश्वास के साथ कि मेरी पुस्तक अपने आप में उस सम्पूर्णता को लिये हुई होती है। और जब किसी अधूरेपन का सवाल पैदा ही नहीं होता तो फिर भूमिका की क्या जरूरत ! इस आत्मविज्ञापन के दौरान मुझे भय है कि कहीं कुछ पाठक इसे एक स्पष्टीकरण का लबादा ओढ़े भूमिका न समझ लें ! यह स्पष्टीकरण भी नहीं है। बस अपनी पुस्तक की एक हल्की-सी झलक उन सुस्त पाठकों को देने का प्रयास मात्र है, जिन्हें 'लाल पसीना' जैसी पुस्तक पढ़ने का समय नहीं मिल पाता। इस पुस्तक पर कई निदेशकों ने फिल्म भी बनानी चाही, जिसमें गरम हवा के श्री सथ्यू ने भी दिलचस्पी ली। लेकिन मॉरिशस की सरकार की नज़र में यह पुस्तक विवादास्पद थी, क्योंकि गोरों के खिलाफ बातें इस पुस्तक में भरी हुई हैं। यही वजह है कि इस पुस्तक पर फिल्म नहीं बन पायी। खैर, राजकमल प्रकाशन की ओर से जब इसके विमोचन की तैयारी दिल्ली में हो रही थी, उस समय मेरा मॉरिशस छोड़ना और आयोजन में हिस्सा लेना भी नहीं हो सका था, क्योंकि गोरे आकाओं के बाद हमारे काले-सांवले आका थे अब, जिन्होंने इजाजत नहीं दी। सियासत में तब मेरा एक दोस्त था शिक्षा मन्त्री के पद पर, और उसी ने मेरा प्रतिनिधित्व उस विमोचन में किया।

'लाल पसीना' से सम्बद्ध मेरा एक नाटक महेश रामजियावन के निर्देशन में स्थानीय टेलीविजन पर आया तो सही, पर मेरे लिए सज़ा यह रही कि उसी क्षण से टेलीविजन पर चल रहे मेरे साहित्य-कार्यक्रम 'आयाम' पर प्रतिबन्ध लग गया।

यह उपन्यास सबसे पहले सारिका में धारावाही छपा था और पाठकों की प्रतिक्रियाओं से उसी वक्त, यानी पुस्तक रूप लेने से पहले मेरा प्रयास मुझे सार्थक लगा। मेरे विद्वान मित्रों ने प्रशंसा में इसे कई नाम दिये, लेकिन मैं इसे एक ही नाम देता हूं—अस्मिता, अधिकार और मनोवांछित इज्जत के लिए संघर्ष। इसकी बेशुमार समीक्षा में कहीं एक विद्वान समीक्षक का यह भी कहना था कि यह पुस्तक अपने शीर्षक से ही अपने साम्यवाद प्रचार का द्योतक है।

गलत ! एकदम गलत !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे लिए साम्यवाद कोई ऐसी चीज़ नहीं, जिससे मैं बहुत घबराता हूं; लेकिन वह कोई ऐसी चीज भी नहीं, जिसकी अनिवार्यता को मैंने कभी साहित्य में कबूल किया हो। लाल पसीना शीर्षक अगर किसी बात का द्योतक है तो वह है मानवतावाद ! अब अगर आपका साम्यवाद इसी के अंतर्गत आता है तो फिर मैं बहस में हिस्सा लेना नहीं चाहता। ऐसे तो पटना के मेरे मित्र डॉ० रामबचन राय इसे मॉरिशस का मैला आंचल कहते हैं। यहां भी मैं अपनी ही व्याख्या पर आश्रित रहना चाहता हूं और लाल पसीना को मॉरिशस का 'रक्तिम आंचल' मानना अधिक पसंद करूंगा।

किसी ने इसे आम आदमी के संघर्षों की महागाथा कहा है तो किसी ने इसे बस एक मोटी पुस्तक मानकर अपनी लम्बी समीक्षा समाप्त कर दी है। जितने समीक्षक, उतनी परिभाषाएं !

यह, उपन्यास जब सारिका में धारावाही छप रहा था, उस समय सारिका के पाठकों ने जिस ढंग से हर किस्त के लिए बेचैनी जतायी थी, उससे मेरा हौसला सचमुच बहुत बढ़ा था—प्रशंसा के कारण नहीं बल्कि उस आत्मीयता के कारण। मेरे चार प्रकाशक हैं एक साथ उसको प्रकाशित करने की बेताबी दिखाने लगे थे। पर उसे तो वहीं से प्रकाशित होना था, जहां बहुत पहले मैं वचन दे चुका था।

लाल पसीना में, डेढ़ सौ साल पहले भारत से पहुंचे हुए उन मज़दूरों की कहानी है, जिन्हें जानवरों से भी बदतर जीवन मॉरिशस की जमीन पर जीना पड़ा। शोषण की यातनाओं के बीच भी एक ओर वे यहां की बंजर भूमि को हरे-भरे खेतों का रूप देने का संकल्प किये रहे, तो दूसरी ओर अपनी अस्मिता, अपने अधिकार और अपनी इंसानी इज़्जत के लिए भी संघर्षरत रहे।

यहां पर जो अंश प्रस्तुत किया जा रहा है, वह उपन्यास के उस पहले भाग का अंतिम अंश है, जहां पेट के लिए इज्जत की नीलामी को नकारने के संघर्ष की झलक सामने आती है।

अपने आत्म-विज्ञापन का भूत अभी भी मेरे ऊपर सवार है, इसलिए भारत की पत्र-पत्रिकाओं की तमाम प्रतिक्रियाओं में से यहां केवल दो की दो पंक्तियां प्रस्तुत हैं। 'आजकल' में एक समीक्षक का कहना है कि 'लाल पसीना' की अपनी एक व्यावसायिक भूमिका है, यानी आम पाठकों के मनोरंजन का यह एक अच्छा साधन होगा। तो दूसरी ओर 'कादम्बिनी' के समीक्षक का कहना है कि 'लाल पसीना' उपन्यास कम, रक्त और आंसुओं में भीगा एक ऐतिहासिक दस्तावेज अधिक है। भाषा और शैली से भी उपन्यास सशक्त है।···

यह आत्म-विज्ञापन नहीं, समीक्षकों का विज्ञापन था। इन विज्ञापनों के विरोधाभासों के चक्कर में पड़ने से बेहतर यह होगा कि आप कहीं-न-कहीं से लाल पसीना की एक प्रति उठा ही लाएं और अपना निर्णय आप बनाएं ! भारत के मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक समीक्षक मित्र एक बार मेरी उपस्थिति में, एक साहित्यिक आयोजन में, मेरे बारे में बोलते हुए कह गये थे कि भारत के सभी मॉरिशस-प्रेमियों के घर 'खून पसीना' की एक प्रति का होना जरूरी है, अन्यथा मॉरिशस का प्रेम अधूरा रहेगा ! आयोजन के समाप्त होने पर मैंने अपने मित्र से धीरे से पूछा था—

"क्यों यार, यह 'खून पसीना' किसकी लिखी हुई पुस्तक है ?"

"क्यों, अब तुम अपनी पुस्तकों के नाम भी भूलने लग गये क्या ?"

साफ है कि समीक्षक चाहे दोस्त ही क्यों न हो, उसे 'लाल पसीना' को 'ख़ून पसीना' बना देने का अधिकार होता है !

कारखाने की ठेलागाड़ी से लाशों को नदी के उस पार किया जाता। पिछली चिता पर एक ही साथ चार लाशों को रखा गया था। बस्ती अधिया गयी थी। बदबू के कारण लोगों के हाथ हर वक्त नाक पर होते थे। कई लोगों की मृत्यु खेतों में काम करते-करते हो गयी थी। बस्ती से खेतों तक फैलती चली जा रही थी बुखार में सनी हुई खांसी, और खांसी को रोकने के लिए खड़ी थी वह मौत की ऊंची दीवार। स्पेन की किसी जहाज द्वारा लायी गई सौगात थी वह महामारी, जिसे भारतीय मजदूरों के बीच बिखरने दिया गया था। प्राणों के लाले पड़े थे जिन क्षणों में, उन्हीं क्षणों में रेमो साहब के बेटे ने अपने घोड़े पर से दाऊद को अपने पास बुलाया था—

"कामां तापेल ची ?"

"दाऊद !"

"तो तुम्हीं हो !"

दो दिन हुए थे, दाऊद ने एक सरदार को कह दिया था कि जहन्नुम में जाए मालिक का हुकुम ! छोटे साहब की बन्दूक की नली पर नजर पड़ते ही दाऊद को अपने बड़े भाई की याद आ गयी। इसी नली का वह शिकार हुआ था। दाऊद के मुंह से शब्द नहीं निकला। वह खड़ा रहा। तैयार था, मालिक के हुकुम को जहन्नुम में भेजने की सज़ा भुगतने के लिए, कि तभी रेमो साहब के बेटे ने कहा—

"पास आओ !"

वह पास पहुंच गया।

"तो तुम्हीं दाऊद हो ?"

"हां, साहब !"

"ता फ़ाम ए त्रे बेल !"

"मालिक, समझा नहीं।..."

"तुम्हारी औरत..."

पहले भय के मिटते ही दूसरे भय ने दाऊद को घेर लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"त्रे जोली ! बहुत सुन्दर !"

"मालिक, मेरी मां और बहन कल ही मरी हैं···एक साथ।"

"तुम्हारा कोई बच्चा नहीं ?"

"नहीं मालिक !"

"तुम अपनी औरत को मेरे पास भेजो···तुम्हें एक गोरा बच्चा मिलेगा। शाम को गास्तो आएगा। उसी के साथ भेज देना !"

दाऊद खड़ा रहा। घोड़ा आगे बढ़ गया।

कुछ ही दूरी पर चिताएं जल रही थीं। औरतें जार-बेजार रो रही थीं।

दाऊद खड़ा रहा। घोड़ा ओझल हो गया, पर उसकी टाप दाऊद के सीने के भीतर उसकी उस भावना को रौंदती रही, जो उसकी अपनी अस्मिता थी।

कुछ ही दूरी पर जीनत अपनी सास और ननद का मातम मना रही थी।

कुछ ही दूरी पर कारखाना बन्द था। खेत सूने पड़े थे।

बस्ती के बच्चे भूख से तड़प रहे थे। बेबसी इस छोर से उस छोर तक थी। लोग बिलख रहे थे। जोर से रोने की शक्ति भी चली गयी थी।

कुछ ही दूरी पर अपने पंजे फैलाती हुई खूंखार मौत थी।

दाऊद अपने स्थान पर खड़ा रहा, अडिग। घोड़े की टापों से भीतर-ही-भीतर जूझता रहा, शान्त !

पर माहौल शांत नहीं था। इधर दो-तीन दिन से मनहूस हवा वह रही थी—वह मंडराती हुई मौत थी, सांय-सांय की आवाज लिये हुए।

पीछे से किसन ने दाऊद के कन्धे पर हाथ रख दिया—"क्या बोल रहा था वह ?"

दाऊद चुप रहा।

"कल का जनमा आज का राकस बन गया ! तुम उसका वह चेहरा नोंच तो सकते थे।" किसन भली-भांति जानता था कि वह खुद वैसा नहीं कर सकता था।

दाऊद ने किसन की ओर देखा—"शाम को गास्तो आएगा।"

"ठीक है, मैं उससे निपट लूंगा।"

"नतीजा ?"

"अब और क्या होना बाकी है ? अनाज रोक लिया गया। दवाई रोक ली गई है। अब और क्या रोकेंगे ?"···

वे बस्ती को लौट आये।

वहां की अस्त-व्यस्तता से जूझती एक दूसरी समस्या थी। लोगों का रोना-चिल्लाना जारी था। बस्ती सीली हुई गन्ध से बोझिल थी। हर खिड़की से खांव-खांव की आवाज, कराहने की आवाज, रोने-पीटने की आवाज। किसन के अपने घर में उसके मां-बाप सांसें गिन रहे थे। तीन दिन के भीतर किसन कोई चार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस्तियों का दौरा कर आया था। कहीं भी दवा नहीं थी, कहीं भी हकीम नहीं था।

एक चीज़ हर जगह थी—बैलगाड़ियां और लाशें !

कल रात एक और बैठक लगी थी। वही मालिक की कोठी पर धावा बोलने का प्रस्ताव। किसन ने फिर से कह दिया था—"अभी नहीं !" पीछे से आवाज़ आयी थी—"किसन की जवानी बूढ़ी होती जा रही है।"···

किसन हंसकर रह गया था। उस समय उसे अपने बाप की एक बात याद आ गयी थी—लबर-लबर करे बादी, एको चावर न पड़े हांड़ी।

निर्णय सिला रह गया था। वही बेबसी, वही ठण्डे पड़ गये प्रण।

दाऊद ने अपने को उसी स्थिति में पाया। वही बांझ की-सी स्थिति, निहत्थेपन की स्थिति। वही जीवन-भर की बेबसी। वह विकलांग था। बीच बस्ती में खड़ा होकर दाऊद जोर से चिल्ला उठा। वह पागलों की चीख थी। कई लोग घर से बाहर आ गये। दाऊद घुटनों के बल पड़ा रहा।

चीख के बाद तनाव कम हो गया था। वह शिथिल-सा पड़ा रहा। कई लोगों ने एक साथ पूछा—"का होइल दाऊद ?"

किसन सभी को वहां से हटाकर दाऊद को उठाया। उसे उसके घर तक ले जाकर जीनत को पुकारा। मुरझायी सूरत में वह जीनत सामने आयी जो सचमुच सुन्दर थी। उन धंसी हुई आंखों में और भी अच्छी लग रही थी। किसन पहले भी सोचकर मन-ही-मन मुस्करा चुका था कि मुखड़े पर की पीड़ा मुखड़े को एक रौनक दे जाती है।

"जीनत. तुम इसका ख्याल रखना।"

"किसन भैया, इसे हुआ क्या है ?" निर्बल स्वर में उसने पूछा।

"कुछ नहीं, बस कमजोरी के कारण···। खैर, तुम्हारी कैसी तबियत है ? तुम्हें बुखार तो नहीं ?"

"नहीं भैया, मैं एकदम ठीक हूं।"

किसन के चले जाने के बाद दाऊद ने आंखें ऊपर उठायीं। जीनत को देखा और देखता ही रहा।

"क्या देख रहे हो इस तरह ?" उसी निर्बल स्वर में जीनत ने पूछा।

"देख रहा हूं।"···

"क्या ?"

"इतनी अधिक खूबसूरत तुम्हें नहीं समझा था।"

"यह क्या ऊट-पटांग बातें कर रहे हो !"

"तुम किसकी खातिर हो ?"

"क्या मतलब ?" सारे भोलेपन को साथ लिये हुए था यह छोटा-सा सवाल।

"तुम सिर्फ मेरी खातिर क्यों नहीं हुई ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं सिर्फ तुम्हारी खातिर हूं !"

"नहीं जीनत, नहीं !"

"और जिनकी खातिर थी, वे तो चल बसीं।"

"तुम सिर्फ मेरी खातिर नहीं हो, जीनत···!"

एक गहरे सन्नाटे के बाद हुआ वह विस्फोट—

"शाम को तुम्हें रेमो साहब के बेटे के यहां जाना है।"

विस्फोट के बाद फिर सन्नाटा। फिर तनाव। फिर आन्तरिक कोलाहल। पहले जीनत की सूखी हुई आंखों से आंसू टपके, फिर दाऊद की आंखों से। जीनत के दोनों हाथों को अपने हाथों में लेकर दाऊद ने धीरे से कहा—"जीनत, ऐसा पहली बार तो नहीं हो रहा !"

जीनत चुप रही।

"लोग मर रहे हैं बिना खाना, बिना दवाई।"···

जीनत सुनती रही।

"यह फैलती महामारी। इसे रोकने की कोशिश तो की जा सकती है। हम दोनों शायद इसे कर सकें। अगर कर पाए तो कितना बड़ा काम होगा, जानती हो ?"

जीनत को लगा, दाऊद के स्वर में वह लहजा था जो पागलों की आवाज़ों में होता है। फिर भी वह चुपचाप सुनती रही।

"एक जाति तबाह होने से बच जाएगी। एक छोटी-सी कीमत में यहां अनाज पहुंच सकता है, दवाइयां आ सकती हैं। तुम सुन तो रही हो न ?"

जीनत ने सिर हिलाकर हामी भर दी।

"मौका अच्छा है। क्यों न उठा लें इसका फायदा ! क्यों, क्या कहती हो तुम ? बस, इस तरह चुप बैठी रहोगी ? कुछ बोलो भी तो···!"

"क्या बोलूं ?"

"तुम्हें मंजूर है न ?"

"क्या ?"

"बस, यहां दवाई और अनाज पहुंच सके।"

"यह मंजूर क्यों न हो !"

"ठीक है। तो फिर···शाम होने में अधिक देर नहीं···तुम तैयार हो जाओ।"

"कहां जाने के लिए ?"

"बस्ती के लिए अनाज और दवा लाने।"

"कहां ?"

"रेमो साहब के बेटे के पास।"

"तुम पागल तो नहीं हो गये ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पागल क्यों ? मौके की बात कर रहा हूं। मौका अच्छा है। एक बहुत बड़े उद्देश्य के लिए थोड़ी देर आंखें मूंद लेने से क्या अनर्थ हो जाएगा। तुम औरत हो, जीनत ! और औरत की देह रोटी का कोई टुकड़ा नहीं होती जो किसी के मुंह लगने से जूठी हो जाए ! तुम जूठी नहीं होओगी। पर याद रहे, अपने को उसके हवाले करने से पहले सौदा हो जाना चाहिए। तुम पहले उसे राज़ी कर लेना, फिर अपने को समर्पित करना।"...

वगल से किसी के रोने की आवाज़ आयी। मर गया होगा फिर कोई !

जहां पगडण्डी मरती थी, वहां से आगे विस्तृत मैदान खुलता था। सारी बची-खुची ताकत के साथ दौड़ता हुआ किसन दाऊद और जीनत के आगे जा खड़ा हुआ। उससे खड़ा नहीं रहा गया। बिछी हुई हरी दूब पर वह लुढ़क गया। दाऊद और जीनत से आगे नहीं बढ़ा गया। दोनों खड़े रहे। किसन जोरों से हांफता हुआ थोड़ी-बहुत शक्ति बटोरने के प्रयास में लगा रहा। तब तक वे दोनों चुपचाप खड़े रहे।

आंखों को ऊपर करके दोनों को देखते हुए किसन आखिर बोल सका—"कहां जा रहे हो तुम दोनों ?"

उत्तर देर से आया, वह भी प्रश्न बनकर—

"क्या करेंगे यहां ?"

"भाग रहे हो ?"

"कोई दूसरा चारा भी है क्या ?"

"कहां-कहां भागोगे ?"

"तुम चाहते हो कि मैं जीनत को उस भेड़िए के हवाले कर दूं ?"

"मैं यही चाहता हूं क्या ?"

"तो फिर क्या चाहते हो ?"

प्रश्न-ही-प्रश्न। अब तक एक भी उत्तर सामने नहीं आया था। किसन ही को उत्तर देना पड़ा—"सामना किया जा सकता है।"...

"वह तो उस पहली घड़ी से किया जा रहा है, जब सभी के सामने पहली औरत को नंगी किया गया था। सभी के सामने उस औरत के साथ..."।

जीनत बीच में बोल उठी, "किसन भैया, हम किसी दूसरी जगह तो जी सकते हैं !"

"वह दूसरी जगह इस टापू में कहीं नहीं है, जीनत ! यह कटघरा इतना बड़ा है कि इसमें खुली जगहों का भ्रम हो जाता है, जबकि यहां ऐसी कोई भी जगह नहीं। तुम्हें इस छोर से उस छोर तक कोई भी जगह नहीं मिलेगी, जहां गोरे जमींदारों के खूंखार कुत्ते तुम्हारी बोटी नोचने को दौड़ न आएं !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मर जाने के लिए तो कोई जगह मिल जाएगी !"

"दाऊद, यह तुम कह रहे हो ?"

सूरज स्याही फैलाकर भाग गया था।

अपनी जगह से उठते हुए किसन ने धीरे से कहा—"अंधेरा फैलता जा रहा है।"...

"अभी जान रहे हो ?" व्यंग्य भरी धुंधली मुस्कान के साथ दाऊद ने पूछा।

"लौट चलें !"

"कहां ?"

"यह क्या बचपना करने लगे ?"

"पूछ रहा हूं, कहां लौटने की बा त कर रहेहो ?"

"तुम्हारा कोई घर भी तो है !"

"है क्या ?"

"तुम्हारे घर को अगर कभी तुम्हारी जरूरत हुई तो वह आज है। आज पूरी बस्ती को तुम्हारी जरूरत है, दाऊद !"

"बस्ती को लाशों का आभाव हो गया क्या ?"

"कंधों का अभाव पड़ गया है—लाशों को उठाने वाले कन्धों का !"

आकाश पर पहला तारा झिलमिलाया। किसन ने अपने दाहिने हाथ को दाऊद के कन्धे पर रखा। अपने हाथ को वहां रखे-रखे किसन ने कई प्रश्न किये। दाऊद से एक भी उत्तर नहीं बन पड़ा। अपने पिछले प्रश्न को किसन ने फिर से दोहराया—

"कहो दाऊद, अब और कौन रह गया है तुम्हारे बिना ? अगर तुम्हें जाना ही है तो कम-से-कम एक ऐसे व्यक्ति का नाम तो बताते जाओ, जो उस समय भी मेरी बगल में होगा, जब इस लड़ाई में मेरी उम्मीद की एक सांस बाकी रह जाएगी !"

जीनत की आंखों से जो बूंदें टप् से टपक गयीं, उन्हें दोनों ने नहीं देखा।

"लौट चलो, दाऊद ! मरने के लिए अपने आंगन से बेहतर कोई दूसरी जगह हो ही नहीं सकती !"

दाऊद अब भी चुप था। उसे अपने बाप की बात याद आ गयी थी—आदमी के ना चाहेला हार माने के जानवर से !

इस वाक्य का संदर्भ दाऊद को भली-भांति ज्ञात था। वह भीतर-ही-भीतर कांप गया। जीनत ने भर्रायी हुई आवाज़ में कहा—"हम बस्ती को लौट चलें !"

दाऊद कुछ नहीं बोला।

उसके पांव उठे और कलमानव की तरह वह बस्ती की ओर चल पड़ा। अब तक की रोकी हुई सांस को छोड़कर किसन ने लम्बी सांस ली। जीनत की ओर देखा। अंधेरा बढ़ गया था। दोनों दाऊद के पीछे चल पड़े। आकाश तारों से खचा-खच भर आया था। पूर्व की ठण्डी हवा दो पहाड़ों के बीच से होती हुई विस्तार पाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी थी। दाऊद अब भी उस अंधेरे में, नींद में चलने वाले की तरह चल रहा था। उसके कानों में इस्लाम मियां के वे शब्द बज रहे थे, जो मरने से पहले वह कह गया था—इस दुनिया को तीन चीज़ों की जरूरत होती है।···वह टिकी रहती है इन्हीं तीनों चीज़ों पर—मुद्दतों से चली आयी अच्छाइयों की परतें···उसी जोड़न से तैयार वह लड़ाई जो बुराई को उखाड़ फेंकने के लिए हो···और लड़ने वालों का अपने ऊपर भरोसा!"

दाऊद के कदम तेज हो गये—अगर मरना ही है तो इस्लाम मियां की मृत्यु क्यों न मरा जाए? बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी थी उसे, बस्ती के कुएं में माल-गाज़ी सरदार को पेशाब करने से रोकने के लिए।

दाऊद को अपने ऊपर हैरत हुई। वह कैसे भाग सकता था इस बस्ती से!

कई दिनों से लोग सुनते आ रहे थे कि बस्ती में मज़दूरों का रक्षक पहुंचने वाला है। जितने मुंह उतनी बातें! कोई कहता—उसके आते ही हमारी स्थिति सुधर जाएगी। कोई कहता—हमारी सभी फरियादों को सरकार तक ले जाएगा। सरकार मामले पर ध्यान देगी या नहीं, यह नहीं कह सकते।···दिन बीतते गये, बस्ती में 'मज़दूरों के रक्षक' की चर्चा रोज़ होती रहती, पर कभी कोई रक्षक नहीं पहुंचा। लोगों को जो पिछली खबर मिली, वह यह थी कि मज़दूरों का वह रक्षक इस छोर आया अवश्य था, परन्तु मालिक की कोठी से आगे नहीं बढ़ सका। वह उधर ही से खुशी-खुशी लौट गया था। इसी तरह वह आयोग भी अपनी सभी छानबीन कोठी तक ही पूरी करके लौट गया था। मालिक और सरदारों के मुंह से मज़दूरों की सन्तोषजनक कहानी उसने वहीं सुन ली थी।

किसन बार-बार अपने-आपसे यह कहकर रह जाता—ऐसी घड़ी में देवननन् चाचा साथ नहीं।

कुन्दन का अभाव किसन के सभी हौसले डगमगा जाता। कुन्दन जो योजना बना गया, वह आज भी बैठके की पुस्तकों के बीच दबी पड़ी थी। किसन को लगता कि उस योजना को साकार करने का यही समय था···लेकिन कुन्दन के बिना?··· उस दिन वह बैठक के बाद उस पुस्तक को साथ ले आया था, जिसमें कुन्दन की सारी योजना के चार-पांच पन्ने थे। उसने उन्हें दो बार पढ़ा। अब इस योजना के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं था।

महामारी एक-एक करके लोगों को निगलती जा रही थी। अब तक बच्चों और औरतों को छोड़कर बाईस मर्द महामारी के शिकार हो चुके थे। चवालीस भुजाएं कम हो गयी थीं। मृत्यु का यह सिलसिला बना रहा तो पूरी बस्ती को श्मशान में परिवर्तित होने में महीना-भर से अधिक नहीं लगेगा! किसन को भय था तो बस देरी का। कहीं देर न हो जाए और···। बस्ती की मृत्यु का बस महीना भर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाकी था; पूरी बस्ती भयभीत थी। आंखों में भूख थी, पीड़ा थी, मृत्यु का भय था। बस्ती का गाना-बजाना बन्द था—सुनसान! सभी दरवाज़े बन्द होते गये। मौत बस्ती में मंडरा रही थी और उसने अपने घर के भीतर प्रविष्ट होने से रोका था। अपने भीतर के भय को हटाने के लिए जहां-तहां से हनुमान चालीसा का स्वर सुनाई पड़ता रहता। लोग अपना वर्तमान और भविष्य सभी कुछ बेचकर बैठे-से लग रहे थे। जो भी लोग बचे हुए थे, अपने सामने की निर्धारित मृत्यु को जानते थे। सभी जानते थे कि वह आएगी और सभी को उसकी प्रतीक्षा थी; फिर भी लोग ताबीज बांधे जा रहे थे, देवी मैया की मनौतियां होती जा रही थीं।

किसन के बाप की पलकें बोझिल होती गयीं, शरीर का रंग सफेद होता गया, आंखें सूखती गयीं, शरीर का तापमान घटता गया। किसन की मां अपने बेटे से लिपटकर चिल्ला उठी—"अब कोई ना बची किसन!"

"नहीं मां, अभी भी समय है।"

लेकिन उसके बाप का जो समय बाकी था, वह बहुत कम था। शाम होते-होते वह समय पूरा हो गया। किसन कोने में खड़ा-खड़ा सभी को रोते देखता रहा। होश आने पर वह आगे बढ़ा। सबसे पहले अपनी मां को अपने बाप के शव से अलग किया। फिर संध्या को हटाया और उसके बाद रेखा को। उसकी मां फिर से लाश की ओर बढ़ी। किसन चिल्ला उठा—"नहीं!"

उसने यह 'नहीं' उस मौत को कहा था, जो उसके अपने घर के भीतर भी आ ही गयी थी। उसका वह बाप जीवन से इस्तीफा दे ही चुका, जो यह कहते आया था कि जीवन में इस्तीफा नहीं होता। क्या वह सचमुच इस्तीफा था, या जिन्दगी की हद थी? अपने सामने के गहरे अंधेरे में भी किसन ने उन सारे दृश्यों को देखा, जहां उसके बाप का जीवन उस हद तक पहुंचता रहा था। इस्तीफा का मतलब तो हट जाना होता है। कब हटा था उसका बाप? तो फिर वह संघर्ष समाप्त हो गया क्या? संघर्ष कैसे मिट सकता है! वह तो एक हाथ से दूसरे हाथ को पहुंचने वाली चीज़ होती है। एक हाथ थका और दूसरे ने उसे थाम लिया।

किसन की मां की बेहोशी लम्बी रही। उतनी ही लम्बी रही उसके बाद की वह खामोशी—तीन रातों की एक लम्बी रात, अपलक और घटाटोप। किसन के भीतर का भय उसके दुख से अधिक था। भय क्यों? भय चेतना और साहस को मारने वाला होता है। भय भी तो एक दूसरी तरह की मृत्यु ही होता है। वह मृत्यु आदमी के संकल्प और शक्ति की मृत्यु होती है। किसन को लगा कि उसके बाप की मृत्यु मात्र एक शरीर की मृत्यु नहीं थी। वह मृत्यु एक युग की थी। उसने वर्तमान के लिए भय पैदा कर दिया था। वह भय किसन को भूल-भुलैया में ढकेल गया था। वह स्थिति अपने अस्तित्व को भूल जाने वाली स्थिति होती है। उस बेसुधी में भी किसन का प्रण जाग रहा था। उसे भय का सामना करना था। यह भय उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर से, उसके भीतर से गुजर जाएगा और वह तटस्थ रहेगा—रहेगा !

उसके पांव कांप रहे थे। उसके होंठ हिले और उसने सुनी अपनी ही आवाज़ ···एक जाति के लिए मृत्यु से भी गयी-गुजरी कोई चीज़ होती है, जिसके सहारे वह जीने को विवश होता है।

मस्तिष्क शरीर को आदेश देकर हर तरह का काम करवा लेता है, लेकिन मस्तिष्क अपने-आपको आदेश देकर उस आज्ञा को पालन नहीं करवा पाता। वही बात किसन के साथ हो रही थी। शरीर की कमजोरी ने उसे अब तक नहीं कंपाया था, पर यह दूसरी कमजोरी उसको कंपा ही गयी।

कांपता हुआ वह बाहर आ गया।

किसी दूसरी मृत्यु का आगम देने के लिए कोई भी कुत्ता बाकी नहीं था रोने को।

पहले तो लोगों को हैरत हुई थी कि मालिक इन मज़दूरों को इस तरह मरने क्यों दे रहा था ? मज़दूरों की कमी हो जाने पर सबसे बड़ी हानि तो उसी को थी। सारे खेत सूख जायेंगे। मालिक के महलों के चारों ओर जंगल उग आयेंगे। लोगों की यह हैरानी उस दिन मिटी, जब किसी दूसरे सरदार के मुंह से यह सुना गया कि कौन परवाह करे इन विद्रोही मज़दूरों की। दो ही तीन दिन में वह जहाज द्वीप के किनारे लगने वाला था, जिसमें सत्या का चाचा मालिक के लिए साढ़े तीन सौ मज़दूरों को ला रहा था। इस बार बिहार के चुने हुए मेहनती मज़दूर होंगे, जिसके लिए सत्या के चाचा को हर मज़दूर पर माहवार दस आने से लेकर पन्द्रह आने तक मिलने की बात तय हुई थी। फिर मरने वाले मरते रहें।

पिछली शाम जब एक बार फिर साहस बटोरकर किसन मालिक की कोठी पर पहुंचा, तो उस समय उसके सातों कुत्ते तीन बड़ी हांड़ियों को घेरे हुए थे, जिनके भीतर के उबले हुए चावल से बस्ती के सभी मज़दूर तीन दिन तक अपने पेट पाल सकते थे। किसन ने उन हांड़ियों को देखा और भूख से विवश जीभ को होंठों पर आने से रोक लिया; फिर भी एक बार कुत्तों के बीच कुत्ता होकर उन हांड़ियों पर टूट पड़ने के लिए मन-ही-मन तिलमिलाकर रह गया।

कुत्ते उसकी ओर नहीं लपके थे।

किसी सिपाही ने उसे नहीं रोका था और न ही मालिक ने उसे गुरेड़कर देखा था। कभी वह पहाड़ी की पगडण्डी से चिल्लाकर अपनी ही आवाज़ की प्रतिध्वनियां सुनने का आदी था। उस बचपन से भिन्न लग रही थी, इस बार की उसकी अपनी ही आवाज़ की खामोश अनुगूंज।

वह लौट आया था।

वह लौटकर चुप नहीं रह गया था। चुप्पी के विस्फोट से जो धमाका हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, उससे उसके कान के परदे फट गये थे। उस दर्द के कारण प्रतिक्रिया को रोकना उससे सम्भव नहीं हो सका । उधर उसकी मां लेटी हुई थी, अब तक।

वह निर्णय तो लेना ही था। इसलिए उसी क्षण बैठक हुई और पन्द्रह व्यक्ति निकल पड़े उस कोठरी को, जहां अनाज बन्द था।

जहां अनाज बन्द था, वहां कुत्ते खुले हुए थे। किसन की अगवानी में आते हुए जूलूस को देखकर चारों सिपाहियों ने बन्दूकें तान ली थीं। इस बार तो ये लोग प्रण के साथ पहुंचे थे। सिपाही स्थिति को समझ पाते कि इससे पहले पन्द्रहों व्यक्ति झपट पड़े थे।

कुत्ते भी झपटे, फिर भाग गये थे।

बन्दूकें दूसरे हाथों में आ गयी थीं। चारों सिपाहियों को एक साथ बांध दिया गया था। अनाज की कोठरी का दरवाज़ा खोलकर आठ व्यक्ति भीतर पहुंचे थे। चारों सिपाही उन्हें बोरों के साथ जाते देखते रह गये थे। बन्दूकें तोड़कर नाले में फेंक दी गयी थीं।

सभी कुछ बहुत कम समय में हो गया था, और बहुत ही कम समय में किसन की मां भी चल बसी थी।

किसन मुक्त था। वे बाकी चौदह व्यक्ति भी मुक्त थे। कोई सिपाही बस्ती तक नहीं पहुंचा। बॉसों की कोई बौछार नहीं हुई। कोई गिरफ्तार नहीं हुआ। जंजीरें खनखनायी नहीं। मालिक चुरुट पीता हुआ, अपनी झूलती हुई कुर्सी से नहीं उठा।

आज तीसरा दिन था, लोग अब भी मुक्त थे।

और आज ही समुद्र तट पर वह जहाज आ लगा जो नये और अधिक परिश्रमी मज़दूरों के साथ पहुंचा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यंग्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यंग्य

पब्लिसिटी की दुनिया में व्यंग्य का महत्त्व बहुत अधिक नहीं होता, क्योंकि किसी माल का व्यंग्यात्मक शैली में एडवरटाइज़ करने से उस माल की विश्वसनीयता खंडित हो जाती है और लोग उस माल के महत्त्व को भी व्यंग्य समझ बैठते हैं। यों भी मैंने व्यंग्य बहुत कम ही लिखा है।

अपनी चीज़ों की इस पब्लिसिटी-प्रक्रिया में एक ही व्यंग्य-रचना दे रहा हूं। वास्तव में यह भी शुद्ध व्यंग्य नहीं है, इसलिए रचनाभाव और संपूर्ण पुस्तक के महत्त्व में कमी आ जाने का कोई खतरा मुझे नहीं दीख रहा। इस धमाके को अन्त में ही रखना था। शुरू ही में रख देता तो अपने विज्ञापन से कहीं अधिक अपना विस्फोट ही होकर रह जाता।

अब यह विस्फोट आपके हाथ में है। सावधान जरूर रहें, लेकिन अपने सिर के उड़ने का भय मत खाइयेगा; क्योंकि यह शुद्ध व्यंग्य नहीं है, बल्कि हास्य-प्रहसन और व्यंग्य के बीच का धमाका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धमाका

बासठ वर्ष से मैं इस धरती पर जीता आ रहा हूं, सुनता आ रहा हूं और देखता आ रहा हूं। कहने को मैं बहुत कम कहता हूं, क्योंकि इस दिशा में मेरी पत्नी बहुत खासियत रखती है; और जब वह बोलती है तो एक ही रौ में मेरे लिए भी बोल जाती है। दो बजने में अभी कुछ मिनट बाकी हैं। जब तक ये दो नहीं बजते, तब तक मैं अपनी बासठ की उम्र को पूरा नहीं करता। मैं क्या जानूं कि मेरा जन्म कब हुआ था, पर जन्मपत्री देखते हुए यही मानना पड़ जाता है कि ठीक दो बजे मेरा जन्म हुआ था। मेरे जन्मदिन की खुशी में आज मेरी पत्नी सवेरे से ही धुंधले शीशे के सामने बैठी अपने को संवार रही थी। वह यह मानने को तैयार नहीं थी कि उसकी आंखें धुंधली हो चली थीं; वह तो यही कहती जा रही है कि शीशा ही समय के साथ धुंधला पड़ गया है। और चूंकि मैं अपनी पत्नी से तर्क करके हमेशा मुंह की खाता हूं, इसलिए उसकी बात मानकर मैं भी शीशे ही को धुंधला कहने लग जाता हूं।

इस समय हमारे घर में तंगी थी। मैंने मन-हा-मन भाग्य को सराहा कि अच्छा रहा, यह वर्षगांठ मेरी पत्नी की न हुई; वरना सिर के बाल नोचने पड़ जाते ! मेरी पत्नी की वर्षगांठ अभी कोई पांच महीने आगे थी। पीछे कहना उचित न होगा। कम-से-कम इस शुभ अवसर पर अपनी पत्नी को खफा करना मेरे लिए मूर्खता होगी ! मेरी पत्नी को अपनी सालगिरह सात-आठ दिन पहले ही मालूम हो जाती है, क्योंकि उसका जन्म उसी समय हुआ था, जबकि हमारे देश के एक बहुत ही प्रतिष्ठित व्यक्ति ने भी मेरी पत्नी के साथ आवाज़ मिलाकर अपना पहला रोदन किया था। इस बात के लिए मेरी पत्नी अपने को किस्मत वाली बताती और काफी अकड़ के साथ कहती कि उसका जन्म देश के सबसे बड़े आदमी के साथ हुआ। इस पर वह अपने परिवार को कोसने भी लग जाती, यह कहती हुई कि लोगों ने अगर उसे अवसर दिया होता तो वह भी आज कुछ-से-कुछ बन गयी होती ! अन्त में वह मेरे ऊपर भी बरस पड़ती और कहती—मेरे संपर्क में आकर उसने अपनी प्रतिभा को मेरी चौखट पर दफना दिया। मेरी पत्नी भुलक्कड़ स्वभाव की होने के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने जन्मदिन को भूल भी सकती थी जिससे मैं राहत की सांस अवश्य ले सकता था पर ऐसा कभी नहीं होता था, क्योंकि देश के सभी पत्रों में सात-आठ दिन पहले ही से उस महापुरुष के जन्मदिन के उत्सवों के समाचार छपने शुरू हो जाते थे, जिसका जन्म उसी दिन हुआ था, जिस दिन मेरी घरवाली लक्ष्मी का। मैं अगर अपनी पत्नी को लक्ष्मीबाई और रानी झांसी कहकर पुकार लिया करता हूं तो सच मानिए, मैं अतिशयोक्ति नहीं करता! अगर मेरी पत्नी भारत के प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम की समकालीन होती तो इस कसौटी पर भी खरी उतरती।

हमारे घर के बाहर वही रोजवाली आवाज़ थी। वही कोलाहल, खिड़की के शीशे से वही दृश्य आज भी दिखाई देता था। युवा वर्ग की उफनती लहरें और उनके बुलन्द नारे। मोटरें उल्टी जा रही थीं। दूकानों की खिड़कियों पर पत्थर चलाये जा रहे थे। लपटें उठ रही थीं। हाथ काले झण्डे और पट्टियों के जोश के साथ ऊपर उठाये जा रहे थे। शीशे पर से आंखों को हटाकर मेरी पत्नी ने मेरी ओर देखते हुए अधिकारपूर्ण स्वर में कहा—"बन्द कर लो खिड़की!"

"तुम खुद क्यों नहीं बन्द कर लेतीं!" अपने गले की टाई को गांठ लगाते हुए मैंने कहा। पहले भी कई बार मैं अपनी पत्नी से कह चुका हूं कि जब मैं गले में टाई बांध रहा हूं, तो कृपया वह ऐसी बात न कहे, जिससे मैं चिहुंक जाऊं। लेकिन वह है जो समझना ही नहीं चाहती कि ऐन मौके पर टाई फंदे में बदल सकती है, और गला कस जाने पर उसके विधवा बन जाने की नौबत आ जाएगी। उलटे वह मुझसे तर्क करने लग जाती है कि आखिर टाई की क्या जरूरत है! वह कहती है कि अकुला देने वाली गर्मी में भी टाई बांधना पागलपन-सा लगता है। वह यह मानने को तैयार नहीं होती कि टाई इज्जत को कहते हैं और इसके बांधने से लोगों के बीच प्रतिष्ठा बढ़ती है। एक तरह से मेरी पत्नी भी युवा वर्ग की तरह विद्रोही थी; लेकिन इस बात को जोर से कहने का साहस मैं थोड़े ही कर सकता हूं!

बाहर की आवाज़ें जोर पकड़ती गयीं। उन्हीं इनकलाबी स्वरों के साथ स्वर मिलाकर मेरी पत्नी चिल्ला पड़ी—"मैंने पहले ही कहा था, किसी मिनिस्टर के घर के सामने घर न बनवाओ!"

"यह क्यों नहीं कहती कि मिनिस्टर ने अपना घर मेरे घर के सामने ढूंढ़ा।"

"कल तुम यह भी कहने लग जाओगे कि तुमसे शादी की पहली मांग मैंने ही की थी!"

"अपने जीवन की पहली भूल को मैं कैसे नकार सकता हूं!"

"भूल मेरी थी···मैं तुम्हारी बातों में आ गयी थी।"

"भूल मेरी थी, लक्ष्मीबाई! मैंने तुम्हें अपनी बातों में ला दिया था।" शीशे के सामने मेरी पत्नी थी, इसलिए अपने गले की टाई को देखने के लिए गांठ थामे मैं खिड़की के पास पहुंचा; पर वहां के पारदर्शी शीशे में अपने को न देखकर मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने के दृश्य को देखता रहा । कॉलेज के हजारों विद्यार्थी हिप्पियों के लिबास में गा रहे थे—

दकियानूसी मुर्दाबाद ! दकियानूसी मुर्दाबाद !

काम दो ! काम दो !

फिजूलखर्ची बन्द हो ! फिजूलखर्ची बन्द हो !

मैंने चाहा कि यह आख़िरी नारा मेरी पत्नी तक पहुंचे, ताकि उसे सुनकर वह बूढ़ी घोड़ी लाल लगाम के पीछे न दौड़े। मैंने शीशा खोलना चाहा, नारे को भीतर लाने के लिए; पर इससे पहले कि वह नारा भीतर आता, बाहर से आते हुए एक पत्थर ने खिड़की के ऊपरी शीशे को चकनाचूर कर दिया। मैं जल्दी से पीछे हट गया। मेरी पत्नी भी अपनी कुर्सी को छोड़कर खड़ी हो गयी, डर से नहीं बल्कि मुझे कोसने के लिए।

"मैं जानती थी कि तुम फोड़कर रहोगे !"

"प्रदर्शनकारियों ने फोड़ा है।" बचाव पक्ष के वकील के स्वर में मैंने कहा ।

"इन पागल नवयुवकों को अपना सही लक्ष्य मालूम नहीं।"

"तुम्हारा मतलब है, उनका पत्थर मेरे सिर पर पड़ना चाहिए था ?"

"पहली बार मेरे मतलब को तुमने बहुत जल्दी समझा !"

"मैं तुम्हारी पहली बात को मानता हूं, दूसरी को नहीं मानता।"

"मतलब ?"

"पहली बार तुमने मेरा मतलब समझने में इतनी देर की। पत्थर खिड़की के शीशे को न फोड़कर तुम्हारे उस आइने को फोड़ डालता तो अधिक अच्छा होता। क्योंकि इस शीशे से तो बाहर की वास्तविकता दिखाई पड़ती थी, जबकि तुम्हारे शीशे से नकलीपन दिखाई पड़ता है—जो झूठा है और खुशामद के सिवा उसे कुछ आता ही नहीं !"

सामने की मेज़ से लोशन की हरी बोतल को हाथ में लेकर चण्डी रूप से लक्ष्मीबाई मेरी ओर झपट पड़ी—"चुप रहो, वरना मैं तुम्हारा सिर फोड़ दूंगी !"

तभी बाहर से दूसरा पत्थर आया और उसके हाथ की हरी बोतल कटांग् की आवाज से कई टुकड़ों में फर्श पर जा पड़ी, और लक्ष्मीबाई अपनी कुशलता दिखाती हुई अलमारी की आड़ में चली गयी।

वह असंतोष का स्वर था, जो खिड़की के टूटे हुए शीशे से होकर हमारे घर में आ रहा था। अलमारी की आड़ में सहमी हुई मेरी पत्नी बाहर से दूसरे पत्थर के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। मैंने मन-ही-मन यही चाहा कि वह इसी तरह सहमी आस लगाये रहे। उसकी इस स्थिति से कम-से-कम दो लाभ तो अवश्य थे। एक तो उसका अपना मुंह बन्द रहता; और दूसरी बात यह थी जब तक वह पत्थर का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्तजार करती रहेगी, तब तक कोई भी पत्थर फिर से भीतर आने का नहीं ! ऐसा अनेक अवसरों पर हुआ है कि मेरी पत्नी को जब भी किसी चीज़ की प्रतीक्षा रही है, वह नहीं घटी है। हमारे घर में उसी समय कुछ हुआ है, जब मेरी पत्नी को उसकी कोई आस न रही हो। यही कारण है कि हर बात पर उसने हैरानी ही जाहिर की है।

बाहर चौराहे के पास की मूर्ति के सामने खड़ा होकर युवा आन्दोलन का नेता ओजपूर्ण स्वर में चिल्लाने लगा था। पॉप संगीत के श्रोताओं की तरह हड़ताल करने वाले सभी युवक भी उसके साथ स्वर मिलाकर चिल्लाने लगे थे। आवाज़ें मन्त्री महोदय के घर से टकराकर प्रतिध्वनित हो रही थीं।

उस प्रतिध्वनि की गूंज मेरे कानों में भी हो रही थी—

नपुंसक राजनीति को हम नकारते हैं !

हमें स्वतन्त्रता का नकली रूप नहीं चाहिए।

इयान पालॉक की जय ! कोहेन बेंदित जिन्दाबाद !

स्वरों में उतेजना आ गयी थी। अपने स्थान ही से मेरी पत्नी चिल्ला उठी—"इन नकली मसीहों की जय-जयकार मैं नहीं सुन सकती। खिड़की बन्द कर लो !"

"आज तक इस घर के सभी बड़े काम तुमने किये हैं !"

मेरी यही बात उसे बरछी की तरह लगी। अलमारी की आड़ से निकलकर दौड़ती हुई वह खिड़की के पास पहुंची। हाथ बढ़ाकर उसने खिड़की बन्द करना चाहा, कि तभी झन्-झनाक् की आवाज़ के साथ बगल के किसी घर का शीशा फूटा और मेरी पत्नी चिल्लाती हुई अलमारी के पीछे जा छिपी। दूसरे ही क्षण वहीं से खीझभरी आवाज़ में उसने कहा—"खिड़की बन्द क्यों नहीं कर लेते !"

"गर्मी है।"

"पागल तो नहीं हो गये ! मुझे ठण्ड लग रही है।"

"तुम्हें डर लग रहा है।"

"तुम जानते हो, मैं कभी नहीं डरती !"

"मुझसे मुकाबला करने में तुम कभी नहीं डरतीं, । मगर…"

रंज में आकर उसने अपने दोनों हाथों से घण्टे भर में संवारे बालों को अस्त-व्यस्त कर दिया। अपने दांतों को किटकिटाते हुए उसने कहा—"इस घर में जीना दुश्वार है !"

"शुरू से, हम दोनों का एक साथ !"

"बाहर का हंगामा समाप्त होते ही मैं अपने वकील से मिलने जाऊंगी।"

"हमारी शादी तो कभी सफल रही ही नहीं ! तो फिर जो पहले ही से असफल है, उसके लिए तलाक की क्या आवश्यकता !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदर्शनकारियों की आवाजें प्रलयंकर होती गयीं। महाभारत, ट्रॉय, कोरिया और वियतनाम के युद्ध एक साथ हो रहे-से प्रतीत हो रहे थे। मेरी पत्नी डर और क्रोध के सम्मिश्रित स्वर में बोल उठी—"ये कल के लोग दुनिया को अपने हाथ में लेना चाहते हैं।"

"परसों के अमीरों को बोझ से बचाने के लिए।"

"मन्थर गति के घोंघे हो !"

"तुम कछुआ हो !"

"घोंघा कछुए से तेज़ नहीं हो सकता।"

"मैं कहती हूं, तुम चुप रहो ! तुम मुझे तर्कों से नहीं जीत सकते।"

"वही जीतता है जो हारता नहीं।"

"नहीं ! वह हारता है जो जीतता नहीं।" उसने तपाक् से कहा।

बाहर एकाएक भाग-दौड़ मच गई। लोग तितर-बितर होकर इधर से उधर भागने लगे थे। बालू में पड़े बैल की तरह सभी को अपनी आंखें प्यारी थीं। अपनी-अपनी आंखों को बचाने के प्रयास में नारे बन्द हो गये थे। चीत्कार शुरू हो गया था। रॉयट यूनिट के दस्ते ने अश्रुगैस छोड़ दी थी। सभी लोग खांसते-चिल्लाते, नाक पर रूमाल रखे और आंखों को मलते हुए, अपने को छिपाने का प्रयत्न कर रहे थे। उस धुआंधार वातावरण में भी नेता की आवाज़ सुनाई पड़ी—

"डरो नहीं ! भागो नहीं !!!"···

कोलाहल और खलबली में किसी ने उस चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया, पर मेरी पत्नी ने पहली बार युवा वर्ग के उस नायक के आदेश को महत्त्व दिया—

"सुना नहीं तुमने ? खिड़की बन्द कर लो !"

अश्रुगैस का धुआं भीतर आने लगा था। मैंने भी पहली बार अपनी पत्नी के आदेश को माना और जल्दी से खिड़की बन्द कर ली। भीड़ के कुछ लोगों की मौत की घड़ी सामने थी। मैंने दीवारघड़ी की ओर देखा। मेरे जन्म की घड़ी में अब कुछ ही समय बाकी था। आज अपना जन्मदिन मनाने का बड़ा ही अजीब माहौल था मेरे सामने। कुछ घण्टे का समय बाकी था, वह अब भी सामने की मेज पर था। उसे आंसूगैस से बचाने के लिए मैंने जल्दी से उसे बगल की ढपनी से ढक दिया। मेरी लक्ष्मीबाई की कमजोर आंखों पर अश्रुगैस का प्रभाव पड़ ही गया था। उसकी आंखों से आंसू की अविरल धारा बहते देख मैं उसके पास पहुंचा और उसके कंधे पर हाथ रखकर मैंने बड़े ही प्यार से कहा—"आज खुशी का दिन है, रानी झांसी ! आज मेरा जन्मदिन है। आज तुम्हारा रोना ठीक नहीं।"

"मैं रो नहीं रही हूं।"

"ये आंसू ?"

"ये अपने आप बह रहे हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह तो मैं जानता हूं। भला तुम मेरी खुशी में रो कैसे सकती हो!"

"हंसने के लिए तो मुझे तुम्हारे दुख की प्रतीक्षा है।"

"इत्मीनान रखो, तुम्हारे होते वह मेरे पास आने का साहस कभी कर ही नहीं सकता!"

"यह मेरा दुर्भाग्य है कि तुम-जैसे निखट्टू से मेरी शादी हुई।"

"यह मेरा दुर्भाग्य है कि मुझ-जैसे मेहनतकश से तुम्हारी शादी हुई।"

बाहर की भागदौड़ जारी थी। हमारे दरवाज़े पर एक ही साथ कई दस्तकें हुई। खोलने के लिए मैंने आगे बढ़ना चाहा, कि मेरा हाथ पकड़ने के प्रयास में पत्नी ने मेरी टाई पकड़कर मुझे रोक लिया। मेरी जीभ बाहर निकलने से बची। टाई छूटने पर गर्दन छूटी। मैंने थूक निगलते हुए कठिनाई से कहा—"जान बचाने के लिए लोग जगह चाह रहे हैं।"

"वे मरने के लिए श्मशान चाह रहे हैं।"

"शरण आये को ठुकराया नहीं जाता।"

"मैं मौत को शरण देना नहीं चाहती।"

"जरा शांत चित्त से सोचो! हर गरम पानी को ठण्डा किया जाता है।"

"हर ठण्डे पानी को गरम किया जाता है।"

"गरम से आदमी ऊब जाता है।"

"ठण्ड से आदमी ठिठुर जाता है।"

"पहले तो तुम इतनी निष्ठुर नहीं थी। हमारे बच्चे के मरनेके बाद से तुममें यह पत्थर की-सी कठोरता क्यों आ गई है!"

"क्योंकि मुझमें कोमलता उसके जन्म के साथ आई थी।"

दरवाज़े पर खड़खड़ाहट के साथ कई स्वर एक साथ सुनाई पड़े—"दरवाज़ा खोलो!...हमारी रक्षा के लिए दरवाज़ा खोलो!...हम मारे जा रहे हैं! बचाओ!!..."

अपनी पत्नी के दोनों कन्धों को पकड़कर उसे समझाने का मैंने प्रयास किया—

"मुझे दरवाज़ा खोलने दो!"

"मृत्यु को भीतर लाने के लिए?"

जैसे ही मैं आगे बढ़ा, मेरी पत्नी ने फिर से मेरी टाई पकड़ ली और सच मानिए, जीवन में पहली बार मुझे टाई पर खीझ पैदा हुई। कान पकड़ते हुए मन-ही-मन मैंने अब कभी भी टाई न बांधने की ठान ली। मुझे मरता-सा देख मेरी पत्नी ने जल्दी से टाई छोड़ मेरा हाथ पकड़ लिया, और अपने भारी-भरकम शरीर का सभी बोझ मेरे ऊपर डालकर उसने मुझे सोफे पर गिरने को विवश कर दिया।

"मैंने हमेशा तुमसे यही कहा है कि ये बेकार लोग सभी अनर्थ करते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"राजनीति का अनर्थ बेकारी को जन्म देता है।"

"बेकारी से अनर्थ ! बेकारी से आबादी !"

झटके से खिड़की खुल पड़ी और हथगोले-सी कोई चीज़ हम दोनों के पास आ गिरी। मेरी पत्नी ने झट ने पूछा—"क्या है यह ?"

"सवाल से जवाब नहीं पैदा होता !"

"तो क्या जवाब से सवाल पैदा होता है ?"

"अगर सवाल से जवाब पैदा होता है तो फिर बताओ, यह क्या है ?"

"पहले कभी नहीं देखा।"

"इसे उत्तर नहीं कहते !"

मैंने झुककर सामने की चीज़ को ध्यान से देखा। वह हथगोला ही था। मैंने अपनी पत्नी से कहा—"यह हथगोला है।"

"क्या···हथ···ग···गोला ?"

"हां, यह हथगोला है। विस्फोट होने वाला है। धमाका होगा···और···जिस मृत्यु को तुम बाहर ही रोकना चाहती थी, वह भीतर आ ही गयी।"

"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता !···"

"घड़ी की ओर देखो। मेरी जन्मघड़ी में कुछ ही सेकेंड बाकी हैं। मैं सोचता हूं, दोनों बातें एक साथ होंगी !"

"कौन-सी दोनों बातें ?"

"मेरी जन्म-घड़ी और धमाका—जन्म और मृत्यु एक साथ !"

मेरी पत्नी ने मेरी ओर देखा और अपने उसी अधिकारपूर्ण स्वर में बोली—"दरवाजा खोलकर इसे फेंक दो।"

"पर वे लोग भीतर आ जाएंगे।"

"आने दो ! जल्दी करो···"

और मैंने अभी गोला हाथ में उठाया ही था कि मेरी झांसी की रानी ने अद्भुत साहस के साथ दरवाज़ा खोल दिया। मैंने हथगोले को बाहर फेंका और बहुत सारे लोग भीतर आ गये। उधर जोरदार विस्फोट हुआ, इधर घड़ी ने मेरी जन्म-घड़ी का ऐलान किया।

□□

97503

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Acc. 5.12.90
Class
Cat.
Tag etc.
Checked
Any Other

PAR

Recommended By— डॉ० विष्णुदत्त राकेश

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled 1939-2000

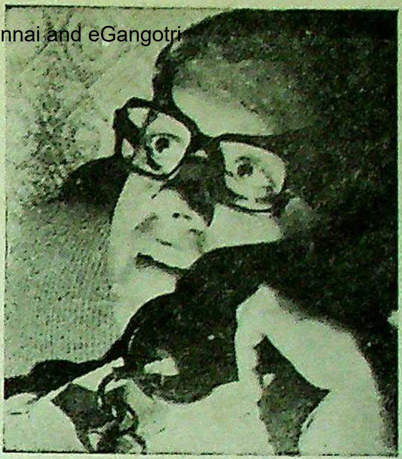

अभिमन्यु अनत

मॉरिशस के एक समृद्ध परिवार के अभावग्रस्त दिनों में ९ अगस्त, १९३७ को जन्म तथा माता-पिता एवं बहनों की खबोर पाठक- प्रवृत्ति के कारण साहित्य के प्रति रुझान। घर की दयनीय स्थिति की वजह से प्रमाण-पत्रों वाली शिक्षा से वंचित। अनेक वर्षों तक बेकार रहने के बाद अठारह साल हिन्दी का अध्यापन, फिर तीन वर्ष तक युवा मंत्रालय में नाट्य कला विभाग में नाट्य प्रशिक्षक। इसके उपरान्त दो वर्ष के लिए महात्मा गांधी संस्थान में हिन्दी अध्यक्ष रहे और अब अनेक वर्षों से संस्थान की हिन्दी पत्रिका 'वसन्त' का सम्पादन।

प्रकाशित पुस्तकें

उपन्यास : और नदी बहती रही, आन्दोलन, एक बीघा प्यार, जम गया सूरज, तीसरे किनारे पर, चौथा प्राणी, लाल पसीना, तपती दोपहरी, कुहासे का दायरा, शेफाली, हड़ताल कब होगी, चुन-चुन चुनाव, अपनी ही तलाश, पर पगडंडी मरती नहीं, अपनी-अपनी सीमा, गांधी जी बोले थे

कहानी-संग्रह : खामोशी के चीत्कार, इन्सान और मशीन, वह बीच का आदमी

नाटक : विरोध, तीन दृश्य, गूंगा इतिहास

कविता : नागफनी में उलझी सांसें, केक्टस के दांत

प्रतिनिधि संकलन : आत्म-विज्ञापन

अनुवाद : मॉरिशस में भारतीय प्रवासियों का इतिहास

सम्पादन: मॉरिशस की हिन्दी कहानी, मॉरिशस की हिन्दी कविता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar